प्रकाशक
श्री देवेन्द्र सिंह गेहलोत
हिन्द साहित्य मंदिर,
जोधपुर

जनवरी, १९७०

मूल्य १०) दस रुपया

मुद्रक
मातृभूमि प्रिंटिंग प्रेस,
चौड़ा रास्ता,
जयपुर

डा० गोपीनाथ जी शर्मा एम. ए. डी लिट्

को

सादर समर्पित

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रंथ में समय समय पर प्रकाशित लेखों का संग्रह है। अधिकांश लेख पूर्व माध्यकालीन राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित हैं और प्रामाणिक साधन सामग्री के आधार से लिखे गये हैं, अतएव ये राजस्थान के इतिहास के अध्ययन के लिये ये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे, ऐसी आशा करता हूं।

रामवल्लभ सोमानी

गंगापुर (भीलवाड़ा)

दिनांक ४-१२-६६

विषय सूची

महाराणा हमीर की चित्तौड़ विजय की तिथि | १

महाराणा हमीर की चित्तौड़ विजय की तिथि निश्चित नहीं है। मेवाड़ की ख्यातों में यह[1] तिथि वि० सं० १३५७ (१३०० ई०) दी है। यह तिथि निश्चित रूप से गलत है। उस समय मेवाड़ में महारावल समरसिंह शासक था। इसके बाद महारावल रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। इसके समय वि० सं० १३६० (१३०३ ई०) में सुलतान अल्लाउद्दीन ने चित्तौड़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया और रत्नसिंह को बन्दी बना[2] गांव २ घुमाया जिसे गोरा बादल की सहायता से वापस छुड़ा लाया गया। रत्नसिंह की अनुपस्थिति में दुर्ग का रक्षा-भार हमीर के पितामह लक्ष्मणसिंह पर डाला गया। शीशोदा वाले समरसिंह के समय[3] से

---

1. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० २३३-३४ का फुटनोट।
2. अमीर खुसरो—खजाइन उल फतुह-का अनुवाद पृ० ४७-४८। इसी प्रकार का वर्णन कर्क सूरि द्वारा विरचित नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध में मिलता है—'चित्रकूट दुर्गेशं बध्वा लात्वा च तद्धनम्। कंठबद्ध कपिमिवा भ्रामयत्त पुरे पुरे" ॥ ३।४ ॥
3. युग प्रधान गुर्वावली का यह वर्णन विचारणीय है—
(१३३४ वि०) फाल्गुन सुदि ५ चतुरशीतौ श्रीयुगादिदेव श्री नेमिनाथ श्रीपार्श्वनाथनां शाम्ब प्रद्युम्नमुन्योरम्बिकायाश्च प्रासादेपु चक्क (त्व ?) रहट्टी अम्बिकायाश्च ध्वजारोपमहोत्सवः सकल-राजधुराधोरयराजपुत्रश्रीअरिसिंह सानिध्याम्........." (पृ० ५६) कुंभा के समय में लिखी गई आवश्यक बृहद्वृत्ति के दूसरे अध्याय की वृत्ति में सहणपाल के लिए ; 'राजमंत्रीधुराधोरय साधु-सहण

कई प्रभावशाली पदों पर नियुक्त थे। अमर काव्य वंशावली के अनुसार रत्नसिंह समरसिंह का जायन्दा पुत्र न होकर गोद का लिया हुआ था जो शीशोदा शाखा का था। लक्ष्मणसिंह अपने ७ पुत्रों सहित दुर्ग की रक्षा[4] करते हुए देवलोक को गया था। अतएव वि० सं० १३५७ (१३००) में न तो हमीर चित्तौड़ का और न शीशोदा का ही स्वामी हो सकता था। ख्यातों में इस तिथि की मान्यता का आधार यह है कि भाटों को वि० सं० १४२१ (१३६४ ई०) हमीर की निधन तिथि संभवतः ज्ञात थी और उसके ६४ वर्ष तक राज्य करने की धारणा भी प्रचलित थी। इसलिए १४२१ वि० से ६४ वर्ष कम करके १३५७ हमीर के राज्यारोहण की तिथि मानली है, जो गलत है।

श्री एस० दत्त ने हमीर की चित्तौड़ विजय[5] की तिथि वि० सं० १३७१ (१३१४ ई०) मानी है जो भी गलत है। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ दुर्ग को विजय कर अपने पुत्र खिज्रखां को दिया था जिससे वि० सं० १३६८ में लेकर इसे मालदेव सोनगरा को दे दिया। मालदेव ने संभवतः ७ वर्ष तक राज्य किया था। इसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। फरिश्ता के अनुसार इसने आक्रमण के पूर्व की सी स्थिति ला दी थी। वह प्रति वर्ष कुछ निश्चित राशि ५००० घुड़सवार और १०,००० पैदल सैनिक सुलतान की सेवा में भेजता[6] था। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् ५ वर्षों तक कई शासक हुये और वि० सं० १३७८ (१३२१ ई०) में सुलतान गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली का बादशाह हुआ। इसके समय का एक शिलालेख मलिक असदुद्दीन का चित्तौड़[7] दुर्ग से मिला है। यह

पालस्तेन" वर्णित है। इससे प्रतीत होता है कि अरि सिंह भी संभवतः मुख्य मंत्री था।

4. पुमाण वंश (श्यः) खलु लक्ष्मसिंहस्तस्मिन्गते दुर्गवरं ररक्ष।
कुलस्थिति कापुरुषैर्विमुक्तां न जातु धीराः पुरुषास्त्यजंति ॥१७७॥
(कुंभलगढ़ प्रशस्ति)

5. भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित "देहली सुल्तानेत" पृ० ३५६

6. तारीख–इ–फरिश्ता (ब्रिग्ज का अनुवाद) भाग १ पृ० ३६३

7. उदयपुर राज्य के इतिहास पृ० १६७ पर दिया गया इसका

उक्त बादशाह का नायब बारबक था। गयासुद्दीन के कई सिक्के मेवाड़ से मिले हैं। एक चौकोर चांदी का सिक्का जिसके पीछे कुरान की आयतें और दूसरी तरफ गयासुद्दीन गाजी का नाम अङ्कित है, हमारे परिवार में पीढ़ियों से सुरक्षित है। फरिश्ता के वर्णन के अनुसार सुलतान अलाउद्दीन के अन्तिम दिनों में राजपूतों ने दुर्ग पर आक्रमण किया था[8] और मुसलमान सैनिकों को काफी नुकसान पहुंचाया था, किन्तु सुल्तान गयासुद्दीन और मोहम्मद के समय का शिलालेख मिल जाने से श्री दत्त की धारणा गलत साबित हो जाती है।

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने[9] यह तिथि वि० सं० १३८३ मानी है। इनकी मान्यता का आधार यह अनुमान है कि मोहम्मद तुगलक के समय हमीर ने चित्तौड़ विजय की थी और कोई प्रामाणिक साधन सम्भवतः उनको भी मिल नहीं सका था। करेड़ा के जैन मंदिर में, जो मेवाड़ के प्राचीनतम जैन देवालयों[10] में से है, वि० सं० १३६२ का लघु[11] लेख लग रहा है। यह लेख इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है।

उदाहरण इस प्रकार है:—"............तुगलकशाह बादशाह सुलैमान के समान मुल्क का स्वामी, ताज और तख्त का मालिक, दुनियाँ को प्रकाशित करने वाले सूर्य और ईश्वर की छाया के समान, बादशाहों में सबसे बड़ा अपने वक्त का एक ही है.........बादशाह का फरमान उसकी राय से सुशोभित रहे। असदुद्दीन अर्सलाँ बादशाहों का बादशाह, दाताओं का दाता तथा देश की रक्षा करने वाला है। उससे न्याय और इन्साफ की नींव दृढ़ है ... ३ जमादि अव्वल।.........."

8. तारीख–इ–फरिश्ता (ब्रिग्ज का अनुवाद) भाग १ पृ० ३८०-८१
9. ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० २३३-३४
10. करेड़ा के जैन मंदिर से प्राप्त अब तक के लेखों में वि० सं० १०३९ का है जिसमें संडेर गच्छीय आचार्य यशोभद्रसूरि सन्तान श्री श्यामाचार्य द्वारा पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है।
11. "........संवत् १३६२ पोष सुदि ७ रवौ श्री चित्रकूट स्थाने महा०

इसमें चित्तौड़ के राजा पृथ्वीचंद्र, मालदेव के पुत्र बणवीर, सिलहदार मोहम्मद देव आदि का उल्लेख है और किसी की मृत्यु पर गोमट्ट बनाने का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक चित्तौड़ दुर्ग पर हमीर का अधिकार नहीं हो सका था और वहां मालदेव के परिवार के किसी पृथ्वीचंद्र राजा का उल्लेख है अथवा इसे मालदेव के पुत्र बणवीर का विशेषण भी कह सकते हैं। हमीर का उसके साथ संघर्ष सभावित है। वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में भी इस संघर्ष का[12] उल्लेख है। गोड़वाड़ में बणवीर के समय का शिलालेख वि० सं० १३९४ का मिला[13] है, अतएव यह कहा जा सकता है कि हमीर की चित्तौड़-विजय वि० सं० १३९२—९४ के मध्य सम्पन्न हुई थी। ख्यातों में बणवीर की सहायता से उसका चित्तौड़ लेना लिखा मिलता है, किन्तु उसके वि० सं० १३९४ के लेख में उसका उल्लेख एक स्वतंत्र शासक के रूप में हो रहा है। अतएव यह ख्यातों का वर्णन कहां तक सही है, कहा नहीं जा सकता है। इसी प्रकार हमीर के ६४ वर्ष तक राज्य करने की धारणा भी गलत है क्योंकि

राजाधिराज पृथ्वीचंद्र..............श्रीमालदेवपुत्र बणवीर सत्कं सिलहदार महम्मददेव सुहड़ासिह चउडंरा सत्कं.......पुत्र दिवंगत तस्य सत्कं गोमट्ट करापितं..........." (नाहर जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० २४२)

12. वंशे तत्र पवित्रचित्रचरितस्तेजस्विनामग्रणीः
श्रीहमीरमहीपतिःस्म तपति क्ष्मापालवास्तोष्पतिः।
तौरुष्कामितमुण्डमण्डलमिथः संघट्टवाचालिता
यस्याद्यापि वदन्ति कीर्त्तिमभितः संग्रामसीमाभुवः ।।९।।

(चित्तौड़ की वि० सं० १४९५ की महावीर प्रसाद की प्रशस्ति)

13. ॐ स्वस्ति श्री नृप विक्रमकालातीत संवत् १ (३) ९४ वर्षे चैत्र शुदि १३ शुक्रे श्री आसलपुरे। महाराजाधिराज श्रीबणवीर देव राज्ये......." (कोट सोलंकियों का लेख)

उसके उत्तराधिकारी महाराणा खेता के वि० सं० १४२३ का[14] लेख और १४३१ का करेड़ा जैन मंदिर का विज्ञप्ति लेख मिला[15] है जो अधिक विश्वसनीय है। अतएव हमीर का चित्तौड़ पर राज्य वि० सं० १३९२-९४ से लेकर १४२१ वि० तक मानना चाहिये।

[राजस्थान भारतीय वर्ष १०
अङ्क २ पृ० २९ पर प्रकाशित]

—❀—

14. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० २५८-२५९
15. विज्ञप्ति महा लेख संग्रह पृ० १३–१४

बागड़ में गुहिल राज्य की स्थापना | २

मध्यकालीन शिलालेखों में वागड़ शब्द भूतपूर्व डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों के भू-भाग के लिए प्रयुक्त[1] हुआ है। हाल ही में मिले शिलालेखों और ताम्रपत्रों से यह सिद्ध हो गया है कि इस क्षेत्र में गुहिल-वंशियों का राज्य दीर्घकाल से चला आ रहा था। इस क्षेत्र से ७वीं शताब्दी से इनके बराबर शिलालेख भी मिलते आ रहे हैं। यहां गुहिल वंशियों की कई शाखाओं का राज्य रहा है, जिसका विवरण इस प्रकार है :-

(१) कल्याणपुर के गुहिल वंशी शासक

(२) भर्तृपट्टवंशी गुहिल

(३) सामन्तसिंह या मेवाड़ के गुहिल

(४) सीहड़ के वंशज

इन शाखाओं का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :-

गुहिल या गुहदत्त की तिथि :-

गुहिल वंश की संस्थापना गुहिल ने की थी, जिसे गुहदत्त भी कहते हैं। ओझाजी के अनुसार[2] इसकी तिथि ५६६ ई० है। इनकी मान्यता का मुख्य आधार सामोली का शिलालेख है, जिसकी तिथि ७०३ वि० (६४६ ई०) है। वे लिखते हैं कि सामोली का उक्त

(1) ओझा-डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ० १-२

(2) ,, उदयपुर ,, ,, पृ० ६६

शिलालेख गुहिल के ५वें वंशधर शीलादित्य का है । औसतन प्रत्येक राजा का शासनकाल २० वर्ष मानते हैं । इस हिसाब से गुहिल का काल वि० सं० ६२३ (५६६ ई०) आना चाहिये । लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह तिथि गलत है । हाल ही में नगर गांव से वि० स० ७४१ का एक शिलालेख भर्तृपट्टवंशी गुहिलों का मिला [3] है । इस शिलालेख में ईशानभट्ट उपेन्द्रभट्ट गुहिल और धिनिक नामक राजाओं का उल्लेख है । चाटसू के बालादित्य के शिलालेख में भी इन राजाओं[4] का उल्लेख है और इन्हें स्पष्टतः भर्तृपट्टवंशी माना है, जो गुहिल वंशियों की एक एक शाखा है । इस प्रकार से भर्तृपट्ट ईशान-भट्ट का पूर्वज अवश्य रहा होगा । इसके बहुत समय पूर्व गुहिल का समय होना चाहिए, जिससे कि यह वंश चला है । अतएव ओझाजी द्वारा मानी गई उसकी तिथि वि० सं० ६२३ (५६६ ई०) अवश्यमेव गलत है क्योंकि उसके वंशज भर्तृपट्ट की तिथि ही उनकी मान्यता के अनुसार ६२१ वि० (५६४ ई०) आ जाती है । अतएव इस तिथि पर पुनः विचार करना आवश्यक है ।

कल्याणपुर के गुहिल

कल्याणपुर, जिसे शिलालेखों में किष्किन्धापुरी कहा गया हैं, उदयपुर से ४५ मील के लगभग दक्षिण में स्थित है । यहां से प्राप्त मूर्तियों के विवरण एवं कई लेख भी प्रकाशित होचुके है । यहां गुहिल वंशियों का अधिकार कब हुआ था, यह बतलाना कठिन अवश्य है किन्तु यह सत्य है कि ७वीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही यहां इनका राज्य अवश्य हो चुका था । पुरातत्त्ववेत्ता डा० डी० सी० सरकार[5] राजा पद्र को भी गुहिल वंशी मानते हैं, जिसका एक लघुलेख ७वीं शताब्दी के प्रारम्भ का है जो हाल ही में प्रकाशित हुआ है इस लेख

---

(3) क्लासिकल एज (भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा प्रकाशित) पृ० १६० । भारत कौमुदी पृ० २७४-७६

(4) एपिग्राफिया इण्डिका भाग १२ पृ० १३ से १७

(5) " " भाग ३५ पृ० ५५ से ५७

में इसके वंश आदि का उल्लेख नहीं है। इसमें शिव मन्दिर बनाने का उल्लेख[6] है। इसका "विरुद" महाराजा ही होने से अनुमान किया जाता है कि यह स्थानीय राजा मात्र था। इसके पश्चात् राजा देवगण शासक हुआ था। इसका उल्लेख यहां से प्राप्त सं० ४८ और ८३ के ताम्रपत्रों[7] में किया गया है। डी० सी० सरकार इसे पद्र के पश्चात् हुआ मानते हैं और अन्यत्र[8] इसे ६४० ई० में हुआ मानते हैं। इसके पश्चात् राजा भाविहित शासक हुआ था। इसका ताम्रपत्र सं० ४८ का मिला है। यह उसके पितृव्य देवगण की स्मृति में ब्राह्मण असंगशर्मा को जारी किया गया था। स्मरण रहे कि लेख में स्पष्टतः "गुहिलपुत्रान्वये सकलजनमनोहर..................." आदि विशेषण लगाकर राजा का उल्लेख किया है, अतएव इसके गुहिलवंशी होने में संदेह ही नहीं किया जा सकता।

इसके पश्चात् राजा भेत्ति शासक हुआ था। इसके समय का एक बहुचर्चित दानपत्र मिला है, जो धुलेव के निवासी श्री कालुलाल के पास है। इस दानपत्र में सं० ७३ दिया है और राजा के वंश और पूर्वजों का उल्लेख इसमें[9] नहीं है। इस दानपत्र की ७वीं पंक्ति में "दूतकोत्र सामन्त भव्विहृति" शब्द से कुछ विद्वान् ऐसा भी अनुमान करते हैं कि सामन्त भव्विहृति निश्चित रूप से सं० ४८ के दानपत्र वाला भाविहित है और इसका सम्बन्ध भेत्ति से इतना ही है कि यह उसका सामन्त मात्र है। दोनों अलग अलग राजा हैं। किन्तु यह एक मात्र अनुमान ही है। इसका मुख्य आधार यह है कि दोनों के विरुदों में स्पष्टतः अन्तर है। अतएव नाम की समानता से एक ही शासक नहीं

---

(6) कारितं शूलिनोवेश्म शिवसायो (यु) ज्य सिद्धये श्रीमहाराज पड्ड (द) राज्ये (उपर्युक्त)

(7) उपर्युक्त भाग ३४ पृ० १६७

(8) दी ओरिसा हिस्टोरिकल रिसर्च जरनल Vol VIII जुलाई १९५९ में डी. सी. सरकार का लेख।

(9) एपिग्राफिया इंडिका Vol ३० पृ० १

माना जा सकता[10]। इस दानपत्र की दूसरी पंक्ति में "विदित यथा मया महाराज बप्पिदत्तिः तस्यैव पुण्याप्यायननिमित्यर्थं, आदि उल्लेखित है और ऊवरक गांव दान देने का उल्लेख है। यहां बप्पिदत्ति से कुछ विद्वान् बाप्पारावलका अर्थ लेते हैं एवं कुछ इसका अर्थ पिता से लेते हैं। बाप्पारावल सम्वन्धी विस्तृत दृष्टिकोण श्री रोशनलाल सामर ने अपने लेख "न्यू एसपेक्ट ऑफ धुलैव प्लेट ऑफ[11] महाराज भेत्ति" में दिया है। इस सिद्धान्त में कई भूलें हैं। सबसे पहली मूलभूत बात बाप्पारावल की तिथि वि० सं० ८१० मानी गई है जो राजा कुकडेश्वर के वि० सं० ८११ के लेख के मिल जाने से स्वतः गलत[12] सावित हो जाती है। इसके अतिरिक्त मेवाड़ के शिला लेखों में सर्वत्र बाप्पारावल को मुख्य शाखा का ही वर्णित किया है। इसका कल्याणपुर से आकर नागदा में अधिकार कर लेना कहीं भी वर्णित नहीं है। इसके विपरीत शिलालेखों में पिता के लिये "बाप्पा या बप्प" शब्द भी प्रयोग[13] में लाया जाता है। अगर यहां बप्पिदत्ति को व्यक्तिवाचक मानें तो यह राजा निःसंदेह मेवाड़ के बाप्पारावल से भिन्न था और भाविहित के पश्चात् ही शासक हुआ प्रतीत होता है। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया जा सकता। श्री जोगेन्द्रप्रसादसिंह ने अपने लेख "बप्पदत्ति आफ धुलैव–प्लेट एण्ड गुहिल बाप्पा" में श्री सामर के विचारों की आलोचना की है [14]।

(10) राजा देवगण भाविहित वामट्ट आदि के विरुद अवाप्ता शेष महाशब्द, समाधिगतपञ्चमहाशब्द, समुपार्जित पञ्चमहाशब्द आदि अङ्कित हैं।

(11) जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री Vol XL भाग II अगस्त, १९६२ सिरियल नं० ११९

(12) जनरल आफ राजस्थान हिस्टोरिकल इन्स्टिट्यूट Vol III No. ४ पृ० ४२

(13) जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री Vol XL II पार्ट II अगस्त १९६४ पृ० ४१५-४३३

(14) उपर्युक्त

राजा भेत्ति के पश्चात् बामट्ट शासक हुआ था, जो अपने आपको देवगण का वंशज बतलाता है। यह भी अपने दानपत्र में न तो भाविहित और न भेति का उल्लेख ही करता है। इसको भी दानपत्र में स्पष्टतः गुहिल वंशी शासक माना है। दानपत्र के प्रारम्भ[15] में ही "स्वस्ति किष्किन्धापुरात् गुहिलनराधिपवंशे गुणमणिगणकिरणरञ्जत......" आदि कहा है। इस लेख में "घोरघट्ट स्वामी" नामक एक राजपुत्र का उल्लेख है, जो इसका उत्तराधिकारी रहा होगा। इस क्षेत्र से राजा केदच्छि का भी एक शिलालेख मिला है। इसे ८वीं शताब्दी का माना जाता है। इस लेख में बोण्णा नामक एक स्त्री द्वारा शिव मंदिर के लिये कुछ दान देने का उल्लेख है[16]।

इन लेखों में सबसे बड़ी कठिनाई इस बात की है कि इनमें प्रयुक्त तिथियां किस संवत् की हैं? कई विद्वानों ने अलग २ मत व्यक्त किये हैं। श्री ओझा और सरकार इसे हर्ष संवत्[17] की तिथियां मानते हैं। श्री मिराशी इसे भट्टिक संवत् की तिथि[18] मानते हैं। डा० दशरथ शर्मा ने अपने एक विस्तृत लेख में भट्टिक संवत् की कई तिथियां प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इस संवत् की तिथियां जैसलमेर राज्य के भू-भाग के बाहर[19] नहीं मिली हैं। अतएव यह कहना असंगत है कि बागड़ के पहाड़ी भाग में कभी भाटियों का अधिकार हो गया हो। हर्ष संवत् के सम्बन्ध में श्री मिराशी यह स्पष्टीकरण देते

---

(15) एपिग्राफिया इण्डिका Vol ३४ पृ० १६७-१७०

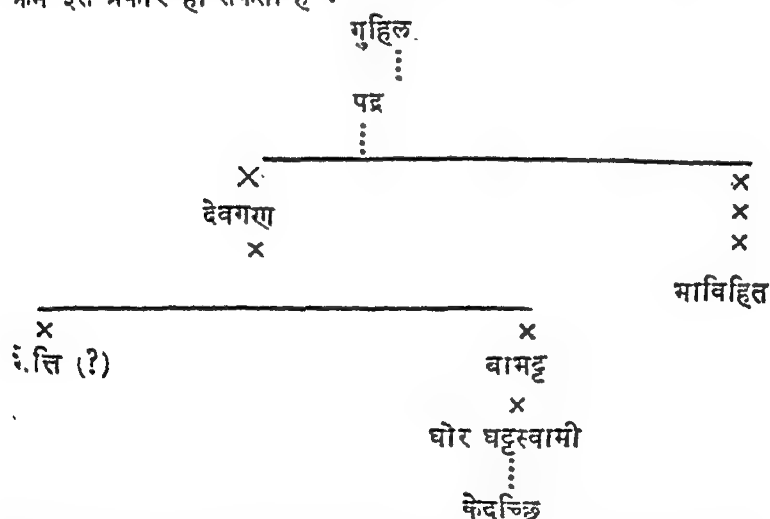
(16) ,, ,, Vol. ३५ पृ० ३९-४० श्लोक ७-९

(17) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १९३३ पृ० २
एपिग्राफिया इण्डिका Vol. ३४ एवं ३५ में उक्त लेखों को सम्पादित करते हुए श्री सरकार द्वारा दी गई मान्यता एव धुलेव प्लेट पर उनका लेख (Vol XXX अक्टू० १९५३)

(18) एपिग्राफिया इण्डिका Vol. XXX जनवरी १९५३ पृ० १-३,

(19) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली Vol XXXV No. 3 सितम्बर, १९५९ पृ० २२७ में डा० दशरथ शर्मा का लेख

हैं कि राजा भेत्ति के दानपत्र में प्रयुक्त तिथि सं० ७३ हर्ष संवत् की तिथि ६७९ ई० आती है। उस संवत् में अश्वयुज संवत्सर नहीं था। हर्ष संवत् के प्रचलन की तिथि में ही विवाद[20] है और श्री सरकार इन तिथियों को हर्ष संवत् ही मानते हैं। श्री सामर ने इस संवत् के सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वे इसे[21] वाप्पारावल के राज्यारोहण की तिथि से सम्बन्धित मानते हैं। यह सिद्धान्त भी गलत प्रतीत होता है। वाप्पारावल की तिथि से तालमेल बिठाने के लिए इन्होंने दानपत्र की लिपि को भी ९वीं शताब्दी का बतलाया है, जो भी गलत है क्योंकि लिपि से ही सामान्यतः राजा का काल निर्धारण नहीं किया जा सकता। सामोली के शिलालेख की लिपि अन्य[22] समसामयिक शिलालेखों से काफी विकसित प्रतीत होती है अतएव इन्हें हर्ष संवत् की मानना ही अधिक उपयुक्त है। इनका वंश-क्रम इस प्रकार हो सकता है :—



(20 डी० सी० सरकार इसे ६०६ ई० से और मजूमदार इसे ६१२ में चालू हुआ मानते हैं, जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री XXXVIII भाग ३ पृ० ६०५ के फुटनोट १ में]

(21) उक्त XL भाग II अगस्त १९६२ पृ० ३४८–३५०

(22) एपिग्राफिया इण्डिका भाग ४ पृ० २९–३२

ये राजा आहड़ ओर नागदा के प्रारम्भिक गुहिल शासकों से निःसन्देह भिन्न थे क्योंकि उस समय मेवाड़ में जो शासक राज्य कर रहे थे, उनमें से एक का भी नाम इनसे मिलता नहीं है। इनके लेखों में मेवाड़ के शासकों का स्पष्टतः उल्लेख नहीं होने से दोनों में क्या सम्बन्ध थे, यह बतलाना कठिन है।

परमारों का अधिकार

इन कल्याणपुर के गुहिल राजाओं को मालवे पर परमारों ने कया प्रतीत होता है। बागड़ के परमार वंशी राजा मालवे नष्ट के वाक्पतिराज के दूसरे पुत्र डम्बरसिंह के वंशज थे। सम्भवतः ाक्पतिराज[23] ने इस प्रदेश को जीतकर अपने पुत्र को जागीर में दे दिया था। इन राजाओं ने कल्याणपुर से राजधानी हटाकर थुंणा में स्थापित की, जहां से इस वंश के कई राजाओं के ई शिलालेख भी मिले हैं। डम्बरसिंह के पश्चात् धनिक, चच्च ंकदेव, चंडप सत्यराज लिम्बराज, मंडलीक, चामुण्डराज और विजय-ाज नामक राजा हुए। विजयराज[25] के शिलालेख वि० सं० ११६६ ; मिले हैं और इसके पश्चात् इस वंश के शासकों का कोई उल्लेख हीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि मालवा-विजय के साथ-साथ ुजरात के सोलंकियों ने बागड़ भी अपने अधिकार में कर लिया था। सद्धराज जयसिंह की अवन्ति विजय वि० सं० ११६० के आसपास ानी जाती है। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका उत्तरा-धिकारी कुमारपाल हुआ, जिसे हटाने के लिए कुछ सीमावर्ती राजाओं प्रयास किया था। इनमें अजमेर का राजा अर्णोराज, नाडोल का

---

(23) ओझा–राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ० २३
,, डूंगरपुर राज्य का इति० पृ० २३
गंगोली–हिस्ट्री आफ परमार डाइनेस्टीज पृ० ३३७

(24) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली XXXV No. I मार्च १६५६ में सुन्दरम् का लेख।

(25) जैन लेख संग्रह भाग ३ पृ० १२–१५

चौहान शासक रायपाल और आबू का परमार राजा विक्रमसिंह[26] मुख्य थे। ये चाहड़ को शासक बनाना चाहते थे। वि० सं० १२०१ के आसपास आबू के निकट युद्ध में कुमारपाल की विजय हुई। उसने अजमेर तक पीछा किया, किन्तु अजमेर विजय नहीं कर सका। इस प्रकार संघर्षमय स्थिति का लाभ उठाकर आसपास के सीमावर्ती राजाओं ने भी अपने-अपने क्षेत्र का विस्तार करने के लिए प्रयास किया हो तो कोई आश्चय नहो।

भर्तृपट्टवंशी गुहिल

जैसा की ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कि भर्तृपट्टवंशी गुहिल राजाओं का अधिकार प्रारम्भ में चाकसू के आसपास था। कालान्तर में ये लोग मालवा में जा बसे। धार के पास इंगोदा के वि० सं० ११९० के दानपात्र में भर्तृपट्टवंशी ३ गुहिल राजाओं का उल्लेख है। इनके नाम है पृथ्वीपाल तिहुणपाल, और विजयपाल[27]। एक सबसे बड़ी विशेषता यह भी है कि इनके विरूद "महाराजाधिराज परम भट्टारक परमेश्वर" दिया हुआ है। अतएव पता चलता है कि परमार सोलकी संघर्ष का लाभ उठाकर इन राजाओं ने भी स्वाधीनता की घोषणा कर दी हो। मालवे के घटनाचक्र में कुछ समय पश्चात् महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। वहा रणधवल परमार के पुत्र वल्लाल ने सोलंकियों को निकाल कर वापस अधिकार कर लिया। आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहित प्रद्युनचरित नामक एक अपभ्रंश ग्रंथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वागड के सीमावर्ती ब्राह्मणवाड़ में उसका राज्य विद्यमान था और वहां उसका सामन्त गुहिल भल्लिल राज्य[28] कर रहा था। इससे स्पष्ट है कि वल्लाल ने मालवे का अधिकांश भाग अपने अधिकार

---

(26) अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० ५२
एपिग्राफिया इण्डिका भाग २ पृ० २००

(27) इण्डियन एन्टिक्वेरी Vol IV पृ० ५५-५६ की पंक्ति १ से ३

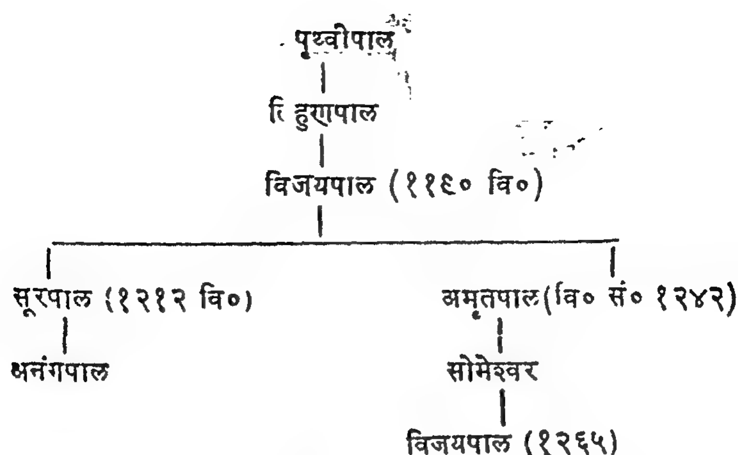
(28) ब्राह्मणवाड–णामे पट्टण
अरिणरणाह–सेण–दल वट्टणु ॥

में कर लिया था। इसे कुमारपाल ने वि० सं० १२०८ में हरा दिया था और मालवे का अधिकांश भाग अपने अधिकार मे कर लिया था। ये इंगोदा के भर्तृपट्टवंशी गुहिल भी कुमारपाल के सामंत रहे प्रतीत होते हैं। । इनका वागड़ प्रदेश में प्रवेश कब हुआ था, यह निश्चित करना कठिन है। श्री सुन्दरम् ने अपने लेख 'दी सकसेसर'[29] आफ परमार्स एट बागड' में यह व्यक्त किया है कि सिद्धराज का तलवाड़ा (वागड़) में शिलालेख भी मिला है। इसके वहां से हट जाने पर विजयपाल गुहलोत ने वहां अधिकार कर लिया प्रतीत होता है। इसके पश्चात् इसका पुत्र सुरपाल शासक हुआ, जिसका वि० सं० १२१२ का शिलालेख भी मिल चुका हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये गुहलित मालवे पर चालुक्य आक्रमण के समय उनकी तरफ नहीं रहे हों क्योंकि वि० स० ११९० के इंगोदा के लेख के जो विरुद अङ्कित हैं, वे स्पष्टत: ध्वनित करते हैं कि वे उस समय तक इनके आधीन नहीं थे। अतएव कुमारपाल के समय में अधीन होकर मालवे से वागड की तरफ आये हों, यही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

सुरपाल का पुत्र अनंगपाल था। इसके पश्चात् इस शाखा के अमृतपाल का वि० स० १२४२ का ताम्रपत्र मिला है। इस प्रकार इनका वंश क्रम इस प्रकार है :–

जो भुंजइ–अरिरण खय कालहो ।
रणवीरियहो सुअहो बल्लाल हो ॥
जासु भिच्चु दुज्जरणु मरण–सल्लरणु ।
खत्तिउ गुहिल उत्तु जहिं भल्लरणु ॥
प्रद्युम्न" चरिउ" की प्रशस्ति (आमेर शास्त्र भण्डार)

(29) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली XXXV No. 1 मार्च १९५९ पृ. ९-१२



सामंतसिंह का वागड़ पर अधिकार

सामंतसिंह चित्तौड़ का शासक था, जिसे कीत्त् सोनगरा ने मेवाड़ से निष्कासित कर दिया था। आबू के अचलगढ़ के वि० सं० १३४२ के शिलालेख में इस सामंतसिंह के लिए वर्णित किया है कि क्षेमसिंह के पश्चात् वह शासक हुआ, जिसने उस पृथ्वी को कभी[30] गुहिलवंश का वियोग नहीं देखा, शत्रु के हाथों से वापिस हस्तगत कर लिया। इससे स्पस्ट है कि सामंतसिंह के हाथों से मेवाड़ चला गया था। इस घटना को पुष्टि आबू की ही १२८७ वि० की प्रशस्ति से होती है, जिसमें परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रहलादन के लिये लिखा है कि उसने सामन्तसिंह और गुजरात के राजा के मध्य हुए युद्धों[31] में गुजरात के राजा की रक्षा की। सामन्तसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १२२४ का गोगुन्दा के पास घंटाली माता के मन्दिर[32] का है। इसके पश्चात्

---

(30) ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पृ. १४७
समरसिंह का आबू का शिलालेख वि० सं० १३४२ श्लोक ३७
कुंभलगढ प्रशस्ति श्लोक सं० ३६ एवं ४०

(31) आबू की प्रशस्ति वि० सं०१२८७ [एपिग्राफिया इण्डिका जिल्द ८ पृ० २११] का श्लोक २८/नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष १ अंक १ पृ० २५

जगत का[33] वि० सं० १२२८ का लेख है। अत एव इसके पश्चात् ही कीतू सोनगरा ने उसे मेवाड़ से निकालने में सफलता प्राप्त की होगी। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में इसका स्पष्टत:[34] उल्लेख है। इस कीतू सोनगरा का कोई शिलालेख मेवाड़ से प्राप्त नहीं हुआ है। वि० सं० १२३६ के सच्चियामाता के मन्दिर के लेख में केल्हणदेव का उल्लेख है, जो उसका बड़ा भ्राता था। उस समय यह तक नाडोल के राज्य में उसको सहायता दे रहा[35] था। इसके पश्चात् वि० सं० १२३६ में उनके पुत्र समरसिंह का उल्लेख[36] है। अतएव प्रतीत होता है कि वि० सं० १२३६ के लगभग ही उसने मेवाड़ पर अधिकार किया होगा। सामन्तसिंह का भी बागड़ में वि० सं० १२३६ के लगभग अधिकार हो गया था, इसकी पुष्टि डूंगरपुर राज्य के सोलज ग्राम से प्राप्त[37] वि० स० १२३६ के एक शिलालेख से होती है। इसमें स्पष्टतः वहां सामन्तसिंह को शासक के रूप में उल्लेखित किया गया है। इस

---

(32) वरदा—जुलाई १९६२ पृ. ८, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली जुलाई–सितम्बर, १९६१ पृ. २१५–२१६ जनरल ओरियंटल इन्स्टिट्यूट बड़ोदा सित० १९६४ पृ.७६

(33) संवत् १२२८ वरिषे फाल्गुन—
सुदि ७ गुरौ श्री अम्बिका
देवी महाराज श्री सामन्तसिंह देवेन...............

[जनरल ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट बड़ोदा सित०१९६४ पृ० ७६]
नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक १ प. २७

(34) कुंभलगढ़ प्रशस्ति का श्लोक सं० ३९ एवं ४०

(35) नाहर जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० १९८

(36) वही, भाग १ पृ० २३८, एपिग्राफिया इण्डिका भाग १ पृ० ५२–५४

(37) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १९१४–१५ पृ० ३ भण्डार की लिस्ट सं० ३९२, ओझा—डूंगरपुर राज्य का इतिहास—

सामन्तसिंह ने वहां सूरपाल के पुत्र अनंगपाल या उसके भाई अमृतपाल से शासन छीना होगा।

सामन्तसिंह का राज्य वागड़ में अल्पकालीन ही रहा। उसे गुजरात के राजा ने चैन से नहीं बैठने दिया। वहां से उसे निष्कासित कर अमृतपाल को वहां का राज्य दिला दिया। इसकी पुष्टि वि० सं० १२४२ के एक ताम्रपत्र से होती है, जिसमें स्पष्टतः गुजरात के शासक[38] का उल्लेख भी है और अमृतपाल का उसके सामन्त के रूप में। श्री राय चौधरी ने सामन्तसिंह का वागड़ का राज्य छूट जाने पर गोडवाड़ में जाना वर्णित किया है और वि० सं० १२५८ के बाणेरा और सांड़ेराव के लेखों में वर्णित सामन्तसिंह को उससे सम्वन्धित माना है और यह भी लिखा है कि उसने विना मेवाड़ की सहायता से नाडोल और आबू के भू-भाग को अधिनस्थ नहीं किया होगा, अतएव उसकी मेवाड़ छोड़ने की तिथि वि० सं० १२५८ से लेकर[39] १२६३ के मध्य आनी चाहिए। किन्तु यह तिथि स्वतः गलत साबित हो चुकी है क्योंकि इसके पूर्व के शिलालेख मथनदेव (१२३६ और १२४२ वि०) आदि मेवाड़ के शासकों के मिल चुके हैं एवं १२६५ वि० में इस क्षेत्र में विजयपाल शासक था।

सीहड़ और उसके वंशज

वि० सं० १२५१ के बड़ोदा के हनुमान की मूर्ति के लेख[40] के अनुसार अमृतपाल उस समय वहां शासक था। वि० सं० १२५३ का

(38) ओझा निबंध संग्रह भाग २ पृ० २०७

(39) राय चौधरी—हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ० ५४ लेकिन यह वर्णन गलत है। मथनसिंह का लेख वि० सं० १२३६ एवं १२४२ और पद्मसिंह का लेख १२४२ वि० का मिला हैं।

(40) "संवत १२५१ वर्षे माहा वदि १ सोमे राज अमृतपाल देव वज्यराज्ये" ओझा निबंध संग्रह भाग २ पृ० २०६

दीवड़ा ग्राम का लेख वहां के शिव मन्दिर से गुजरात के शासक भीमदेव[41] का मिला है। इसी का वि० सं १२६३ का आहड़ से एक ताम्रपत्र[42] मिल चुका है। आहड़ से ताम्रपत्र मिलने से स्पष्ट है कि उसके दक्षिण में स्थित वागड़ उस समय तक गुजरात वालों के अधिकार में था। आट के शिवालय[43] में वि० सं० १२६५ का एक लेख अमृत-पाल के वंशज विजयपाल का मिला है। इस प्रकार वि० सं० १२६५ तक निःसंदेह इस क्षेत्र पर अमृतपाल के वंशज, जो गुजरात के शासकों के सामन्त थे, शासक थे। सीहड़ और उसके पिता जयतसिंह ने यह क्षेत्र वि० सं० १२६५ के पश्चात् ही विजय किया होगा।

सीहड़ का पिता जयसिंह या जयतसिंह[44] किस परिवार का था, यह वतलाना बड़ा कठिन है। डूंगरपुर राज्य के शिलालेखों में ही भिन्न २ वर्णन हैं। वि० सं० १४६१ की महारावल[45] पाता के समय की एक प्रशस्ति में, जो डूंगरपुर के ऊपर गांव के जैन मंदिर में लगी है, इस सम्वन्ध में वर्णन इस प्रकार है "गुहिल वंश में वाप्पा का पुत्र खुम्माण हुआ। इसके वंश में वैरड़, वैरिसिंह और पद्मसिंह नामक शासक हुए। जैत्रसिंह ने पृथ्वी को विजय किया और सीहड़ के द्वारा

---

(41) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९१४-१५ पृ० २ (उपर्युक्त पृ० २०६)

(42) ओझा निवंध संग्रह भाग ४ पृ० ३५ में स्पष्टतः "महाराजाधिराज परमेश्वराभिनव सिद्धराज श्री मद्भीमदेवः स्व भुज्यमान मेदपाट मंडलातः................" वर्णित है।

(43) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९२६-२७ पृ. ३ और वरदा वर्ष ९ अंक १ पृ. ५५/ मरुभारती वर्ष ६ अंक ३ पृ. ५१

(44) सीहड़ के पिता का उल्लेख सं० १३०६ के लेख में है "..............गुहिलवंशे शे) रा० जयतसी (सिं) ह पुत्र सीहड़ पोत्र वीजयस्यग्र (सिंह) देवेन कारापितं—" (डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ. ३६ का फुटनोट ३)

(45) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९१५-१६ पृ० २

यह राजवन्ती हुई" । इसके विपरीत डूंगरपुर के बनेश्वर के समीप स्थित विष्णु[46] मन्दिर की वि० सं० १६१७ की महारावल आसकरण की प्रशस्ति और वहीं के गोवर्द्धननाथ[47] के मन्दिर की वि० सं १६७६ की महारावल पुंजा की प्रशस्ति में जयसिंह को सामन्तसिंह का पुत्र बतलाया है । मेवाड़ के शिलालेख[48] इस सीहड़ के सम्बन्ध में मौन हैं । आधुनिक लेखकों में श्री ओझाजी ने जयसिंह को सामन्तसिंह का पुत्र ही बतलाया[49] है । इन्होंने नैणसी की मान्यता की ही पुष्टि की है । राय चौधरी ने जयतसिंह को जैत्रसिंह से सम्बन्धित माना[50] है, जो मेवाड़ में वि०सं० १२७०-१३०८ तक शासक था । इसकी पुष्टि में इन्होंने चीरवा के लेख का वह अंश दिया है, जिसके अनुसार अर्थुणा के युद्ध में मेवाड़[51] की सेनायें लड़ी थीं ।

इस सम्पूर्ण सामग्री को देखने से हम इस परिणाम पर तो आसानी से आ जाते हैं कि सीहड़ भी मेवाड़ के राजवंश से सम्बन्धित

---

(46) सामन्तसी (सिंह) रा० (रावल) ३१ जीतसी (जयतसिंह) रा० ३२ सीहड़देव (देव) रा०................" (ओझा निबंध संग्रह भाग २ पृ. २०६)

(47) सामन्तसिंहोऽस्य विभुविजग्ये (ज्ञे) । (५३) सजि (जी) तसिंह तनय प्रपेदे य एव लोकं सकलं वियग्ये (ज्ञे)" तस्य सिंहल देवोऽभूत्—(उपर्युक्त)

(48) राज प्रशस्ति में समरसिंह के पुत्र का नाम कर्ण दिया है जिसके ज्येष्ठ पुत्र माहप को डूंगरपुर राज्य का संस्थापक बतलाया है "कर्णात्मजो माहपरावलोऽभवत्स डूंगराद्ये तु पुरे नृपो वभौ·" लेकिन यह गलत है ।

(49) ओझा—डूंगरपुर राज्य का इतिहास अध्याय ४, पृ. ४४ से ५३

(50) राय चौधरी—'फाउन्डेसन आफ गुहिल पावर इन वागड" नामक लेख और हिस्ट्री आफ मेवाड़ पृ. ५४

(51) रत्नानुजोऽस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः ।
मदनः प्रसन्नवदनः ततं कृतदुष्टजन कदनः ।।२७।।

था। इसके पूर्वज 'आहड़ा' भी कहलाते थे क्योंकि ये आहड़ से आये थे। अब प्रश्न सीहड़ के पिता जयसिंह के सम्बन्ध में है। वि० सं० १४६१ के लेख में पद्मसिंह और जैत्रसिंह का उल्लेख होने से इसे मेवाड़ का राजा जैत्रसिंह मान सकते हैं। इसी शासक ने मेवाड़ वालों को गुजरात के राजाओं की अधीनता से मुक्त कराया था। समसामयिक कृति "हमीर मद मर्दन" में वीर धवल का यह[52] कथन उल्लखनीय है कि गुजरात के राजा की सहायता मेवाड़ के जैत्रसिंह ने नहीं की थी और इसे अत्यन्त अभिमानी भी वर्णित किया है, जिसे अपनी तलवार के बल पर बड़ा-घमंड था। इसको चीरवा और घाघसा के लेखों[53] में भी इसी प्रकार से वर्णित किया है कि इसने गुजरात के राजा को हराया था।

सामन्तसिंह का राज्य वागड़ में अल्पकालीन ही था। अतएव उसके वंशजों का वहां स्थायी रूप से रहना संभव प्रतीत नहीं होता। मेवाड़ में भी उसके छोटे भाई के वंशज ही रह गये थे। इसके साथ ही साथ सामन्तसिंह का अन्तिम लेख वि० सं० १२३६ का है, जबकि सीहड़ का अन्तिम लेख वि० सं० १२९१ का। इस प्रकार दोनों में अन्तर भी अपेक्षाकृत अधिक रहता है। अतएव जब तक अधिक विश्वसनीय समसामयिक कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हो जाते, सीहड़ का सम्बन्ध सामन्तसिंह से स्थिर नहीं किया जा सकता हैं।

अतएव जैत्रसिंह को सीहड़ का पिता मानना चाहिये और उसका वंशक्रम इस प्रकार से स्थिर किया जा सकता है :—

य: श्री जेसलकार्योभवदुत्थूणकरणांगणे प्रहरन्।
पञ्चलगुडिकेन समं प्रकटबलो जैत्रमल्लेन ।।२८।। चीरवा का लेख

(53) ....प्रतिपार्थिवायुर्वायुकवलनप्रसपदसिकसर्पायमाणकृपाण-
दर्पंतिमतमस्मदमिलितं मेदपाटपृथिविल्लाटमण्डलं जयतलं....
(हमीर मद मर्दन पृ. २७)

(53) न मालवीयेन न गौर्जरेण न मारवेशेन न जांगलेन।

जैत्रसिंह (१२७०–१३०८ वि०)

- सीहड़ (१२७७ से १२९१ वि०)
  - विजयसिंह १३०६-१३४२ वि०)
- तेजसिंह (१३०८–१३२४)
  - समरसिंह (१३३०- १३५८ वि०)
- पृथ्वीदेव (१३०७ वि. का खमनोर का लेख

अतएव सीहड़ को जिसे ख्यातों में डूंगरपुर राज्य का संस्थापक माना गया है और जिसके बाद वंशावली बराबर मिलती है, वहां के मौजूदा राजवंशों का संस्थापक माना जा सकता है।

[वरदा के वासुदेव शरण अग्रवाल स्मृति अंक में प्रकाशित]

—※—

म्लेच्छाधिनाथेन कदापि मानो ग्लानि न निन्येवनिपस्य यस्य ।।
(चीरव का लेख)
श्रीमद्गुर्ज्जरमालवतुरुष्कशाकंभरीश्वरैर्यस्य ।
चक्रे न मानभंगः स स्वः स्थो जयतु जैत्रसिंह नृपः ।।४।।

वरदा (घाघसा का लेख वर्ष ५ अंक ३ में आचार्य परमेश्वर सोलंकी द्वारा सम्पादित) गुजरात के राजाओं से युद्ध आगे भी चलता रहा प्रतीत होता है। चीरवा के लेख में वाला का कोटड़ा में राणक त्रिभुवन के साथ युद्ध करते हुए वीरगति पाना लिखा है (श्लोक १९)

महाराणा रायमल और सुल्तान गयासुद्दीन | ३

महाराणा रायमल महाराणा कुंभा का पुत्र था। इसका राज्यारोहण सं० १५३० के लगभग है। कुंभा की हत्या के पश्चात उदा ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते उसका उत्तराधिकारी बना था लेकिन पितृ-हत्यारा होने से मेवाड़ के जागीरदार उसके विरोधी हो गये और रायमल को जो उस समय ईडर में रह रहा था मेवाड़ पर अधिकार करने को बुलाया। कुछ युद्धों के पश्चात् वह उनको हटाकर मेवाड़ का राज्य पा सकने में सफल हो गया और उदा अपने परिवार के साथ भागकर मांडू के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी को शरण में चला गया।[1]

सुल्तान गयासुद्दीन और फारसी तवारीखें

सुल्तान गयासुद्दीन मोहम्मद खिलजी का ज्येष्ठ पुत्र था और अपने पिता के बाद मालवे का सुल्तान बना था। फारसी तवारीखों में इसका वर्णन अत्यन्त संक्षेप में लिखा मिलता है। वाकीयात–इ–मुस्ताकी के अनुसार सुल्तान अपने महल से ही अपने शासन काल में केवल दो बार बाहर निकला था।[2] एक बार जोधपुर में एक अनिर्णीत आक्रमण के लिए और दूसरी बार एक तालाब और बाग देखने के लिये। अन्यथा आजीवन महल में ही रहा। फरिश्ता भी इसी[3] प्रकार

1 ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० ३२७-२६। वीर विनोद भाग १ पृ० ३३८ डे–मिडीवल मालवा पृ० २२३.

2 जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री दिसम्बर १९६२ पृ० ७५।

3 ब्रिग्ज–तारीख-इ-फरिश्ता का अनुवाद भाग ४ पृ० २३६-२३९

का वर्णन करता है। वह लिखता है कि राजगद्दी प्राप्त करते ही सुल्तान ने एक राजसभा सम्पन्न की और उसमें घोषणा की कि वह अपना अधिकांश समय अब शांतिपूर्ण ढंग से ही व्यतीत करेगा और महल से बाहर ही नहीं आवेगा। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र नसीरुद्दीन के हाथों राज का सारा काम-काज सौंप दिया। इन तवारीखों से यही सिद्ध होता है कि वह आजीवन महल में ही बन्द रहा और उसने साम्राज्य की रक्षा के निमित्त कोई कदम नहीं उठाया। परन्तु फारसी तवारीखों के अतिरिक्त समसामयिक कई सामग्री ऐसी उपलब्ध हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल तक इस सुल्तान का महाराणा रायमल के साथ संघर्ष चलता रहा था और यह स्वयं सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ाई करने भी आया था एवं इन तवारीखों का वर्णन अतिरंजित है।

गयासुद्दीन का मेवाड़ पर आक्रमण

गयासुद्दीन ने महाराणा उदा के पुत्रों को मेवाड़ में पुनस्थापित करने के लिए वि० सं० १५३० में चढ़ाई की थी। इस चढ़ाई का वर्णन फारसी तवारीखों में तो जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है बिलकुल नहीं है किन्तु इनके विपरीत डूंगरपुर और दक्षिण द्वार के समसामयिक लेखों में उसकी चढ़ाई का उल्लेख है। विशेष उल्लेखनीय यह है कि दोनों लेखों में सुल्तान के व्यक्तिगत रूप से आने का उल्लेख है। डूंगरपुर का का यह लेख वि० सं० १५३० का है जो वहां के सूरजपोल पर लगा हुआ है। इसमें लिखा है कि जब सुल्तान गयासुद्दीन ने आक्रमण किया और नगर को नष्ट किया तब रातकाला जो बिलिया का पुत्र था अपना कर्तव्य समझ कर आक्रमण कारी से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त[4] हुआ। सुल्तान डूंगरपुर से मेवाड़ के पश्चिमी भाग में होता

---

4. "संवत् १५३० वर्षे शाके १३९६ प्रवर्तमाने चैत्रमासे कृष्णपक्षे षष्ठायां तिथौ गुरु दिने वीलीआ माला सुत रातकालइ मंडपाचलपति सुरत्राण ग्यासदीन आवि-डूंगरपुर भाज तई स्वामि न इच्छति आंतरणउ कुल मार्ग अनुपालतां

हुआ चित्तौड़ तक बढ़ आया। उस समय बड़ा भयंकर युद्ध हुआ जिसमें सुल्तान की हार हुई और वह लौटने को बाध्य हुआ। इस घटना का उल्लेख दक्षिण द्वार की वि० स० १५४५ की प्रशस्ति में हैं जिसमें उल्लेखित है कि महाराणा ने ग्यासशाह के गर्व को चूर कर दिया।[5] इस युद्ध में गोरी जाति के एक वीर राजपूत ने विशेष कौशल दिखाया और दुर्ग के एक शृंग पर जिसे आगे चलकर उसके नाम से ही गौर शृंग कहा जाने लगा था वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए परलोक सिधारा।[6] इस घटना से पुष्टि होती है कि सुल्तान ने चित्तौड़ पर आक्रमण अवश्य किया थाकिन्तु उसकी हार हो गई थी। इस युद्ध में सुल्तान का एक सेनापति जहरुल्ल मुल्क भी मारा था।

पूर्वी राजस्थान की समस्या

महाराणा रायमल कुंभा के समान न तो कुशल राजनीतिज्ञ था और न अपने पुत्र सांगा के समान वीर। उसके शासन काल में मेवाड़ में घरेलू समस्यायें इतनी अधिक पैदा हो गई थी कि वह अपने पिता और पुत्र की तरह पूर्वी राजस्थान में बढ़ते हुए मुस्लिम प्रभाव के लिये कुछ भी नहीं कर सका। महाराणा कुंभा के अन्तिम दिनों में ही इस क्षेत्र पर मुस्लिम प्रभाव बढना शुरू हो गया था।

वीर व्रतेन प्राण छाँडी सूर्य मंडल भेदी सायोज्य मुक्ति पामी....." डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ० ६६।

5. यन्त्रायन्त्रि हलाहलि प्रविचलद्दन्तावलव्याकुलं
वल्गद्वाजिबलक्रमेलककुलं विस्फारवीरारवं।
तन्वानं तुमलं महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गल
द्गर्वं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्री राजमल्लो नृपः ॥६८॥
(भाव नगर इन्स्क्रि० पृ० १२१)

6. कश्चिद्गौरो वीरवर्यः कौघं युद्धेस्मिन् प्रत्यहं संजहार।
तस्मादेतन्नाम कामं बभार प्रकारीशश्चित्रकूटैकशृंगं ॥६९॥
(उपरोक्त)

आमेर टोडा आदि भागों से उसने मुसलमानों को हटाकर स्थानीय राजपूत राजाओं को फिर से स्थापित करा दिया था।[7] लेकिन वि० सं० १५१५ के पश्चात् नैनवां, रणथम्भोर टोंक आदि का भाग उसके हाथ से चला गया था और वहां मालवे के सुल्तान का प्रतिनिधि अल्लाउद्दीन उस समय शासक था।[8] इसका उल्लेख उस समय लिखी गई ग्रंथप्रशस्तियों में मिलता है। इस अलाउद्दीन को वि० स० १५३३ (१४७६ ई०) के पूर्व वहां से हटा दिया प्रतीत होता है क्योंकि इसके बाद की सारी

श्लोक सं० ७१ भी द्रष्टव्य है।

जगीरलमहीधरं धरणिवृत्रजिद्विक्रमा-
दटरकटकं-छिद्रुमसमावृतेरुनतम्।
विभिद्य भिदुरासिभि विपुलपक्षमक्षीणवी-
रूदक्षिपदिवोपले समिति राजमल्लो विभुः ॥७२॥ (उपरोक्त)

7. आम्रदाद्रिदलनेन दारुणः कोटडाकलह केलीकेसरी........
कुम्भलगढप्रशस्ति का श्लोक सं० ॥२६२॥
"तोडामंडलग्रहीच्च सहसा जित्वा शकंदुर्ज्जयं ॥१५७॥
एकलिंग माहात्म्य

8. नरसेन द्वारा लिखित 'सिद्धचक्र कथा" की प्रशस्ति में "संवत्, १५१५ वर्षे जेष्ठ सुदि १५ रवौ नैणवाह पत्तने सुरत्राण अल्लावदीण राज्ये........" वर्णित है। कातन्त्ररूप माला की प्रशस्ति (ह० ग्रं० सं० २१४४ आमेर शास्त्र भंडार) की प्रशस्ति में भी इसी शासक का उल्लेख है "संवत् १५२४ वर्षे कार्तिक सुदि ५ दिने श्री टोंकपत्तने सुरत्राण अलावदीन राज्य प्रवर्तमाने श्री मूल संघे बलात्कार गणे" इसी प्रकार नैनवां की वि सं० १५२८ की ग्रंथ प्रशस्ति में भी ठीक इसी प्रकार का उल्लेख है। "संवत् १५२८ वर्षे श्रावण सुदी १ बुधे श्रवण नक्षत्रे शुभनाम योगे श्री नयनवाह पत्तने सुरताण अलावदीण राज्य प्रवर्तमाने "(नय कुमार चरित्र की प्रशस्ति)

प्रशस्तियों में स्वयं गयासुद्दीन का नाम मिलता है।[9] रणथंभोर पर फिदईखां का राज्य था। समसामायिक लेखक "शिहाव हकीम' ने भी इसका उल्लेख किया है। हि० सं० ८७० (१४६५ ई०) में जव वह रथथंभोर आया तव वहाँ फिदई खां शासक था। यहा से वह मांडू गया। गयासुद्दीन के राज्यारोहण के वाद भी रणथम्भोर इसी फिदई खां को जागीर में दिया गया था। मालवे के सुल्तान के साथ २ दिल्ली के वादशाह भी इस क्षेत्र में अपना प्रभाव वढ़ाने को उत्सुक थे। वि० सं० १५३६ (१४८२ ई०) में सुल्तान वहलोल लोदी ने रणथंभोर के समीप स्थित आलनपुर पर आक्रमण किया था।[10] गयासुद्दीन ने चंदेरी के मुकेती शेरखां को उससे युद्ध करने को कहा जिसने युद्ध में वहलील को हरा दिया। इस प्रकार घटनाचक्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और इस क्षेत्र में मालवे के सुल्तान का एकाधिपत्य स्थापित हो गया।

बुन्दी और टोडा की समस्या

पूर्वी राजस्थान में वून्दी और टोडा उस समय दो महत्वपूर्ण हिन्दू राज्य थे। मोहम्मद खिलजी ने भी यहां के शासकों को हराया

---

9. आमेर शास्त्र भंडोर में संग्रहित धन्य कुमार चरित की प्रशस्ति "संवत् १५३३ वर्षे पोषसुदी ३ गुरौ श्रवण नक्षत्रे श्री नयनपुरे सुरत्राण गयासुदीन राज्ये प्रवर्तमाने श्री मूल संघे…………" (डा० कासलीवाल प्रशस्ति संग्रह पृ० १९) मासिर–इ मोहम्मद शाही पत्र ६-७ (मिडिवल मालवा पृ० ४०० से उद्घृत)

10. डे–मिडिवल मालवा पृ०। तारिख -इ-फरिश्ता का ब्रिग्ज का अनुवाद जिल्द ४ पृ० २३७–२३८
जरनल आफ इंडियन हिस्ट्री दिसम्वर १९६२ पृ० ७५

11. शेरखां के सम्वन्ध में कई शिलालेख और ग्रंथ प्रशस्तियां चन्देरी से मिली है। "क्रियाकल्प" नामक एक ग्रंथ की वि०

था जिन्हें कुम्भा ने वापस संस्थापित कर दिया था। टोडा का शासक राव सुरत्ताण या सूरसेण था। इसकी पुत्री ताराबाई का विवाह मेवाड़ के महाराणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज के साथ हुआ था। टोड़ा से इसे वि० सं० १५३७ (१४८० ई०) के पूर्व ही अवश्य निकाल दिया था। क्योंकि वहां से प्राप्त आदि पुराण की एक प्रशस्ति में शासक का नाम गयासुद्दीन दिया हुआ है।[12] राव सुरत्ताण या सूरसेण को मेवाड़ में पुर ग्राम जागीर में दिया था। वि० सं० १५५१ (१४९४ ई०) की लब्धिसार[13] नामक एक ग्रंथ की प्रशस्ति उस समय की देखने को मिली है जिसे मैंने अनेकान्त पत्रिका में अलग से प्रकाशित करा दी है। उसे बदनोर इसके बाद दिया था। सूरसेण को यद्यपि मेवाड़ की ख्यातों के अनुसार पृथ्वीराज ने स्थानीय शासक लल्ला खां पठान को हराकर वापस टोडा दिया था किन्तु यह घटना वि०सं० १५५१ के पश्चात् ही हुई थी। अब तक इसकी वि० स० १५८० के पहले की कोई टोडा से प्रशस्ति नहीं मिली है। यह उस समय काफी वृद्ध हो चुका था। इसका पौत्र रामचन्द्र चाटसू में वि० सं० १५८०–८४ तक शासक था और महाराणा सांगा का सामन्त था। राव भाण को भी बून्दी से गयासुद्दीन ने निकाल

सं० १५३९ की प्रशस्ति म" राजाधिराज मांड़ोगढ दुर्गे श्री सुरत्ताण गयासुदीन राज्ये चदेरी देशे महाशेर खान......"

12. तेरापंथी जैन मंदिर जयपुर में आदि पुराण (हस्त०) की वि० सं० १५३७ की प्रशस्ति उल्लेखनीय है" संवत् १५३७ फाल्गुण सुदि ६ रवि वारे उत्तारा–नक्षत्रे–सुरत्राण ग्यासुदीन राज्य प्रवर्तमाने टोडागढ दुर्गे पार्श्वनाथ चैत्यालये (राजस्थान के जैन भंडारों की सूची भाग २ पृ० २०६)

13. विरधीचन्द जी के जैन भंडार लब्धीसार की हस्त० प्रति में प्रशस्ति इस प्रकार है" संवत् १५५१ वर्षे आषाढ़ सुदी १४ मंगल वासरे ज्येष्ठा नक्षत्रे श्री मेदपाटे श्रीपुरनगरे श्री ब्रह्मचालुक्यवंशे राजाधिराज रावश्रीसूर्यसेनराज्य प्रवर्तमाने (उपरोक्त भाग ३ पृ० २१)

इस प्रशस्ति को मैंने सम्पादित करके अनेकान्त दिसम्बर १९६६ के अंक में प्रकाशित भी करा दिया है।

दिया था उसने भी मेवाड़ में महाराणा रायमल के यहां आकर के शरण ली थी। इसे कुछ समय तक भीलवाड़ा नगर[14] भी जागीर में दिया हुआ था। वि० स० १५५६ (१५०२ वि०) की षट कर्मोपदेश माला की एक प्रशस्ति में इसका उल्लेख है। समसामयिक गुरुगुणरत्नाकर नामक जैन ग्रंथ जिसे वि० स० १५४१ में विरचित किया गया था, में प्रसंगवश हाडोती के लिये उल्लेखित है कि यह मालवे के राजा के अधीन था।[15] वि० स० १५४६ में लिखे सुकुमाल चरित नामक ग्रंथ की प्रशस्ति से पता चलता है कि बारां में सुल्तान गयासुद्दीन का राज्य था।[16] इस प्रकार महाराणा रायमल को सुल्तान गयासुद्दीन के विरुद्ध इन राजाओं को सहायता देनी पड़ी। बून्दी राज्य के खटकड ग्राम में उस समय हाडा शासक विद्यमान थे।[17] रावभाण की निधन तिथि वि० सं० १५६० मानी जाती है और इसके बाद नारायण दास वहां शासक हुआ था। इसका शासन काल अल्पकालीन ही था क्योंकि खजूरी गांव के लेख में वि० स० १५६३ में सूरजमल बूंदी का शासक

---

14. षट् कर्मोपदेशमाला ग्रंथ की प्रशस्ति में "संवत् १५५६ वर्षे चैतसुदी १३ शनिवासरे शतभिखा नक्षत्रे राजाधिराज श्री भाण विजयराज्ये भीलोड़ा ग्रामे श्री चन्द्रप्रभ चैत्यालये........"
(उपरोक्त भाग ३ पृ० ७२)

15. हाडावतीमालव देशनायक—
प्रजाप्रियाऽहमद मुख्यमन्त्रिणा।
श्रीमण्डपक्ष्माधर भूमिवासिना
संघाधिनाथेन च चन्द्रसाधुना ॥३८॥ (गरुगुण रत्नाकर काव्य)

16. "संवत् १५४६ वर्षे ज्येष्ठ सुदी ६ बुधवासरे पुष्यनक्षत्रे बांरावती नगर्यां सुरत्राण ग्यासुदीन राज्ये श्री मूलसघे............"
(प्रशस्ति संग्रह पृ० १६५)

17. संवत् १५६० वर्षे महासुदी १३ सोमे श्री खद्यग्दुर्गे राव श्री अक्षयराज कंवर नरबद राज्य प्रवर्तमाने......................
(उपरोक्त पृ० ६३)

हो चुका था।[18] अतएव पता चलता है कि वि० स० १५६० के लगभग यह भू-भाग बून्दी वालों ने वापस हस्तगत कर लिया होगा।

अजमेर क्षेत्र

अजमेर नरेना सांभर आदि के क्षेत्र पर भी गयासुद्दीन ने अधिकार कर लिया था। अजमेर में उस समय उल्गा-इ-आज़म जिसका पूरा नाम उल्गाइआजम कुतलग-इ-मुअज्जम है जो गयासुद्दीन का मुकेती था जिसका उल्लेख सोहर (मध्य प्रदेश) से प्राप्त एक शिलालेख में है जिसमें यह[19] वर्णित किया है कि उक्त अधिकारी हि० स० ८८८ (१४९३ ई०) में अजमेर से वहां अपने पुत्रों की शादि के लिये गया था उसके साथ ७००० सैनिक भी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि बहलोल लोदी के आक्रमण के समय इसने वहां सैनिकों के सहित प्रयाण किया। इसके बाद मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार वहां मल्लूखां (मलिक यूसुफ) वि० स० १५४७ में शासक था। इसने राव सातल के भाई वरसिंह को अजमेर बुलाकर धोखे से पकड़ लिया। इस पर राठोड़ों ने उस पर आक्रमण किया उस समय तो उसने वरसिंह को छोड़ दिया पर शीघ्र ही मेड़ते पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि अजमेर मेवाड़ के महाराणा के अधिकार में उस समम नहीं था और यह गयासुद्दीन के साम्राज्य का भू-भाग था। श्रीनगर के पवारों ने इस क्षेत्र पर रायमल के अन्तिम दिनों में अधिकार कर लिया प्रतीत होता है। क्योंकि कर्मचन्द पंवार के यहां रायमल के पुत्र सांगा ने शरण ली थी।[21] इसी प्रकार सीकर

---

18. गजेन्द्रगिरिसंश्रयं श्रयति धंधुमारं यकः
स पटपुरनराधिपो नमति वंदो यं सदा
कुमार इह भक्तिभिर्भजति चन्द्रसेनः पुनः
स वृन्दावतिका विभुः श्रयति सूर्यमल्लोपि च ॥ ६ ॥
(खजूरी का लेख)

19. इपिग्राफिआ इंडिका (परेसियन अरेबिक सप्लेमेन्ट) १९६४ पृ० ६१

20. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भाग १ पृ०१०५

21. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० ३४२-४३

तक भी गयासुद्दीन का शासन रहा प्रतीत होता है वहां से[22] वि० सं० १५३५ का एक शिलालेख गयासुद्दीन के राज्य का भी प्राप्त हो गया है। चाटमू में उसका सामन्त राज भंवर कछावा वि० सं० १५५६ में शासक था।

मांडलगढ़ का संघर्ष

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के अनुसार महाराणा[23] रायमल के समय गयासुद्दीन के सेनापति जफरखां ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी। यह मेवाड़ के पूर्वी भाग को लूटने लगा। इसकी सूचना पाते ही महाराणा ने अपने कुंवर पृथ्वीराज जयमल पत्ता रामसिंह कांधल चूडावत सारंगदेव अज्जावत कल्याणमल खीची आदि कई सरदारों को उससे लड़ने भेजा। मांडलगढ़ के पास युद्ध हुआ वहां घमासान युद्ध के पश्चात् जफरखां को हराकर लौटना पड़ा। महाराणा ने भागती हुई सेना का पीछा किया और हाडोती में स्थित खेरावाद तक बढ़े चले गये जहां और युद्ध हुआ व जहां भी मेवाड़ की सेना की विजय हुई।

इस प्रकार मेवाड़ के महाराणा रायमल और गयासुद्दीन के मध्य मेवाड़ में दो बार युद्ध हुए जिसमें महाराणा रायमल की ही जीत हुई फिर भी वह उसकी बढ़ती हुई शक्ति को खतम नहीं कर सका। उसका साम्राज्य राजस्थान के बहुत बड़े भू-भाग पर फैला हुआ था।

---

22. राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १६३५ पृ० ४ शिलालेख नं० ६
23. श्री डे ने मिडिवल मालवा में वर्णित किया है कि मांडलगढ़ महाराणा कुंभा के समय से मालवा के सुल्तान के अधीन हो गया था (पृ० १६०) किन्तु यह गलत है। गयासुद्दीन के इस प्रकार आक्रमण करने से प्रकट होता है कि यह उस समय तक मेवाड़ में ही था। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में यह प्रकार से उल्लेखित है:—
मौलौ मंडल-दुर्गमध्यधिपतिः श्रीमेदपाटावने–
र्गाह्न ग्राहमुदारजाफरपरीवारोरुबीरव्रजं।

यह पहला और अन्तिम अवसर था जबकि एक लम्बे समय तक मालवे के सुल्तान का राजस्थान के इतने बड़े भू-भाग पर अधिकार रहा हो। तारापुर के कुंड के लेख के अनुसार[24] सुल्तान गयासुद्दीन ने अपने हाथों से साम्राज्य विस्तार किया था। रायमल जैसा कि ऊपर उल्लेखित है अपने घरेलू झगड़ों में अधिक व्यस्त होने के कारण पूर्वी राजस्थान की समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दे सका।

[राजस्थान भारती
भाग १० अंक ३ में
प्रकाशित]

कण्ठच्छेदमवेक्षिपत्क्षितितले [श्रीराजमल्लो द्रुतं
ग्यासक्षोणिपतेः क्षणान्निपतिता मानोन्नता मौल्यः ॥७७॥

24. श्री माल्वोल्लसित मंडपदुर्गं साम्राज्यपूर्णपुरुषार्थनुना निलापः प्रौढ़ प्रतापजित् दिग्वलयो विभाति भूवल्लभः नन्दति साहि गयासुदीन ॥ (जैन सत्यप्रकाश वर्ष ३ पृ० ८४ में प्रकाशित तारापुरकुण्ड का लेख)

टोड़ा के सोलंकी ४

टोड़ा या टोड़ारायसिंह राजस्थान में टोंक जिले में स्थित है और यहां सोलंकियों का छोटा सा राज्य १५ वीं और १६ वीं शताब्दी में रहा था।

नैंणसी के अनुसार टोड़ा के सोलंकियों में दुर्जनसाल,[1] हरराज, सुरत्ताण, ऊदा वैरा, ईसरदास, राव आणंदा आदि शासक हुये थे। टोड़ा आवां आदि स्थानों से प्राप्त शिलालेखों और ग्रंथ प्रशस्तियों में जो उल्लेख मिलता है वह इससे पूर्णतया भिन्न है। इनमें से सेढवदेव, सूर्यसेन, पृथ्वीराज, रामचन्द्र, परशुराम, कल्याण और राव सुर्जन का उल्लेख है। इनमें एक नाम राव सुरत्राण और सूर्यसेन मिलता सा है जो मेवाड़ में दीर्घकाल तक रहा था।

इन सोलंकियों का मूलनिवास[2] गुजरात में था। वहां से ही इस क्षेत्र में आये हों ऐसा विश्वास किया जाता है। इनका राज्य यहां कब स्थापित हुआ था इसकी कोई निश्चित तिथी सामग्री के अभाव में बतलाना कठिन है। इतना अवश्य सत्य है कि १४वीं शताब्दी के पश्चात् पूर्वी राजस्थान में मुख्य रूप से लालसोट, बयाना, महुवा, नैंनवा आदि स्थानों में मुसलमान जागीरदार शक्ति बढ़ा रहे थे। कछावा भी इस समय आमेर के आस पास राज्य संस्थापना के लिए संघर्ष कर रहे थे। इसी समय के आस पास ही सोलंकियों ने टोड़ा के आस पास अपना छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया हो। प्रारम्भ के राजाओं के नाम अब तक

1 नैंणसी की ख्यात भाग १ पृ० २१६
2 उक्त पृ० २१६

मिले नहीं हैं। टोड़ा से प्राप्त ग्रंथ-प्रशस्तियों में सबसे प्राचीन वि० सं० १४९२ माघ सुदि २ की सेढवदेव सोलंकी की है जो जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ग्रंथ की है। इसका संक्षिप्त नाम सोड़ा है। यह महाराणा कुम्भा का समकालीन था। इसके समय में इस क्षेत्र के लिये बड़ा संघर्ष चला था। मुसलमानों ने टोड़ा को जीत कर सोलंकियों को निकाल दिया था। कुम्भा ने एकलिंग[3] माहात्म्य के अनुसार टोडे[4] पर इनको वापिस स्थापित किया था। वि० सं० १५१० माघ सुदि का एक लेख टोंक से खुदाई में मिली नव जैन मूर्तियों में से एक पार्श्वनाथ की चरण पीठिका पर खुदा हुआ[4] है जिसमें यहां के शासक का नाम "लुगरेन्द्र" खुदा हुआ है। यह या तो स्थानीय सोलंकी शासक होना चाहिए अथवा ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह का नाम होना चाहिए जिसे खोदने वाले ने डूंगरेन्द्र के स्थान पर 'लूंगरेन्द्र" खोद दिया हो। एक लेख में इसका नाम "डूंगरेन्द्र" भी कर दिया[5] है। वि० सं० १५२४ की आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहित 'कातंत्र माला"[6] की एक प्रशस्ति में टोंक के शासक का नाम अल्लाउद्दीन दे रक्खा है। यह नैनवां क्षेत्र का स्थानीय शासक था।[7] इसकी वि० सं० १५१५ से लेकर १५२८ तक की कई ग्रंथ

3. तोडामंडलमग्रहीच्च सहसा जित्वा शकदुर्ज्जयं।
जीव्याद्वर्षशतं स मत्यतुरगः श्री कुम्भकर्णो भुवि ॥१५७॥
एकलिंग माहात्म्य का राजवंश वर्णन

4. जैन शिलालेख संग्रह भाग ३ पृ० ४८६–८६

5. ग्वालियर का सं० १५१० का लेख दृष्टव्य है:- "सिद्धि सम्वत् १५१० वर्षे माघ सुदि ८ (अ) ष्टमै (म्यां) श्री गोपगिरौमहा-राजाधिराज श्री ड़ (डूं) गरेन्द्रदेव राज्य............" इसका शासनकाल वि० १४८० से था।

6. कातंत्र माला की प्रशस्ति "संवत् १५२४ वर्षे कार्तिक सुदि ५ दिने श्री टोंक पतने सुरत्राण अल्लाउद्दीन राज्ये............"

7. वि० सं० १५१५ की नरसेनदेव द्वारा लिखित सिद्ध चक्र कथा की प्रशस्ति वि० सं० १५१८ ज्येष्ठ शुक्ला ३ की प्रद्युम्न चरित की प्रशस्ति आदि जो ग्रन्थ आमेर शास्त्र भण्डार में संग्रहित है द्रष्टव्य हैं।

प्रशस्तियां देखने को मिली हैं। इससे प्रकट होता है कि सोलंकियों को इनसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ रहा था।

राव सुरत्राण :—सेढवदेव के वाद कौन शासक हुआ था इसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। दुर्भाग्य से इनके शिलालेखों में जो वंशावलियां दी हुई हैं वह भी राव सूरसेण से प्रारम्भ होती हैं। राव सूरसेण की अव तक प्राप्त प्रशस्तियों में सवसे प्राचीनतम वि० सं० १५५१ की है जो मेवाड़ के पुर ग्राम की है। सेढवदेव और सूरसेण के मध्य कम से कम दो राजा अवश्य हो गये होंगे। नैणसी ने सुरत्राण के पहले दुर्जनशाल और हरराज के नाम अवश्य दिये हैं। वि० सं० १५५१ की प्रशस्ति लब्धीसार ग्रन्थ की है जो दिगम्बर जैन मंदिर (वृधिचन्द जी) जयपुर के (ग्रन्थ संख्या १३६) संग्रहालय में है। यह प्रशस्ति अवतक अप्रकाशित थी जिसे मैंने अनेकान्त मे प्रकाशित कराई है। इसमें महत्वपूर्ण सूचना यह मिलती है कि राव सुरत्राण को मेवाड़ के महाराणा ने पहले पुर ग्राम दिया था इसके पश्चात् वदनौर। प्रश्न यह है कि सुरत्राण मेवाड़ में कब आया था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वी राजस्थान के अधिकांश भाग पर[8] उस समय मालवे के सुल्तान का अधिकार हो चुका था। हाड़ोती से लेकर नरेना तक का भाग इसके अधिकार में था। टोडा से वि० सं० १५३७ की आदि पुराण[9] की एक प्रशस्ति मिली है जिसमें वहां गयासुद्दीन का राज्य

---

8. वि० स० १५४१ में लिखी गुरुगुणरत्नाकर काव्य में हाडोती प्रदेश मालवदेश के सुल्तान के अन्तर्गत वर्णित किया है :—
हाडावतीमालवदेशनायक प्रजाप्रियऽह्मदमुख्यमन्त्रिणा ॥८॥
वि० सं० १५४६ की सुकुमाल चरित की प्रशस्ति से पता चलता है कि वारां पर गयासुद्दीन का राज्य था। नरेना, टोंक, नैनवा, मल्लारणा आदि से प्राप्त कई ग्रन्थ प्रशस्तियों में गयासुद्दीन का राज्य होना वर्णित है।

9. संवत् १५३७ फाल्गुन सुदि ६ रविवारे उत्तरानक्षत्रे सुरत्राण. गयासुद्दीन राज्ये प्रवर्तमाने टोड़ागढ़ दुर्गे।"
आदिपुराण की प्रशस्ति (राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग २ पृ० २२८

स्पष्टतः वर्णित किया है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि सूरसेण या सुरत्राण को इसके पूर्व ही मेवाड़ चला जाना पड़ा होगा। लब्धिसार[10] की वि० सं० १५५१ की उक्त प्रशस्ति में स्पष्टतः उल्लेखित है कि मेदपाट देश के पुर ग्राम में ब्रह्म चालुक्य वंशी राजा सूर्यसेन वहां उस समय शासक था। मेवाड़ की ख्यातों और नैणसी के वृत्तान्त के अनुसार इसे वदनोर में जागीर दी गई थी। वदनोर में संभवतः पुर के पश्चात् ही जागीर दी गई होगी। बून्दी का राव भाण भी इसी समय मेवाड़ में शरण ले रहा था। उसे मीलवाड़ा ग्राम दिया[11] गया था। वि० सं० १५५६ ई० की "पट् कर्मोपदेश माला" की एक प्रशस्ति में जो भील-वाड़ा ग्राम की है इसका उल्लेख है। संभवतः जब भाण को भीलवाड़ा दिया गया हो उस समय पुर सुरत्राण से लेकर उसे वदनोर दे दिया हो। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि वदनोर के आस पास मेरों की बड़ी बस्ती थी। वे लोग निरन्तर विद्रोह किया करते थे। कुम्भा ने इनके प्रसिद्ध वीर मुनीर को मारा था। किन्तु संघर्ष चल रहा था। अतएव इनको दबाने के लिये उसे वदनोर में नियुक्त किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है।

---

10. संवत् १५५१ वर्षे आषाढ़ सुदि १४ मंगलवासरे ज्येष्ठा नक्षत्रे श्री मेदपाटदेशे श्रीपुरनगरे श्रीब्रह्मचालुक्यवंशे श्रीराजाधिराज सूर्यसेन प्रवर्तमाने (श्री वर्धीचन्द्र जी के दिगम्बर जैन मंदिर के ग्रन्थ सं० १३६)
11. पटकर्मोपदेश माला की प्रशस्ति
सं० १५५६ वर्षे चत्र सुदि १३ शनिवासरे शतभिसा नक्षत्रे राजाधिराजश्रीभाण विजयराज्ये भीलोड़ा ग्रामे श्रीचन्द्रप्रभ चैत्यालये"
(राजस्थान के जन भण्डरों की सूची भाग ३ पृ० ७८)
12. ज्वालावली वलयितां व्यतनोद्यवालीं
मन्नीर वीरमुदवीदहदेपनीरं।
यो वर्द्धमानगिरिमाशु विजित्य तस्मिन्
मेदानमंदपदविधोनपाक्षीत् ॥ २५४ ॥
मन्नीर को मारने का उल्लेख संगीतराज की प्रशस्ति और अमर काव्य में भी है। महाराणा कुम्भा पृ० ६७-६८

तारा के विवाह की कथा :–कहा जाता है कि राव सुरत्राण की पुत्री तारादेवी बड़ी रूपवती थी। इसके रूप की प्रशंसा सुनकर महाराणा रायमल के कुंवर जयमल ने उसे देखना चाहा। सोलंकियों को यह बहुत बुरा लगा। जयमल ने उन पर आक्रमण किया और इसी में उनकी मृत्यु हो गई। राव ने सारा वृत्तान्त महाराणा को लिखकर भेजा महाराणा ने उसे क्षमा कर दिया। मध्यकाल के लिये यह घटना एक उल्लेखनीय है क्योंकि उस समय वैर लेना बडा प्रसिद्ध था। तारा का विवाह महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के साथ हुआ। इसमें टोड़ा के उद्धार की भी शर्त रक्खी गई। इसने अचानक मोहर्रम के दिन टोड़ा पर हमला[13] करके मुसलमानों को वहां से निकाल भगाया। यह घटना वि० सं० १५६० के आसपास होना चाहिये। टोड़ा से सूरसेन की सबसे पहली अब तक ज्ञात प्रशस्तियों में, वि० सं० १५८० की मिली है।

चाटसू के लिये संघर्ष :–सोलंकियों के कछावा पड़ौसी थे। चाटसू क्षेत्र के लिये दोनों ही इच्छुक थे। राव सूरसेन ने महाराणा सांगा की सहायता से इस क्षेत्र को जीत लिया और वहां अपने पौत्र रामचंद्र को नियुक्त किया। यह राव के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज का बेटा था। आँवा के मंदिर के वि० सं० १५९३ अप्रकाशित लेख[14] और आम्बेर के एक

13, ओझा– उदयपुर राज्य का इति० भाग १ पृ० ३३३–३४ शारदा– महाराणा सांगा पृ० २७–२८

14. ब्रह्मचालुक्यवंशोद्भव सोलंकीगोत्रविस्फुटम
यो वर्द्धते प्रजानंदीसूर्यसेणः प्रतापवान् ॥१२॥
तस्य राजाधिराजद्वे स्त्रे [स्त्रियौ] च विचक्षणे।
वर्तते च तयोमध्ये पूर्वा शीतारूपया स्मृता ॥१३॥
द्वितीया च जिताख्यातानाम्नी सोभागदे च।
तत्पुत्रौ च वरौ जातौ कुलगुण विशारदौ ॥१४॥
प्रथमे पृथ्वीराजो द्वितीयपूर्णमल्लवाक्।
शोभन्ते एन् राजन् : पुत्र पौत्रादि संयुतः ॥१५॥

आवां के मंदिर का लेख वि० सं० १५९३ (अप्रकाशित)

अनेकान्त वर्ष १६ पृ० २१२ शोध पत्रिका वर्ष १७ अंक ४ में प्रकाशित मेरा लेख "कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास"

मूर्ति के वि० सं० १५९३ के लेख के अनुसार सूरसेन के दो रानियां थीं जिनके नाम हैं सौभाग्यदेवी और सीतादेवी । इसके २ पुत्र थे जिनके नाम हैं पृथ्वीराज और पूरणमल । पूरणमल को आंवां ग्राम जागीर में दिया हुआ था । वि० स० १५९४ की वरांग चरित की एक प्रशस्ति में आंवां नगर में इसका शासक के रूप में उल्लेख है ।[15]

रामचन्द्र[16] कीचाटसू क्षेत्र से कई प्रशस्तियां मिली हैं । करकण्डु चरित की वि० सं० १५८१ की घटयवली की प्रशस्ति अब तक प्राप्त प्रशस्तियों में सबसे पहली है । इसकी सबसे उल्लेखनीय प्रशस्तियां वि० सं० १५८३ आषाढ सुदि ३ बुधवार[17] और वि० सं० १५८४ चैत्र सुदी १४ की[18] हैं जिनमें इसके नाम के साथ साथ महाराणा सांग का भी उल्लेख है । वि० सं० १५८४ वाली प्रशस्ति, महाराणा सांगा की अन्तिम प्रशस्तियों में से है ।

राव सूरसेन का ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज या तो अपने पिता के जीवन-काल में ही मर गया था अथवा उसका शासन काल बहुत ही अल्प कालीन

---

15. वरांग चरित की प्रशस्ति
"संवत् १५९४ वर्षे शाके १४५९ कार्तिक मासे शुक्लपक्षे दशमी दिवसे शनैश्चरवासरे धनेष्टानक्षत्रे गंडयोगे आंवा नाम महानगरे श्री सूर्यसेणि राज्यप्रवर्तमाने कुंवर श्री पूर्णमल प्रतापे........"
(राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ४ पृ० १९४)

16. "करकण्डु चरित" की प्रशस्ति
"सम्वत् १५८१ वर्षे चैत्र सुदि ६ गुरुवारे घटयाली नाम नगरे राव श्री रामचन्द्रराज्यप्रवर्तमाने........" (प्रशस्ति संग्रह पृ० ९६)

17. सम्वत् १५८३ वर्षे आषाढ़ सुदि ३ बुधवासरे पुष्य नक्षत्रे राणा श्री संग्राम राज्ये चम्पावती नगरे राव श्री रामचन्द्र प्रतापे........
चन्द्रप्रभ चरित की प्रशस्ति (उपरोक्त पृ० ९९)

18. सम्वत् १५८४ वर्षे चैत्र सुदि १४ शनिवासरे पूर्वा नक्षत्रे श्री चम्पावती कोटे राणा श्री श्री श्री संग्राम राज्ये राव श्री रामचन्द्र राज्ये....
वृद्धमान कथा की प्रशस्ति (राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ३ पृ० ७७)

था। वि० सं० १५९७ तक[19] की प्रशस्तियां राव सूरसेण की मिली हैं। इनमें सुदर्शन चरित की प्रशस्ति उल्लेखित हैं। इसके पश्चात् वि० सं० १६०१ की रामचन्द्र की टोड़ा से मिली है। इनमें जम्बूस्वामी चरित की एक प्रशस्ति उल्लेखित है।[20]

कछावों से चाटसू के लिये सघर्ष बरावर चल रहा था। कछावा-राजा पृथ्वीराज वि० सं० १५८१ में आमेर में शासक था, इसके समय की लिखी ज्ञानार्णव की एक प्रशस्ति[21] देखने को मिली है। इसी अवसर पर वीरमदेव मेडतिया ने इस क्षेत्र पर अचानक आक्रमण करके इसे जीत लिया। वि० सं० १५९४ की उसके शासन काल में लिखी षट्वाहुड[22] की एक ग्रन्थ प्रशस्ति भी उल्लेखित है जो चाटसू में लिखी गई थी। राव मालदेव ने उसे शीघ्र ही हटा दिया था और इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। उसके शासनकाल में वि० सं० १५९५ की सांखोण (टोंक के पास) ग्राम में लिखी वरांग चरित[23] की एक प्रशस्ति

19. सुदर्शन चरित की प्रशस्ति
"सम्वत् १५९७ वर्षे माघमास कृष्णपक्षे द्वितीयां तिथौ बुधवासरे पुष्य नक्षत्रे तोडागढ़ महादुर्गात् राजाधिराज राव श्री सूर्यसेन राव विजयि राज्ये........" (प्रशस्ति संग्रह पृ० १८९)
कछावों से चाटसू के लिये संघर्ष बराबर चल रहा था। कछावा-

20. जम्बूस्वामी चरित की प्रशस्ति
"संवत् १६०१ वर्षे आषाढ़ छुदि १३ भोमवासरे टोड़ागढ़ वास्तव्य राजाधिराज रामचन्द्र विजय राज्ये........"

21. ज्ञानावर्ण की प्रशस्ति
"संवत् १५८१ वर्षे सरस्वती गच्छे– आम्बेर गणस्थानात् कूरमवंशे महाराजाधिराज पृथ्वीराज विजय राज्ये खडेलान्वये........"

22. षट पाहुड ग्रन्थ की प्रशस्ति
"संवत् १५९४ वर्षे माह सुदि २ बुधवारे—चम्पावती नगरे राठौड़ वंशे राय श्री वीरमद्य राज्ये........" (प्रशस्ति संग्रह पृ० १७५)

23. वरांग चरित की प्रशस्ति "संवत् १५९५ वर्षे माघमासे शुक्ल पक्षे राव श्री मालदेवराज्यप्रवर्तमाने रावत श्रीखेतसीप्रतापे सांखोण पत्तने........" (उक्त पृ० ५५)

उल्लेखित है। पाटन के शास्त्रभण्डार में वीरमदेव की "षट्कर्मग्रयावचूरि" की प्रशस्ति वि० सं० १५९२ की है जिसमें स्पष्टतः मेड़ता पर वीरदेव का राज्य उल्लेखित किया है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि वि० सं० १५९५ में मालदेव ने मेड़ता आदि क्षेत्र वीरमदेव से ले लिये होंगे। सोलंकियों ने मालदेव से यह क्षेत्र कब मुक्त कराया इसका कुछ उल्लेख भी है किन्तु वि० सं० १६०० तक मालदेव का अधिकार ज्ञात है। उसने अपनी ओर से राव खेतसी को नियुक्त कर रखा था। वि० सं० १६०२ की ग्रन्थ प्रशस्तियों[24] में यहां शहआलम का नाम दिया है। यह या तो इस्लाम शाह का उपनाम है अथवा मेवात का शासक रहा हो। इसके समय की कुछ अन्य प्रशस्तियां अलवर[25] नगर की देखने को मिली है जिनमें वि० सं० १६०० की लघु संग्रहिणी की है जो गुजरात में छाण के शास्त्र भण्डार में संग्रहित है। इसी प्रकार मेघेश्वर चरित की एक प्रशस्ति वि० सं० १६१० की भी राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची में उल्लेखित की गई है।

राव रामचन्द्र :—राव रामचन्द्र वि० सं० १६०१ के आसपास गद्दी पर बैठा। इसने मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह की सहायता से टोड़ा और इसके आसपास के क्षेत्रको स्वाधीन किया हो। वि० सं० १६०४ के टोड़ा के बहुचर्चित लेख[26] में मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह

---

24. पट पाहुड़ की प्रशस्ति
"संवत् १६०२ वर्षे वैशाख सुदि १० तिथौ रविवासरे उत्तरफाल्गुन नक्षत्रे राजाधिराज शाह आलम राज्ये चम्पावती मध्ये"
(उक्त पृ० १७४)

25 संवत् १६०० वर्षे भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे रवौ पातिसाह श्री शाहआलमराज्ये अलवर महादुर्गे........"
(प्रशस्ति संग्रह by अमृतलाल शाह पृ० ११०)

26. संवत् १६०४ वर्षे शाके १४६९ मिगसर वदि २ दिने—
वर्द्धनीयतो। प्रो० पाल्हड तस्य पुत्र ......राजाधिराज राव श्री सूर्यसेणि। तस्यपुत्र राजश्री पृथ्वीराज ॥ तस्य पुत्रराज श्री राय रामचन्द्र राज्ये वर्तमाने। तस्य कुंवर सं० परसराम पातिसाहि शेरशाह सूरी तस्यपुत्र पातिसाहि असलेम साहि ॥ तो वारो वर्तमान ॥

दिल्ली के बादशाह सलेमशाह और टोड़ा के राजाओं का वंशक्रम सूरसेन से दिया हुआ है। इस शिलालेख पर विद्वानों के कई लेख प्रकाशित हो गये हैं किन्तु खेद है कि इन्होंने सूरसेन और उसके वंश क्रम पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। वि० सं० १६१० की भाद्रपद शुक्ला ६ की यशोधर[27] चरित की प्रशस्ति से प्रकट होता है कि यह इस्लाम शाह सूर के आधीन था। वि० सं० १६१२ की "णाय कुमार चरिउ"[28] और "जसहर चरिउ"[29] की प्रशस्तियों में दिल्ली के सुल्तान मोहम्मद आदिलशाह का नाम अवश्य नहीं है किन्तु यह स्वतन्त्र शासक रहा हो ऐसा अनुमान करना कठिन है। चाटसू आदि क्षेत्र भारमल कछावा के अधिकार में चला गया था।[30]

सार्व भूमि को पसम घोड़ा लाख ११ को पसमु राज श्री संग्रामदेव। तस्यपुत्र उदयसिह देवराणो कुम्भलमेर राज्यो प्रवर्तमाने......."
(मरुभारती वर्ष ५ अंक १ पृ० २०)

27. यशोधर चरित की प्रशस्ति
"संवत् १६१० वर्षे भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां तिथौ सोमवारे स्वाति नक्षत्रे तक्षकमहादुर्गे श्रीआदिनाथ चैत्यालयेपातिसाह श्रीसलेमसाहराज्य प्रवर्तमाने राव श्री रामचन्द्र प्रतापे........"
(प्रशस्ति संग्रह पृ० १६३)

58. णायकुमार चरिउ की प्रशस्ति
"स्वस्ति सम्वत् १६१२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ शनिवारे श्रीं आदिनाथ चैत्यालये तक्षकमहादुर्गे महाराजाधिराजरावश्रीरामचन्द्र राज्ये...."
(उक्त पृ० ११३)

29. जसहर चरिउ की प्रशस्ति
"सम्वत् १६१२ वर्षे आसोज मासे कृष्णपक्षे द्वादशी दिने गुरुवारे असलेखा नक्षत्रे तक्षकगढ़ महादुर्गे महाराजाधिराज राव श्रीरामचन्द्र राज्य प्रवर्तमाने........" (उक्त पृ० १६२)

30. उपासकाध्ययन की प्रशस्ति
"सम्वत् १६२३ वर्षे पोष सुदि २ शुक्रवासरे श्री पार्श्वनाथ चैत्यालये गढ़ चंपावती मध्ये महाराजाधिराज श्री भारमल कछावा राज्ये........" (उक्त पृ० ६४)

राव कल्याण और सुर्जन :–राव रामचन्द्र के पुत्र परशुराम का उल्लेख वि० सं० १६०४ के लेख में है । किन्तु इसकी कोई प्रशस्ति अथवा लेख नहीं मिला है । राव कल्याण की अब तक दो प्रशस्तियाँ देखने को मिली हैं । ये है वि० सं० १६१४ चैत्रसुदी ५ की यशोधर चरितकी और वि० सं० १६१५ की ज्ञानार्णव की । इसी प्रकार राव सुर्जन सोलकी की वि० सं० १६३१ की श्रीपाल चरित की प्रशस्ति[31] और वि० सं० १६३६ की आषाढ सुदि १३ जीवंधर चरित की प्रशस्ति[32] देखने को मिली है । ये दोनों प्रशस्तियां सांखोण ग्राम की हैं । इस समय ये अकबर के आधीन हो चुके थे । इसके पश्चात् इन सोलंकियों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है । अकबर ने रणथंभोर और टोड़ा का भाग[33] जगन्नाथ कछावा को दे दिया था । जगन्नाथ कछावा के वि० सं० १६५४ और १६६१ के दो लेख मिले हैं । इसकी रणथंभोर की एक प्रशस्ति वि० सं० १६४४ की पटकर्मोपदेश माला की देखने को मिली है अतएव अनुमात है कि इसी तिथि के आस पास इसने टोड़ा से सोलंकियों को निकाल दिया था । इसके पश्चात् यहां फिर सोलंकियों का अधिकार नहीं हुआ ।

समसामयिक एक हस्तलिखित ग्रन्थ में इस नगर का प्रसगवश वर्णन है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है :–[34]

नानावृक्ष कुलैर्भाति सर्वत् सत्व सुखंकरः ।
मनोगत महाभोगः दातादातृ समन्वितः ॥ १५ ॥
तोडाख्यो भूतमहा दुर्गोदुर्ग मुख्यः श्रिया परः ।
तच्छाखा नगरं योपि विश्वभृति विधायत् ॥ १५ ॥

---

31. श्रीपाल चरित की प्रशस्ति
'सम्वत् १६३१ वर्षे कार्तिक वदि ६ शुक्रवासरे– नागरचाल मध्ये टोंक समीते सांखिणा नगरे पातसाह श्री अकबर विजय राज्ये सोलंकी महाराय श्री सुरजन........" (उक्त पृ० १८०)

32. जीवंधर चरित की प्रशस्ति "सम्वत् १६३६ वर्षे आषाढ़ सुदि १३ सोमवारे सांषोण ग्राम राव श्री सुरजन जी प्रवर्तमाने........"
(उक्त पृ० १५)

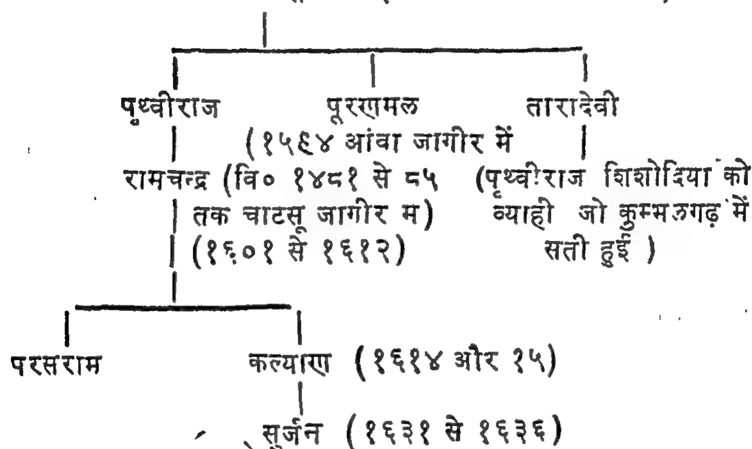
33. मरुभारती वर्ष ५ अंक १ पृ० २०–२१

34. राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची भाग ४ पृ० ६१०

स्वच्छ पानीय संपूर्णैः वापिकूपादिभिर्महत् ।
श्रीमद्वनहट्टानामहट्ट व्यापारभूतिम् ॥ १७ ॥
अर्हत्चैत्यालये रेजे जगदानन्द कारकैः ।
विचित्र मठ संदोहे वणिग्जन सुमन्दिरो ॥ १८ ॥

इस उपरोक्त विवरण से इन राजाओं का वंशक्रम अब इस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है :-

सेढ़वदेव (१४९२ वि०)



[विश्वम्भरा वर्ष ४
अंक ३ में प्रकाशित]

महारावल गोपीनाथ से सम्बन्धित कुछ ग्रन्थ-प्रशस्तियां | ५

डूंगरपुर का महारावल गोपीनाथ या गईपा बड़ा प्रसिद्ध शासक था। यह महारावल पाता के पश्चात् डूंगरपुर राज्य का अधिकारी हुआ था। इसके शासनकाल की मुख्य घटनाएं महाराणा कुम्भा और गुजरात के सुल्तान अहमदशाह के साथ युद्ध करना हैं। यह बड़ा महत्वकांक्षी था। महाराणा मोकल के अन्तिम दिनों में मेवाड की फूट का लाभ उठाकर उसने कोटड़ा, जावर आदि भाग छीन लिया। जावर से वि० सं० १४७८ का महाराणा मोकल का शिलालेख[1] मिला था। छप्पन के राठोड़ों के साथ इसके क्या सम्बन्ध थे, यह स्पष्ट नहीं हो सका है।

फारसी तवारीखों के अनुसार गुजरात का सुल्तान अहमदशाह रज्जब हि० स० ८३६ (फरवरी/मार्च १४३२ ई०) में डूंगरपुर, मेवाड़ और नागौर पर आक्रमण करने को रवाना[2] हुआ था। तारीख इ-अल्लाई में लिखा है कि सुल्तान[3] डूंगरपुर होता हुआ मेवाड़ में देलवाड़ा और झीलवाड़ा की तरफ गया। उसके सेनापति मलिक मुनीर ने डूंगरपुर और मेवाड में बड़ी लूट मचाई और एकलिंगजी के प्रसिद्ध देव भवन को खंडित किया। तबकात-इ-अकबरी में निजामुद्दीन को रावल

---

1. वीरविनोद भाग १ के शेष संग्रह में प्रकाशित।
2. तारीख-इ-फरिश्ता का अनुवाद भाग ४, पृ० ३३
   तबकात-इ-अकबरी ,, भाग ३, पृ० २२०
3. मिराते-सिकन्दरी का अनुवाद पृ० १२०-१२१
4. तबकात-इ-अकबरी का अनुवाद भाग ३, पृ० २०२०-२१

द्वारा भारी रकम देकर आक्रमण से मुक्ति पाना[4] लिखा है । आंतरी शान्तिनाथ के मन्दिर की वि० सं० १५२५ की प्रशस्ति में रावल गोपीनाथ के गुजरात[5] के सुल्तान की अपार सेना को नष्ट कर सम्पत्ति लूटने का उल्लेख है, जो अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

कुम्भा के साथ उसका युद्ध वि० स० १४९६ के पश्चात् हुआ प्रतीत होता है क्योंकि राणकपुर के प्रसिद्ध लेख में उक्त विजय का उल्लेख नहीं है । इसके अतिरिक्त छप्पन के भूभाग से वि० सं० १४९४ का सूरखंड का शिलालेख हाल ही में विद्वान् लेखक श्री रत्न-चन्द्रजी अग्रवाल ने[6] प्रकाशित कराया है । उसमें भी महाराणा कुंभा का उल्लेख नहीं है, जिससे भी स्पष्ट है कि उस काल तक उसका वहां पर राज्य नही हो सका था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में रावल गोपीनाथ को जीतने के लिये कुंभा ने अश्वसेना की सहायता लेना उल्लेखित है । उसके आने की सूचना मिलते ही रावल गोपीनाथ भाग खड़ा हुआ[7] । इस युद्ध के फलस्वरूप कोटड़ा और जावर स्थायी रूप से मेवाड़ में मिला लिये गये ।

इस राजा की तिथि अब तक वि० सं० १४८३ मानी जाती है अचलदास खीची की वचनिका में भी इस उल्लेख है । किन्तु प्रस्तुत प्रशस्तियों में एक वि० सं० १४८० की भी विद्यमान है, अतएव इसके राज्य काल का सम्वत् १४८० के आसपास रहना चाहिये । इससे सम्बन्धित कुछ प्रशस्तियां इस प्रकार है:—[4]

(१) पंच प्रस्थान विषम पद व्याख्या

यह ताड़पत्रीय ग्रन्थ है एवं श्री अमृतलालशाह द्वारा सम्पादित

---

5. ओझा डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ० ६५-६६

6. वरदा वर्ष ६, अंक ४

7. तन्नागरीनयननीर तरंगिणी नामंगीकृत किमुसमुत्तरणं तुरंगैः,
श्रीकुंभकर्णनृपतिः प्रवितीर्ण झंपैरालोडयद् गिरिपुरं यदवी-
भिरुग्रः ॥ २६६ ॥
यदीय गज्जद्गजतूर्यघोषसिहस्वनाकर्णननष्टशौर्याः ।
विहायदुर्ग्गं सहसा पलायां चकार गोपाल श्रृगाल बालः ॥२६७॥
(कुंभलगढ़ प्रशस्ति)

प्रशस्ति संग्रह नामक ग्रन्थ में यह पृ० २१५ पर प्रकाशित है :—

"स्वस्ति सम्वत् १४८० वर्षे अद्येह श्रीडूंगरपुरनगरे राउल श्रीगइपालदेवराज्ये श्रीपार्श्वनाथचैत्यालये लिखितं पचाकेन...."

(२) द्वयाश्रय वृत्ति (प्रथम खण्ड, सर्ग १-११)

यह ग्रन्थ सिंघवी पाड़ा पाटन के भण्डर में सुरक्षित है और "डिस्क्रिप्टिव केटलाग ऑफ मेनुस्क्रिप्ट इन दी जैन भण्डार एट पाटन" ग्रन्थ के पृ० २१६ पर प्रकाशित है :—

"सम्वत् १४८५ वर्षे श्री डूंगरगढ़ राज्ये राउल गइपाए विजय राज्ये श्रावण बदि १५ शुक्रदिने द्वयाश्रयवृत्ति लिखिता लिंबाकेन शुभं भवतु।" (सूची संख्या ६५८)

(३) द्वयाश्रयवृत्ति (सं सर्ग १२-३०) अभयतिलक प्राकृत द्वयाश्रयवृत्ति (सर्ग ८) त्रुटिपत्र यह ग्रन्थ भी उपर्युक्त भण्डार में है और उक्त ग्रन्थ के पृ० २१६ पर प्रकाशित है :—

"द्वितीय खण्ड ग्रन्थाग्रं ८८५८। सकल ग्रन्थ १७५७४ सम्वत १४८६ वर्षे श्रीडूंगरपुरे लिखितं लींबाकेन"

(४) "उत्तराध्ययन सूत्र अवचूरि"

जैसलमेर भण्डार की ताडपत्रीयसूची में पोथी सं० ६६ में इसका वर्णन दिया है। इसकी प्रशस्ति इस प्रकार है :—

"सम्वत् १४८६ वर्षे फाल्गुन बदि १० रवौ श्री डूंगरपुर नगरे राउल गइपालदेव राज्ये लिखिता लीम्बाकेन।

(५) कथा कोश प्रकरणम्

खंभात के भण्डार में सुरक्षित है। प्रशस्ति संग्रह के पृष्ठ संख्या ८८ पर प्रकाशित है :—

'श्री जिनेश्वर सूरिविरचितं कथाकोशः प्रकरणं समाप्त मिति। शुभं भवतु। श्री श्रमण संघस्य। सम्वत् १४८७ वर्षे आषाढ़ मासे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ रविदिने श्री डूंगरपुर नगरे राउल श्री गइपालदेव विजय राज्ये कथाकोष प्रकरण लिखितं लिम्बाकेन मंगलमस्तु। लेखक पाठकयोः"

(६) दशवैकालिक निर्युक्ति

सिघवी पाड़ा पाटन में संग्रहित है एवं प्रशस्ति संग्रह के ग्रन्थ में पृष्ठ ११८ पर प्रकाशित है :—

"संवत् १४८९ वर्षे ज्येष्ठ मासे कृष्ण पक्षे द्वितियां तिथौ गुरुदिने लिखितं डूंगरपुर नगरे पचाकेन"

(७) श्री उत्तराध्ययन निर्युक्ति

उत्तराध्ययन वृत्ति श्री शान्तिसूरि

सिघवी पाड़ा पाटन के भण्डार में संग्रहित है और उपर्युक्त संख्या २ पर प्रकाशित सूची के पृ० सं० २०२-२०३ पर प्रकाशित है—

"स्वति सम्वत् ४८९ वर्षे श्रावण मासे शुक्लपक्षे द्वितीयायां तिथौ रविदिने अद्येहश्री डूंगरपुरनगरे राउलगइपालदेव राज्ये लिखित श्री पार्श्व जिनालयं पचाकेन—"

इसके उत्तराधिकारी रावल सोमदास की तिथि वि० सं० १५०६ के आसपास मानी जाती है किन्तु वि० सं १५०४ की इसकी एक प्रशस्ति बड़ौदा के भण्डार से संग्रहित है। यह प्रशस्ति "सिद्धहेम बृहद्वृत्तिः" ग्रन्थ की है, जो इस प्रकार है—

"........सम्वत् १५०४ वर्षे मागसिर सुदि ११ सोमे। श्री गिरिपुरे राउल श्री सोमदास विजयराज्ये। महं० आंबा सुत महं० धनाजे निज भ्रातृ स्वपठनार्थमिदं प्राकृत व्याकरणम्—लेखि ।।छः।।"

(प्रशस्ति संग्रह पृ० ३९)

इन प्रशस्तियों से रावल गोपीनाथ का शासनकाल वि० सं० १४८० से १५०३ के आसपास तक स्थिर होता है। इसके शासनकाल में डूंगरपुर में बड़ी उन्नति हुई थी। विद्या का बड़ा विकास हुआ और कई ग्रन्थ लिखे गये थे। उनके समय के दो मुख्य लेखकों के नाम लीम्वा और पचा उल्लेखनीय हैं।

[राजस्थान भारती वर्ष १०
अ ४ में प्रकाशित]

———

पद्मिनी की ऐतिहासिकता | ६

पद्मिनी मेवाड़ के शासक रतनसिंह की महारानी थी। यह अत्यन्त रूपवती थी। उसे प्राप्त करने के लिये अल्लाउद्दीन खिलजी ने स्वयं सेना लेकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया था किन्तु वह सफल नहीं हो सका। इस पद्मिनी की ऐतिहासिकता को लेकर विद्वानों में मतभेद है। डा० ए. एल. श्रीवास्तव, प्रो० हबीब, प्रो० एस. रे. एस. सी. दत्त, डा० दशरथ शर्मा प्रभृति विद्वान् उसके अस्तित्व में विश्वास[1] करते हैं। इसके विपरीत के. आर. कानूनगो, के. एस. लाल आदि की मान्यता है कि पद्मिनी केवल जायसी की ही कल्पना है। कानूनगो ने अपने निबन्ध "ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ पद्मिनी लिजेंड" में इसका विस्तार से उल्लेख[2] किया है। इनके द्वारा उठाई गई आपत्तियों का समाधान इस प्रकार है।

क्या रतनसिंह चित्तौड़ का शासक नहीं था ?

श्री कानूनगो ने लिखा है कि विभिन्न वर्णनों के अनुसार अल्लाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के समय निम्नांकित रतनसिंह चित्तौड़ में थे—

[१] रावल समरसिंह का पुत्र, जिसका उल्लेख कुम्भलगढ़ के लेख में है।
[२] चित्रसेन का पुत्र रत्नसेन, जिसका उल्लेख जायसी ने किया है।
[३] ढुंढाड़ जाति का रतना, जिसके नाम पर आगे चलकर जयपुर प्रदेश का नाम ढुंढाड़ कहलाता है।

---

1. डा० दशरथ शर्मा—राजस्थान थ्रू दी एजेज, पृ० ६६२
2. कानूनगो कृत "स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री" में प्रकाशित लेख

[४] रतनसिंह, जो हमीर चौहान का पुत्र था, जिसे लखणसी ने चित्तौड़ में शरण दी थी।

[१] श्री कानूनगो ने यह दलील दी है कि मेवाड़ के भाटों ने इन चारों को मिला करके एक कर दिया है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह आलोचना ठीक नहीं है। रतनसिंह नाम के अलग २ कोई चार राजा नहीं थे। रावल समरसिंह के बाद रतनसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ था। जायसी का पद्मावत न तो ऐतिहासिक ग्रन्थ है और न समसामयिक कृति। उसने सुनी-सुनाई कथाओं के आधार पर रतनसिंह के पिता का नाम गलती से चित्रसेन लिख दिया है। ढुंढाड़ जाति के किसी रतना का उल्लेख उस समय नहीं मिलता है। खेमा के पुत्र रतना का जा टांटेरड जाति का था, अवश्य उल्लेख मिलता है। कानूनगो ने भ्रम से टांटेरड़ को ढुंढाड़ पढ़ा है। यह घटनाकाल के कई वर्ष पूर्व ही मर चुका था। यह तलारक्ष मात्र था और इसका राज्य परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं था। चौथे रतनसिंह का वर्णन वंश-भास्कर जैसे आधुनिक ग्रन्थ में मिलता है। हमीर चौहान के वंशज गुजरात में चले गये थे, जहां से उनके कई लेख मिले हैं। उनमें हमीर के पुत्र का नाम रतनसिंह दिया हुआ नहीं है। हमीर महाकाव्य आदि ग्रन्थों में भी हमीर के किसी पुत्र के चित्तौड़ आश्रय का उल्लेख नहीं मिलता है। पूर्वमध्यकाल की घटनाएं जो वंश–भास्कर में वर्णित की गई है अधिक विश्वसनीय नहीं है। एक विचित्र बात यह है कि कानूनगो एक तरफ तो यह तर्क देते हैं कि पद्मिनी का उल्लेख समसामयिक या २०० वर्ष के पूर्व की किसी कृति में नहीं है, अतएव अप्रमाणिक है जबकि अपने काल्पनिक तर्कों के लिये वंश-भास्कर जैसे आधुनिकतम ग्रन्थों का सहारा भी लेते हैं।

[२] श्री कानूनगो रतनसिंह को चित्तौड़ का शासक नहीं बतलाते हैं। वे लिखत हैं कि मेवाड़ के चित्तौड़ के अतिरिक्त अवध में एक चित्रकूट और है। रतनसिंह वहीं का शासक था। इसके लिये इन्होंने एक विचित्र तर्क प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि प्रो० मजुमदार ने एक हस्तलिखित "रतनसेन कुलावली" नामक ग्रन्थ ढुंढा है, जिसमें

लिखा है कि चित्तौड़ के राजा रतनसेन ने मुसलमानों से कई युद्ध किये और इसका पुत्र नागसेन प्रयाग का शासक हुआ। नागसेन के वंशज नेपाल के शासक है। अतएव इनकी धारणा वह है कि यह मेवाड़ का चित्तौड़ न होकर इलाहाबाद के आसपास कहीं स्थित था। जायसी ने भी इसी नगर का वर्णन किया है। कानूनगो का यह कथन केवल काल्पनिक तर्कों पर ही आधारित है। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि कानूनगो जैसे एक उच्चकोटि के विद्वान् बिना पद्मावत को पढ़े ही ऐसी टिप्पणी लिख देते हैं। यह सर्व विदित है कि नेपाल का मौजूदा राजवंश मेवाड़ के गुहिलोतों से ही सम्बन्धित है। जायसी ने न केवल पद्मावत में चित्तौड़ का वर्णन किया है बल्कि मेवाड़ के मांडलगढ़ आदि का वर्णन किया है। चित्तौड़ के शासक को हिन्दुओं का सबसे बड़ा शासक[1] बतलाया है। अतएव कानूनगो के तर्क में कोई बल प्रतीत नहीं होता है।

रत्नसिंह का दरीबे से वि० सं० १३५९ माघ सुदी ५ बुधवार का लेख[2] मिल चुका है जो अल्लाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के लिये प्रयाण करने की तिथि से ४ दिन पूर्व का ही है। अतएव उस समय वही शासक था।

क्या पद्मिनी सिंहलद्वीप की थी?

पद्मिनी और रत्नसिंह के विवाह को लेकर इस कथानक की अत्यधिक आलोचना की जाती है। 'अमरकाव्य' वंशावली के अनुसार रत्नसिंह समरसिंह का आइन्दा पुत्र न होकर सीसोदा शाखा का था जिसे उसने गोद लिया था। वह लखमसी के साथ यह कई वर्षों तक मेवाड़ के बाहर मालवा में भी रहा था।

पद्मिनी को सिंहलद्वीप की राजकुमारी मानने से इस कथानक में

---

1. जायसी कृत पद्मावत में चित्तौड़ युद्ध का प्रसंग द्रष्टव्य है। इसमें आक्रमण का मार्ग मांडलगढ़ होकर वर्णित किया है।
2. ओझा: उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १९१-९२

बड़ी भ्रांति पैदा हो गई है। जायसी ने तो यह भी निर्देश दिया है कि उक्त सारा ग्रंथ धार्मिक प्रतीकों पर आधारित हैं, अतएव कई लोग इसे केवल कल्पना ही मानते हैं। 'पद्मावत' निस्संदेह काव्य ग्रंथ है। उसमें इतिहास के साथ २ कल्पना का होना स्वाभाविक है। वस्तुतः भारतीय कथा ग्रंथों में नायक का सिलोन जाकर विवाह कर लाना एक प्रिय विषय रहा है। अपभ्रंश के "करकण्डु चरिउ" में नायक के सिलोन जाकर विवाह करने और मार्ग में लौटते समय समुद्र में तूफान आने आदि का वर्णन है। 'जिणदत्त चरित', भविसयत कहा' आदि में भी इसी प्रकार के प्रसंग है। 'श्री पाल चरित' में समुद्रपार के देशों से कई राजकुमारियों को विवाहित करके लाने का उल्लेख[1] मिलता है। सौभाग्य से महाराणा कुम्भा के शासनकाल में ही लिखी 'रयण सेहरी कहा' में भी इसी प्रकार का प्रसंग[2] है। यह जायसी के कई वर्ष पूर्व की कृति है। उसकी नायिका भी सिंहलद्वीप की राजकुमारी है। इसे प्राप्त करने के तरीके भी पद्मावत और उसमें मिलते हैं। 'रायणसेहरी' में स्वयं मंत्री जोगिनी बनकर जाता है, जबकि पद्मावत में स्वयं राजा। दोनों के मिलने का स्थान मंदिर वर्णित है। कथा बहुत मिलती[3] है। केवल अन्तिम भाग में अन्तर है। अतएव पता चलता है कि इस प्रकार की कथायें भारतीय कथा-साहित्य में बहुत ही प्रचलित थी। इस दृष्टि से पद्मिनी को सिलोन की राजकुमारी मानना गलत है।

कई विद्वान् सिलोन से संगति बिठाने के लिये सिंगोली ग्राम से इसका ध्वनि साम्य बिठाते हैं। कुछ अर्वाचीन[4] वंशावलियों में "समलद्वीप पाटन" लिखा हुआ है। इन कथाओं में भी इसे प्रायः चौहान वंश

---

1. मेरा लेख "पद्मणी री ऐतिहासिकता" मरुवाणी, मार्च १९६७, पृ० २१ से २४
2. महाराणा कुम्भा, पृ० २१३ और रयण सेहरी कहा, गाथा १४९ एवं १५०।
3. मरुवाणी, मार्च १९६७, पृ० २१ से २४
4. भारतीय साहित्य, वर्ष २ अंक २ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख।

की राजकन्या मानी है जो मालवा या पश्चिमी राजस्थान के किसी भू-भाग की रही होगी।

निस्संदेह राजा रतनसिंह के सिलोन जाने और वहां से पद्मिनी को विवाह लाने की कथा पूर्ण रूप से कल्पना है। अबुल फज्ल ने इसका वर्णन नहीं किया है। स्मरण रहे कि इस अंश को इस सम्पूर्ण कथानक में से निकाल देने से पद्मिनी की ऐतिहासिकता पर कोई अन्तर नहीं आता है। रतनसिंह का शासनकाल अल्पकालीन होने के कारण यह वर्णन सर्वथा गलत है।

क्या पद्मिनी कथानक केवल जायसी की कल्पना है?

श्री कानूनगो की मान्यता है कि मेवाड़ के इतिहास में पद्मिनी की कथा जायसी से ली है। उसके पूर्व इसका कोई रूप ही नहीं मिलता। यह कथन पूर्ण रूप से गलत है। राजस्थान के जैन भंडारों में इस संबन्ध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। 'गोरा बादल चौपाई'[1] सम्बन्धी कई ग्रन्थ लिखे हुये हैं। हेमरतन की चौपाई इनमें सबसे प्राचीन है। इस चौपाई

---

1. श्री उदयसिंह भटनागर द्वारा सम्पादित "गोरा बादल पदमिणी चउपई" की भूमिका में पृ० ३ से ६ तक दिये गये वर्णन में पद्मिनी कथानक को ५ प्रकार के वर्गों में रक्खा है :—
   (1) अज्ञात वर्ग, इसमें जैन कवि, हेतमदान आदि हैं।
   (2) जायसी वर्ग
   (3) हेमरतन वर्ग
   (4) जटमल नाहर वर्ग
   (5) लब्धोदय वर्ग

   श्री नाहटजी द्वारा सम्पादित "पदमिणी चरित्त चौपाई" भी द्रष्टव्य है।

2. हेतमदान कविमल्ल भणि, अमर चिति ते जगत गिणि।
   दठिउ न को रवि चक्र तलि, अलावदीन सुलितान्ह निम्न ॥१५४॥
   "गोरा बादल पदमिणी चउपई"

को जायसी के पद्मावत के कुछ समय बाद ही पूर्ण किया गया था। इसका आधार जायसी से भिन्न है। इसमें हेतमदान और कविमल्ल की गोरा बादल सम्बन्धी कृतियों का वर्णन है जो निश्चित रूप से जायसी के आसपास ही या इससे पूर्व की रही है। लगभग इसी समय हेमरतन के आसपास ही पद्मिनी कथानक सम्बन्धी वृतान्त दो कृतियों में मिलते हैं। 'आइने अकबरी', और तारीख-इ-फरिश्ता'। इन दोनों के कथानक का आधार भी भिन्न है। अतएव पता चलता है कि जायसी के आसपास ही कथानक के कई रूप मिलते थे। इस सम्बन्ध में एक और ठोस प्रमाण उपलब्ध है। पद्मावत के पूर्व ही "छित्ताई चरित" लिखा जा चुका था। यह ग्रन्थ वि० सं० १५८३ तंवर शासक सलहदी के राज्यकाल में पूरा हुआ था। इसमें प्रसंगवश अल्लाउद्दीन और राघव-चेतन की वार्ता दी गई है। अल्लाउद्दीन राघवचेतन से कहता है कि "मैंने चित्तौड़ में पद्मिनी के बारे में सुना। उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। रतनसेन को बन्दी बना लिया किन्तु गोरा बादल उसे छुड़ा ले गये।" इस प्रकार यह प्रसंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। डा० दशरथ शर्मा की मान्यता है कि यह प्रमाण इतना ठोस है कि इससे श्री कानूनगो के सारे तर्क की पद्मिनी केवल जायसी की ही कल्पना हैं गलत[1] साबित हो जाते हैं। जायसी पर स्वयं "बैन" नामक किसी कवि का प्रभाव स्पष्ट है।[2] अतएव इस कथा के जायसी के पूर्व ही प्रचलित रहने की बात सिद्ध होती है।

'खजाइन-उल-फतुह' का वर्णन

अल्लाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के समय अमीर खुसरो सुल्तान के साथ निस्संदेह मौजूद था। किन्तु उसकी कृति अल्लाउद्दीन के राज्य-काल की अफिसियल हिस्ट्री नहीं है। यह कार्य कबीरुद्दीन को दिया

1. जनरल ऑफ ओरियन्टल रिसर्च सोसाइटी, vol. १४, अंक १, पृ० ८१ में डॉ० दशरथ शर्मा का लेख : पद्मिनी चरित चौपाई की भूमिका, पृ० १६
2. पद्मावत में "कथा आरम्भ बैन कवि कहा" उल्लिखित है।

गया। जिसने "फतहनामा" में अल्लाउद्दीन के शासन का अत्यन्त विस्तृत इतिहास[3] लिखा। इस ग्रन्थ का बरनी आदि कई लेखकों ने उल्लेख किया हैं। इसमें मुगलों के प्रति उत्पन्न घृणा पूर्ण वर्णन थे। अतएव प्रतीत होता है कि मुगल शासनकाल में इसे विनष्ट कर दिया। 'खजाइन-उल-फतुह' में उत्तरी भारत जिनमें गुजरात, रणथम्भोर, चित्तौड़, जालोर, सिवाना, मालवा आदि की विजय का संक्षेप में 'वर्णन लिखा है। इसके विपरीत दक्षिण भारत की विजयों का अत्यन्त विस्तार से वर्णन लिखा है। उसके अनुवादकार श्री मोहम्मद हवीब की मान्यता है कि 'फतहनामा' में कबीरुद्दीन ने उत्तरी भारत की विजयों का ही विस्तार से वर्णन लिखा है इसलिए 'खजाइन-उल-फतुह में' एवं बरनी के ग्रन्थ में इनका अत्यन्त संक्षेप में वर्णन लिखा गया है।[4]

अमीर खुसरो स्वयं पद्य लेखक था। गद्य लेखक के रूप में 'खजाइन-उल-फतुह' का वर्णन बाण की कादम्बरी के समान अत्यन्त अलंकार पूर्ण भाषा में है। इसने चित्तौड़ आक्रमण में पद्मिनी का उल्लेख नहीं किया है तो गुजरात आक्रमण के वर्णन में देवलदेवी का वर्णन भी नहीं किया है। रणथम्भोर के आक्रमण का वर्णन भी पूरा नहीं है। इसके अतिरिक्त कई मुगल आक्रमण भी छोड़ दिये हैं जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। अनुवादकर श्री मोहम्मद हवीब की मान्यता है कि खजाइन उल-फतुह में जो प्रसंग अल्लाद्दीन के चरित्र के विरुद्ध थे वे इसमें स्वेच्छा से छोड़ दिये हैं। उदाहरणार्थ अल्लाउद्दीन द्वारा अपने चाचा के वध का वर्णन उसमें इसी प्रकार लिखा गया है। अतएव 'खजाइन-उल-फतुह' का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त, एक पक्षीय एवं अलंकारपूर्ण भाषा में लिखा गया है।

उसमें सुल्तान के आक्रमण के प्रसंग में लिखा है "११ मुहर्रम को सुल्तान दुर्ग पर पहुंचा। यह भृत्य (अमीर खुसरो) जो सुलेमान का पक्षी है। उसके साथ था। सुल्तान वार-वार 'हुद-हुद' चिल्ला रहा था किन्तु मैं वापस नहीं लौटा, क्योंकि मुझे डर था कि सुल्तान कही पूछ न

3. मोहम्मद हवीब कृत "खजाइन-उल-फतुह" की भूमिका, पृ० १२
4. उपरोक्त पृ० १३-१४

बैठे कि 'हुद-हुद' दिखाई क्यों नहीं पड़ता है ? क्या वह अनुपस्थित है ? और यदि वह ठीक कैफियत मांगे तो मैं क्या बहाना करूंगा।"

दुर्ग पर आक्रमण का उल्लेख करते हुए इसके पूर्व यह पंक्ति दी गई है "इस दुर्ग पर आज के युग के सुलेमान (अल्लाउद्दीन) की सेना को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है जो शेबा के आक्रमण की तरह है। उसमें स्पष्टतः कुरान शरीफ के २३ वें अध्याय में उल्लेखित सुलेमान के शेबा की रानी 'बलक्विश' के लिये आक्रमण का संकेत है। इसमें अल्लाउद्दीन को सुलेमान, बलक्विश को पद्मिनी, शेबा को चित्तौड़ और 'हुद-हुद' को अमीर खुसरो से तुलना की गई है। अधिकांश विद्वान् इसे ठीक मानते हैं किन्तु श्री कानूनगो, वहीद मिर्जा का उल्लेख कर उसे ठीक नहीं मानते हैं किन्तु सारे प्रसंग को देखने से स्पष्ट है कि कानूनगो के आक्षेप गलत हैं, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है। अमीर खुसरो अलंकारपूर्ण भाषा लिखने में सिद्धहस्त था, अतएव उसने स्वाभाविक वर्णन को भी इसी प्रकार रूपकमय भाषा में वर्णित किया है जो उसकी शैली की विशेषता है। इस वर्णन को प्रस्तुत करने का अन्य कोई अर्थ समझ में नहीं आता है।

क्या अबुल फज्ल पद्मावत का ऋणी है ?

अबुल फज्ल ने 'आइन-इ-अकबरी' में अजमेर सूबे के वर्णन में चित्तौड़ का प्रसंगवश संक्षिप्त इतिहास लिखा है। श्री कानूनगो की मान्यता है कि पद्मावत से अबुल फज्ल ने यह वर्णन लिया है किन्तु यह आधारहीन बात है। स्वयं अबुल फज्ल ने यह लिखा है :–[1]"Ancient Chronicles record that Sultan Alauddin khilji king of Delhi had heard that Rawal Ratan Singh prince of Mewar possessed a most beautiful wife" इसमें "Ancient Chronicle" शब्द बड़े उल्लेखनीय है। इससे साबित हो जाता है कि अबुल फज्ल के समय कई प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख था। इसको

1. मोहम्मद हबीब कृत 'ऊजाइन-उल-फतुह' की भूमिका, पृष्ठ १४
2. आइन-अकबरी, vol. 11, पृ० २७४

पद्मिनी की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का ठोस प्रमाण मान सकते हैं क्योंकि अबुल फज्ल ने कई ग्रंथों को देखकर बड़ी खोज से अपना ग्रंथ लिखा है। 'एनसियंट'' का अर्थ कम से कम १०० वर्ष से अधिक की कृतियों को लिया जा सकता है।

राघवचेतन की ऐतिहासिकता

पद्मिनी कथानक का एक प्रमुख पात्र राघवचेतन है। वह पद्मिनी के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। इसे प्राप्त करने के लिये बादशाह को प्रोत्साहित करता है। वह मंत्रतंत्र आदि कई प्रकार की साधनायें जानता था। उसका दिल्ली दरबार में बड़ा सम्मान था। जिनप्रभसूरि प्रबन्ध में राघवचेतन के साथ उनका वाद विवाद होना वर्णित है। जिनप्रभसूरि भी कई बादशाहों से सम्मानित थे। मोहम्मद तुगलक के शासनकाल में[1] इन्होंने कई ग्रन्थ पूर्ण किये थे। कांगड़ा के संसारचन्द्र की प्रशस्ति में राघवचेतन का वर्णन आता है। शार्ङ्गधर पद्धति में "श्री राघव चेतन्य श्री चरणानां" वर्णित है। आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहित "बुद्धिविलास" में भी राघवचेतन का वर्णन आता है। 'छिताई चरित' में भी इसका वर्णन है। इस प्रकार राघवचेतन की ऐतिहासिकता में संदेह नहीं किया जा सकता है। यह प्रारम्भ में चित्तौड़ में रहा था। वहां से दिल्ली या बनारस चला गया था। तुगलक सुल्तानों के समय तक यह प्रभावशाली व्यक्ति था।

कुम्भलगढ़ प्रशस्ति का वर्णन

इस कथानक की सबसे बड़ी आलोचना इस बात को लेकर की गई है कि इसका उल्लेख किसी समसामयिक शिलालेख में नहीं है। इस

---

1. खरतरगच्छ पट्टावलि में वर्णित जिनप्रभसूरि प्रबन्ध का उल्लेखः—
"इत्थ पत्थावे वाराणसीओ समागओ राघवचेयणो बंभणो चउदस विज्जा पारगो मंत जंत जाणओ। सो आगंतूण मिलिओ भूवं। साहिणा बहुमाणो कओ। सो निच्चमेव आगच्छइ राय समीपे। एगया पत्थावे सहा उवविट्ठा। तओ राघवचेतणेव चिंतियं दुट्ठं सुहावं दोसवंतं काऊण निवरयामि इत्थ ठाणाओ....॥

सम्वन्ध में मूलभूत वात यह है कि शिलालेखो में राणियों के नाम प्रायः वहुत कम मिलते हैं। मीरां, हाड़ी करमेती, पन्ना धाय आदि के नाम भी नहीं मिलते हैं। इनकी भी ऐतिहासिकता में इसी प्रकार संदेह करना त्रुटिपूर्ण होगा। लोगों में प्रचलित परम्पराओं पर विचार करना भी आवश्यक है। कुम्मलगढ़ प्रशस्ति में प्रथम वार मेवाड़ का विस्तृत इतिहास लिखा गया था किन्तु उसमें भी पद्मिनी का उल्लेख नहीं किया है। उस सम्वन्ध में स्पष्ट है कि यह प्रशस्ति कुम्भा के उन्नत शासन-काल में बनाई गई थी। अतएव इसमें यहवर्णन अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है। किन्तु श्लोक स० १७७ में लक्ष्मणसिंह का वर्णन करते हुए इस सम्वन्ध में कुछ सकेत दिया है। इसमें लिखा है कि रतनसिंह के चले जाने के वाद कुल की मर्यादा की रक्षा करते हुये जिन्हें कायर पुरुप छोड़ना चाहते थे, वह काम आया। "कुल स्थिति कापुरुपैर्विमुक्तो न जातुधीराः पुरुषास्त्यजंति" का अर्थ स्पष्ट है इसमें गोरा-वादल और पद्मिनी सम्वन्धी कथा का सकेत मिलता है।

पद्मिनी के महल

चित्तौड़ में पद्मिनी के महलों को लेकर भी वड़ी आलोचना की जाती है, कहा जाता है कि ये महल आधुनिक हैं किन्तु मध्यकालीन ग्रन्थों में पद्मिनी के महलों का वर्णन मिलता है। 'अमरकाव्य' में सांगा के प्रसंग में वर्णित है "संस्थाप्य पद्मिनी गेहे कारायां चित्रकूटके" अर्थात् पद्मिनी के महलों में कुछ समय के लिये मालवे के सुल्तान को वन्दी रक्खा। कुछ प्राचीन गीतों में भी वर्णन मिलता है। वीकानेर नरेश रायसिंह का विवाह जव चित्तौड़ में महाराणा उदयसिंह की पुत्री से हुआ तव पद्मिनी के महलों में जाने और प्रत्येक सीढ़ी पर जाते हुये दान देने का वर्णन मिलता है। चित्तौड़ की गजल में भी पद्मिनी के महलों का उल्लेख है। इसी प्रकार और भी वर्णन मिलते हैं। अतएव चित्तौड़ में पद्मिनी के महल अवश्य विद्यमान थे। इनका आधुनिकीकरण तो वाद में हुआ है।

अन्य प्रमाण

राजा को वन्दी वनाने की घटना का उल्लेख वि० सं० १३६३ में

लिखी नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध में भी है।[3] नागपुर संग्रहालय में सग्रहित गुहिलवंशियों के एक शिलालेख पें विजयसिह नामक शासक के लिये उल्लिखित है कि उसने चित्तौड़ की लड़ाई में सुल्तान को हराया (जो चित्तौडउ जुझिअउ जिण दिल्ली दलु जित्त्) । यह शिलालेख समसामयिक होने से महत्त्वपूर्ण है। 'खजाइन उल-फतुह' के वर्णन से भी सुल्तान की एक बार हार होना माना जा सकता है। इस सारे वर्णन पर ऐतिहासिकों का ध्यान कम गया है। सुल्तान के ११ मुहर्रम को दुर्ग पर जाने का वर्णन आता है, इसके बाद रतनसिह को बन्दी बनाने का वर्णन है। अन्त में फिर १० मुहर्रम को चित्तौड़ से जाने का वर्णन है। इन तिथियों में व्यवधान है जो विचारणीय है। अबुल फज्ल ने भी दो आक्रमण माने हैं। इस सम्बन्ध में राजपूत सामग्री को देख-कर और शोध की आवश्यकता है। सबसे बड़ी कठिनाई हमारे दृष्टि-कोण की है। फारसी तवारीखों में ही इतिहास सीमित नहीं है बल्कि राजस्थान के इतिहास की सामग्री यहां के डिंगल-साहित्य में, यहां की परम्पराओं में, यहां के विपुल जैन भंडारों में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। अतएव इनको अगर उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया तो बड़ा राष्ट्रीय अहित होगा।

[शोध पत्रिका वर्ष १९ अंक ३, में प्रकाशित।]

---

3. श्रीचित्रकूट दुर्गेशं बद्धवा लात्वा च तद्धनम्।
कण्ठ बद्ध कपिमिवा भ्रामयत्तं च पुरे पुरे ॥३॥४॥
—नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध

—❀—

मालदेव और वीरमदेव मेड़तिया का संघर्ष

७

मेड़तिया राठौड़ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। वीरमदेव दूदावत के समय इनका मालदेव के साथ भीषण संघर्ष हुआ था। इस संघर्ष का प्रारम्भ दौलतखां के भागे हुए हाथी दरियाजोश को मेड़तियों द्वारा पकड़ लेना एवं गांगा और मालदेव के कई वार कहने पर भी उसे नहीं भेजना आदि घटनाओं से माना जा सकता है। वीरम ने इस झगड़े को शांत करने के लिए दो घोड़े राव गांगा के लिए और उक्त दरियाजोश हाथी मालदेव के लिए भेज भी दिया किन्तु हाथी मार्ग में ही मर गया। अतएव वीरमदेव और मालदेव के मध्य मनोमालिन्य बना रहा।[1]

वीरमदेव का अजमेर लेना

राव गांगा के बाद मालदेव मारवाड़ का स्वामी हुआ। नागौर के शासक दौलतखां ने वीरम पर आक्रमण किया तब नागौर को खाली देखकर मालदेव ने उसके राज्य पर आक्रमण कर नागौर हस्तगत कर लिया। जयमलवंश प्रकाश में दौलतखां के आक्रमण का सविस्तार वर्णन किया गया है। दौलत खां अजमेर की तरफ भाग खड़ा हुआ। यह घटना वि० सं० १५६०–६२ के मध्य हुई।[2]

---

1. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भाग १, पृ० ११२–११३
   ओझा—जोधपुर राज्य का—भाग १—पृ०२८०
   नैणसी की ख्यात, जिल्द २, पृ० १५२–५४
   जोधपुर राज्य की ख्यात में दौलतखां को ही लोटाना वर्णित है।
2. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास, भाग १, पृ० ११७
   आसोपा —मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० २४६
   जयमल वंश प्रकाश, पृ० ६०
   ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २८६

अजमेर कुछ समय पूर्व से कर्मचन्द पवार के अधिकार में था। महाराणा सांगा का यहां अधिकार था और उक्त कर्मचन्द उसका सामन्त था। सांगा की मृत्यु के बाद भी पंवारों का राज्य वहाँ बना रहा था। विक्रमी संवत् १५८९ में यह नगर कर्मचन्द के उत्तराधिकारी जगमल के अधिकार में था। आमेर शस्त्र भंडार में भविष्यदत्त चरित की एक प्रति संग्रहित है[3] इसकी प्रशस्ति में स्पष्टतः उस तिथि तक वहाँ परमारों का अधिकार होना वर्णित है। वि० सं० १५९० में गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने इसे अधिकृत कर लिया था एवं उसने अपनी ओर से शमशेरमुल्क को नियुक्त किया था।[4] नैणसी ने वहाँ पंवारों का राज्य होना लिखा है।[5] श्री शारदा ने वि० सं० १५९०-९२ तक अजमेर पर गुजरात के बादशाह का अधिकार होना लिखा है एवं वीरम का वि० सं० १५९२ के बाद ही अजमेर लेना वर्णित किया है। श्री रेऊजी ने विक्रम[6] संवत १५९१ में वीरम का अधिकार होना लिखा है जो संभवतः गलत है।

मालदेव का अजमेर लेना

राव मालदेव के अजमेर जीत लेने से वीरम पर और अधिक चिढ़ गया। उसने शीघ्र ही वीरम को लिखा कि यह भू-भाग उसके सुपुर्द करदे। वीरम ने इन्कार कर दिया। इस पर मालदेव ने वीरम पर आक्रमण कर मेड़ता अधिकृत कर लिया। विक्रम संवत १५९२ वैसाख की लिखी "षटकर्म" ग्रथावचूरी की प्रशस्ति के अवलोकन से प्रकट होता

---

3. 'संवत् १५८९ वर्षे मार्गसिर मासे कृष्णपक्षे दोज वृहस्पति वासरे। अजमेर मह गढ़ वास्तव्ये राव श्री जगमल राज्य प्रवर्तमाने"—
[भविष्यदत्त चरित्र की प्र०न० २ की प्रशस्ति
डा० कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह, पृ० १४९]

4. वेले—हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ० ३७३।
शारदा—अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव, पृ० १५७

5. नैणसी की ख्यात, जिल्द २, पृ० १५४

6. रेऊ—मारवाड़ का इतिहास, पृ० ११८

है कि उक्त तिथि तक बीरम का वहाँ अधिकार[7] था। श्री रेऊ ने मालदेव का १५९२ के पूर्व ही मेड़ता लेना लिखा है। जिसका उपरोक्त प्रशस्ति से मिलान नहीं होता है अतएव यह तिथि वि० सं० १५९२ या उसके बाद ही होनी चाहिए। इसी समय मालदेव ने अजमेर से भी बीरम को भागने को बाध्य कर दिया। "जयमल वंश प्रकाश" में मालदेव के द्वारा मेड़ता पर २ वार आक्रमण किए जाने का उल्लेख है जिसकी पुष्टि नहीं होती है।

बीरम का चाटसू आदि लेना और मालदेव का उसे वहाँ से भगाना

ख्यातों में लिखा मिलता है कि बीरम देव अजमेर से रायमल शेखावत के पास गया और उससे सहायता लेकर उसने चाटसू बोंली आदि के भूभाग पर अधिकार कर लिया। यह भूभाग उस समय टोडा के सोलंकियों के अधिकार में था और कछवाहों और इनमें संघर्ष चल रहा था[8]। वि० सं० १५९४ की षट्पाहुड़ ग्रन्थ की प्रशस्ति आमेर शास्त्र भंडार में संग्रहित[9] है। इसमें चाटसू में बीरम को शासक के रूप में वर्णित किया है। यह प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण है और इससे बीरम राठौड़ की इस क्षेत्र की गति-विधियों का पता चलता है।

मालदेव ने बीरम का पीछा किया और विक्रम संवत् १५९५ में उसे यहां से भागने को बाध्य कर दिया। आमेर शास्त्र भण्डार में

---

7. "संवत् १५९२ वर्षे शाके १४५७ प्रवर्तमाने वैशाखमासे शुक्लपक्षे तृतीयायां तिथौ रवीवारे। मृगशिर नक्षत्रे। श्री मेड़ता नगरे। राजाधिराज श्री वीरमदेव राज्ये................"

[प्रशस्तिसंग्रह (श्री शाह द्वारा सम्पादित), पृ० ९३

8. सोलंकी राजा सूर्यसेन स० १५९७ तक जीवित था। इसके पुत्र पृथ्वीराज और पूर्णमल थे। पृथ्वीराज का बेटा रामचन्द्र वि०स० १५८१ में घटयावळी आदि में नियुक्त था। पूरणमल आवां का जागीरदार था। इनसे बीरम का संघर्ष हुआ था।

9. "संवत् १५९४ वर्षे महासुदि २ बुधवारे श्रवण नक्षत्रे श्री मूलसंघे

संग्रहित वरांग चरित की वि० १५९५ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि टोंक के आसपास तक मालदेव का राज्य था[10]। श्री रेऊजी ने वहां वि० सं० १५९५ के स्थान पर १५९७ में मालदेव का अधिकार करना लिखा है जो उक्त प्रशस्ति मिल जाने से स्वतः गलत सावित हो जाता है।

वीरम देव भाग कर शेरशाह के पास चला गया। नैंणसी लिखता है कि जब मालदेव की फौज मौजमावाद तक आ गई तब वीरम ने खेमा मेहता को कहा कि इस बार मैं अवश्य लड़कर के मर जाऊंगा। तब मेहता ने कहा कि पराई धरती में क्यों मरे और मरना ही है तो मेड़ता में ही क्यों नहीं जाकर के मरे। इस पर दोनों ही रणथम्भोर के थानेदार के प स गये और उसकी सहायता से ये शेरशाह सूर के पास[11] चले गये। उस समय इस क्षेत्र में मेवात का शासक शाह आलम नियुक्त था जो शेरशाह का सामन्त था। इसके समय में लिखी विक्रम संवत् १६०० की लघु सग्रहिणी सूत्र की प्रति छाण (गुजरात) के शास्त्र भण्डार में है और वि० सं० १६०२ की चाटसू में लिखी पट्पाहुड़ ग्रन्थ की प्रति प्राप्त हुई है जो आमेर शास्त्र भण्डार[12] में है। मालदेव का इस क्षेत्र पर अधिकार कुछ वर्षों तक ही रहा प्रतीत होता है। इस क्षेत्र से मिले वि० सं० १६०४ के टोडा के लेख में राव रामचन्द्र महाराणा उदयसिह और सलेम शाह सूर का उल्लेख है।

बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नद्याम्नाये कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवस्तत् शिष्य श्री धर्मचन्द्रदेवात्तदाम्नाये खंडेलवालान्वये चम्पावती नगरे राठौड़ वंशे राव श्री वीरमद्य राज्ये बांकली वाल गोत्रे............" [डा० कासलीवाल–प्रशस्तिसंग्रह, पृ० १७५]

10. संवत् १५९५ वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठी दिवसे शनैश्चरवासरे उत्तरानक्षत्रे राव श्री मालदेव राज्य प्रवर्तमाने रावत श्री खेतसी प्रतापे सांखोण नाम नगरे श्री शांतिनाथ चैत्यालये"[उक्त पृ० ५५]

11. नैंणसी की ख्यात, भाग २, प० १५६–५७

12. "संवत् १६०२ वर्षे वैशाख सुदि १० तिथौ रविवासरे उत्तरा

वीरम का मेड़ता लेना

शेरशाह ने विक्रम संवत् १६०० में जब मालदेव पर आक्रमण किया तब बीकानेर का राजा और बीरम भी उसके साथ थे। ख्यातों में प्रायः वीरम के विरुद्ध यह दोष लगाया जाता है कि उसने युद्ध के अवसर पर मालदेव के सरदारों के पास चातुरी से रुपये अथवा तलवारें पहुंचा दी और मालदेव को कहलवा दिया कि तुम्हारे सरदार शेरशाह से मिल गये हैं। इसलिए वह भागने को विवश हो गया। इसके विपरीत फारसी तवारीखों में शेरशाह का ही पत्र डालना वर्णित है। यह विवादास्पद[13] है। जो कुछ भी हो, वीरम को लगभग वि० सं० १६०० के आस-पास शेरशाह ने मेड़ता वापस दिला दिया। इस प्रकार लगभग १० वर्षों तक युद्ध की मुख्य-मुख्य तिथियां इस प्रकार होनी चाहिए:—

(अ) दौलत खां का वीरम पर आक्रमण वि०सं० १५९०–९२

(आ) वीरम का अजमेर पर अधिकार वि० सं० १५९२

(इ) मालदेव का मेड़ता लेना वि०सं० १५९२–९३

(ई) वीरम का चाटसू आदि लेना वि० सं० १५९३–९५

(उ) मालदेव का चाटसू टोंक आदि लेना वि० सं० १५९५

(ऊ) वीरम का मेड़ता लेना वि० सं० १६००

[मरुभारती प्रकाशित]

फाल्गुणनक्षत्रे राजाधिराज शाहआलमराज्ये नगर चम्पावती मध्ये"

13. नणसी की ख्यात, जिल्द २, पृ० १५७–५८। इसमें २० हजार रुपयों की थैली जैता और कूम्पा के डेरे पर भिजवाना वर्णित है। अन्य ख्यातों में ढालों में जाली पत्र लिखकर डलवाना वर्णित है [वीर विनोद, भाग २, पृ० ८१०] फारसी तवारीखों में मालदेव के यहां शेरशाह का पत्र डलवाना वर्णित है [तारीख-इ-शेरशाही इलियट डोन्सन, भाग ४, पृ० ४०५। मुन्तखाब-उत-तवारीख [रेंकिंग का अनुवाद], भाग १, पृ० ४७८ आदि।

दानवीर भामाशाह-परिवार | ८

भारत के इतिहास में भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। देशभक्ति, अपूर्व त्याग और स्वामिभक्ति के लिए आज भी इन्हें आदर्श माना जाता है। मेवाड़ के लिए इनकी सेवायें उसी प्रकार उल्लेखनीय हैं जिस प्रकार गुजरात के लिये वस्तुपाल तेजपाल की।

मेवाड़ के महाराणा सांगा की मृत्यु वि०सं० १५८४-८५ में खानवा युद्ध के कुछ समय पश्चात् हो गई। उसके उत्तराधिकारी उसके समान शक्तिशाली नहीं थे। भारत में उस समय सत्ता के लिये मुगल और अफगान संघर्ष कर रहे थे और हुमायूं ने शूरवंशी सुल्तान को हटाकर अपना खोया हुआ राज्य वापस प्राप्त कर लिया। थोड़े समय पश्चात् इसकी मृत्यु हो गई। इसका उत्तराधिकारी अकबर अत्यन्त शक्तिशाली था। इसने कई राजघरानों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने राज्य की नींव दृढ़ कर ली। इसने मेवाड़ पर वि० सं० १६२४ में आक्रमण किया। उस समय वहां का महाराणा उदयसिंह शासक था। राजपूतों ने महाराणा को पहाड़ों में भिजवा कर चित्तौड़ दुर्ग का भार जयमल मेड़तिये को सौंप दिया। राजपूतों की हार हो गई और उदयसिंह कुम्भलगढ़ की तरफ चला गया। वि० सं० १६२५ की लिखी सम्यक्त्व-कथाकौमुदी की प्रति आमेर-शास्त्र भंडार में संग्रहित है जिसमें कुम्भल-गढ़ में उक्त राणा के शासनकाल में ग्रथलेखन का[1] उल्लेख है। जिससे

---

1. संवत् १६२५ वर्षे शाके १४९० प्रवर्तमाने दक्षिणायने मार्गशीर्ष-शुक्लपक्षे षष्ठम्यां शनौ श्री कुम्भलमेरु दुर्गे रा० श्री उदयसिंह राज्ये खरतरगच्छे श्रीगुणलाल महोपाध्यायैः स्ववाचनार्थं लिखापितं। (सम्यक्त्वकथाकौमुदी प्र० नं० १९१०, आमेर-शास्त्र भण्डार)

कुम्भलगढ़ में उसके राज्य की पुष्ठि होती है। धीरे-धीरे अकबर ने मेवाड़ के अधिकांश भाग को अधिकृत कर लिया। यहां के महाराणा के पास उस समय धन और सैनिक सामान दोनों की व्यवस्था कर सकने वाले पुरुष की आवश्यकता थी। उस समय रामाशाह प्रधान था किन्तु वह इतना उपयुक्त नहीं था। उसे हटाकर उदयसिंह के वंशज महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान नियुक्त किया। ख्यातों में लिखा मिलता है "भामौ परधानो करे, रामौ कीधौ रद्द।[2]

भामाशाह के पूर्वज

भामाशाह कावड़िया गोत्र का ओसवाल था। इसके पूर्वज अलवर क्षेत्र के रहने वाले थे और सांगा के समय इसका पिता भारमल रणथम्भोर में किलेदार के पद पर था। वह इस पद पर कई वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य करता रहा।

महाराणा सांगा ने अपने अन्तिम दिनों में इस दुर्ग को अपने पुत्र विक्रमादित्य एवं उदयसिंह को दे दिया था। ये दोनों अपनी माता हाड़ी करमेती के साथ यही रहा करते थे।[3] बाबर ने अपनी जीवनी तुजके बाबरी में लिखा है कि सांगा की मृत्यु के पश्चात् उक्त रानी ने चित्तौड़ के राज्य को प्राप्त करने में उसकी सहायता चाही थी एवं

---

2. ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६६२।

3. ख्यातों में लिखा है कि करमेती पर राणा सांगा का विशेष प्रेम था। एक दिन करमेती ने निवेदन किया कि आप अपने जीवन-काल में ही अपने दोनों पुत्रों को, जो रतनसिंह से छोटे हैं, रणथंभोर की जागीर दिला दें और सूरजमल हाड़ा को इनकी देखभाल के लिये नियुक्त कर दें तो अधिक अच्छा रहे। सांगा ने ऐसा ही कर दिया। किन्तु उसके मरने के बाद रतनसिंह और सूरजमल में विद्वेष बना रहा और दोनों इसी मामले को लेकर आपस में मन-मुटाव रखने लगे। इसके परिणामस्वरूप दोनों ने एक-दूसरे पर घातक आक्रमण कर अपनी जान से हाथ धोया।

रणथम्भोर उसे देने का वचन भी दिया था ।[4] किन्तु राणा सांगा का ज्येष्ठ पुत्र एवं उत्तराधिकारी रत्नसिंह शीघ्र ही मार डाला गया एवं हाड़ी करमेती का पुत्र विक्रमादित्य स्वतः चित्तौड़ का स्वामी हो गया। इतना होते हुए भी रणथम्भोर पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। आमेर-शास्त्र भण्डार में उक्त काल की लिखी कुछ ग्रन्थों की प्रतियां उपलब्ध है जिनमें स्थानीय शासक का नाम खिज्रखां दिया हुआ है ।[5] अतएव प्रतीत होता है कि इस राजनैतिक परिवर्तन के अवसर पर यह परिवार भी रणथम्भोर से चित्तौड़ चला आया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि उस समय हाड़ी करमेती के पुत्रों का ही राज्य चित्तौड़ में था। यह घटना वि० स० १५९०-९५ के मध्य सम्पन्न हुई होगी।

भामाशाह की सेवाएँ

भामाशाह का जन्म चित्तौड़ में आषाढ़ शुक्ला १० वि० सं० १६०४ (२८ जून १५४७ ई०) को हुआ था ।[6] लूंकागच्छीय पट्टावली से प्रतीत होता है कि यह परिवार वि० सं० १६१६ के पूर्व अवश्यमेव चित्तौड़ में बस चुका था और किसी दक्षिणी शंख की कृपा से इस परिवार के पास करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति हो गई थी। मूल वर्णन देपागर मुनि के वर्णन के साथ आता है जो परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।

हल्दीघाटी के युद्ध और इसके पश्चात् निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने के कारण प्रताप की लगभग सारी सम्पत्ति विनष्ट हो गई। आजादी का दीवाना प्रताप देश की स्वाधीनता के लिये जगलों की खाक छानता फिर रहा था। इन भयंकर विपत्तियों के समय भी वह अपने दृढ़ निश्चय पर अडिग रहा था। किन्तु धनाभाव से दुःखी होकर वह सदैव के लिये मेवाड़ छोड़कर जा रहा था। ऐसे समय में भामाशाह ने अपनी सारी सम्पत्ति लाकर के उसके सन्मुख रख दी। कर्नल टाड के द्वारा

---

4. तुजके बाबरी (अंग्रेजी अनुवाद) पृ० ६१२-६१३
5. राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची, भाग ३, पृ० ७३
6. वीर विनोद, भाग २, पृ० २५१। ओसवाल जाति का इतिहास पृ० ७४।

दिये गये वर्णन के अनुसार सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि प्रताप २५ हजार सैनिकों को १२ वर्ष निर्वाह करा सकता था। सम्पत्ति देने के सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। श्रीगौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते हैं कि भामाशाह महाराणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड़ राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानों पर रखा जाता था जिसका ब्यौरा वह एक वही में रखता था और आवश्यकता पड़ने पर इन स्थानों से द्रव्य निकालकर लड़ाई का खर्च चलाया जाता था। यह मत सत्य नहीं लगता है क्योंकि बहादुरशाह के मेवाड़ पर दो बार आक्रमण हुए और एक बार शेरशाह का आक्रमण हुआ। इसके बाद अकबर के साथ उदयसिंह का भयंकर युद्ध हुआ। इन युद्धों से मेवाड़ का राजकोष खाली-सा हो चुका था। बहादुरशाह को सांगा द्वारा छीने हुए मालवे के सुल्तान के बहु मूल्य जेवर, जड़ाऊ मुकुट, सोने की कमरपेटी आदि तक देने पडे थे। अतएव उस समय जो राशि भामाशाह ने दी थी वह स्वयं उसके परिवार की ही थी। लूंकागच्छीय पट्टावली के वर्णन के अनुसार इस परिवार के पास करोड़ों की सम्पत्ति थी। इस सम्पत्ति के अतिरिक्त महाराणा ने भामाशाह और उसके छोटे भाई ताराचन्द को मालवा से सम्पत्ति लूट कर लाने को भेजा। दोनों भाइयों ने २०,००० मोहरें लूट करके लाकर महाराणा को प्रस्तुत की[9]। अकबर के सेनापति शाहबाजखां ने पीछा किया और लड़ते-लड़ते बसी ग्राम के पास ताराचंद घायल हो गया। तब बसी का स्वामी सांईदास उसको उठाकर ले गया और उपचार की समुचित व्यवस्था कराई।

इस प्रकार विशाल सम्पत्ति के मिल जाने से प्रताप ने अपनी खोई हुई भूमि को वापस प्राप्त करके में सफलता प्राप्त कर ली। मेवाड़ में चित्तौड़ कुंभलगढ़ के महत्वपूर्ण दुर्गों को छोड़कर शेष सारे भाग पर उसका अधिकार हो गया था।

.7 ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ७३
.8 ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६६१-६२
.9 डा० गोपीनाथ शर्मा-मेवाड़ एण्ड मुगल चम्परर्स।

भामाशाह और ताराचंद दोनों कुशल सैनिक भी थे। हल्दीघाटी के युद्ध में दोनों सफलतापूर्वक[10] लड़े थे। ताराचंद उस समय गोडवाड़ में सादडी ग्राम का हाकिम था। इसने इस नगर की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की थी और शाहवाजखां को इसे अधिकृत नहीं करने दिया था।[11] नाडोल की तरफ से बादशाह की ओर से आक्रमण होते रहते थे। इनका उसने सफलता-पूर्वक मुकाबला किया था।[12] भामाशाह द्वारा जारी किये गये कई ताम्रपत्र भी मिले हैं। ये महाराणा प्रताप के शासनकाल के हैं और वि० सं० १६३३ से लेकर १६५१ तक के मिलते हैं।

(२) वि० सं० १६४४ का दिगम्बर जैन मन्दिर ऋषभदेव का।

(१) वि० सं० १६३३ का कुंभलगढ़ का ताम्रपत्र—"महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसींघ आदेशात् आचार्य बालाजी वा किशनदास वलभद्र कस्य ग्रामं १ संथाणो मया कीधो

---

१०. वीर विनोद, भाग २. प० १५१। ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ४३२

११ शाहवाजखां बराबर इस क्षेत्र में लड़ रहा था। रामपुरा नवाब की लाइब्रेरी में सुरक्षित तारीख-ए-अकबरी जो हाजी मोहम्मद आरिफ कंधारी ने लिखी है, इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार वि. सं. १६३३ में ही अकबर ने शाहवाजखां को इस क्षेत्र में लगा दिया था। जैसलमेर भंडार में भोजचरित की हस्तलिखित प्रति संग्रहीत हैं जिसमें वि० सं० १६३४ की प्रशस्ति दी है जिसमें कुंभलगढ़ के लिए लिखा है—"कुंभलगढ दुर्गे विग्रहो विजयो भवति" एवं वहां अकबर का राज्य भी उल्लिखित किया है आदि। शाहवाजखां को पूर्ण विजय वि० सं० १६३५ में मिली थी। उस समय भी धोखे और चालाकी से। कंधारी ने 'खिदहाव और फरेबदादा' शब्द प्रयुक्त किये हैं। इस प्रकार निरन्तर दो वर्षों तक शाहवाजखां इस क्षेत्र में बराबर लड़ता रहा था।

१२. वीर विनोद, भाग २ पृ० २५७

उदके आघाटे दत्ता कुंभलमेर मध्ये संवत् १६३३ वष भादवा सुदी ५ रवौ श्री मुष प्रति हुक्म दी दो रायजीसाहमामो पहला पतर ले गया लुटयो गयो सु नवो करे मया कीधो"—(मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स, पृ० २०८)

इस ताम्रपत्र से स्पष्ट है कि इस संवत् तक अवश्यमेव वह मेवाड़ का प्रधान हो चुका था।

(३) वि० सं० १३४५ का ताम्रपत्र जहाजपुर का :—

"सिधश्री महाराजाधिराज महाराणा जी श्री प्रतापसिहजी आदेशातु तिवाड़ी साहुल नाथरा भवान काना गोपाल टीला धरती उदक आगे राणाजी श्री जी ताम्बा पत्र करावे दीधो थो प्रगंणे जाजपुर रा ग्राम पंडेरमध्ये हले धरती बीगा गारा करे दीधो श्रीमुष हुकम हुओ। साह भामा। संवत् १६४५ काती सुदी १५।"

(४) वि० सं० १६५१ का ताम्रपत्र—

"महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिह आदेशातु चौधरी रोहितास कस्य ग्राम मया कीधो ग्राम डईलाणा बड़ा माहे षेत ४ वरसाली रा उदक······ सं० १६५१ व्रषे आषोज सुद १५ दव श्रीमुख बीदमान सा० भामा।"

इन उपरोक्त विवरणों से उक्त वर्षो में उसके बराबर प्रधान रहने की बात सिद्ध होती है।

वीर-विनोद में दिये गये वृत्तान्त के अनुसार भामाशाह[13] को अब्दुलरहीम खानखाना ने महाराणा को अकबर की अधीनता में लाने के लिए बहुत समझायो था और हर तरह से इसे लोभ दिया गया था किन्तु त्यागमूर्ति भामाशाह ने उसे नकारात्मक उत्तर दे दिया।

लूंकागच्छ की सेवायें

भामाशाह-परिवार लूंकागच्छ का मानने वाला था। उक्त पट्टावली में दिये गए वृत्तान्त के अनुसार भीण्डर आदि मेवाड़ के कई ग्रामों

१३· उक्त पृ० १५६। ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४४६

में लूंकागच्छ के फैलाव के लिए इसने बड़ी सहायता दी थी। कई दिगम्बर परिवारों तक को इसने दीक्षित कराया था। लोगों को लाखों रुपयों की धन से भी सहायता दी थी। ताराचंद ने भी गोडवाड़ में इस कार्य को किया था। मोहनलाल दलीचंद देसाई लिखते[14] हैं कि भामाशाह के भाई ताराचंद को गोडवाड़ की हाकिमी मिलते ही वह सादड़ी में रहने वाले लूंकागच्छीय साधुओं का पक्ष लेने लगा। उसने मूर्तिपूजा वन्द तो नहीं कराई किन्तु पुष्पादि वस्तुयें इसके लिए वर्जित करादी। इसके प्रभाव के कारण कई लोग लूंकागच्छ में आ गए। उसने मूर्तिपूजकों पर कई अत्याचार किए। श्री देसाई ने अत्याचार का उक्त कथन श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गोड़वाड़ और सादड़ी लूंकामतियों के मतभेद का दिग्दर्शन नामक पुस्तक के आधार पर लिखा है जो कहां तक सही है कहा नहीं जा सकता।

कलाप्रेमी ताराचंद

ताराचंद वड़ा कलाप्रेमी था। इसने सादड़ी में विशाल बावड़ी वनवाई थी और उस पर एक शिलालेख भी लगवाया था। यह बावड़ी इसके मरने के वाद इसके पुत्र ने पूरी की थी। इसका शिलालेख अभी जीर्णोद्धार के समय वहां से हटा लिया गया प्रतीत होता है। मैंने कुछ वर्ष पूर्व इसकी छाप ली थी और इसे प्रकाशित भी कराया था।[15] यह बावड़ी स्थापत्यकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। ताराचंद के यहां कई संगीतज्ञ भी थें। सादड़ी में उसकी छत्री के समीप उसकी चार स्त्रियों की मूर्तियां हैं। इनके अतिरिक्त एक खवास ६ गायिकाएं, एक गवैया और एक गवैया की स्त्री की मूर्तियां भी खुदी हुई हैं। इन पर वि० सं० १६४८ वैशाख वदि ६ के लेख हैं। इनसे प्रतीत होता है कि कलाओं का वह बड़ा संरक्षक था। बावड़ी में उसके बैठने का स्थान दर्शनीय है। वह साहित्य प्रेमी भी था। हेमरतन ने प्रसिद्ध

१४. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५६६

१५ मरु भारती सन् १६६६ अंक ३, पृ० २ से १०

गोरा-बादल चोपाई [16] इसके पास रहकर के ही लिखी थी। इसकी प्रशस्ति से प्रताप के अन्तिम दिनों में इस परिवार की स्थिति का पता चलता है।

भामाशाह के वंशज

भामाशाह की मृत्यु वि० सं० १६५६ में हुई थी। [17] महाराणा प्रताप के बाद उसके पुत्र अमरसिंह के समय में भी वह इस पद पर विद्यमान रहा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जीवाशाह मेवाड़ का प्रधान बनाया गया। कर्णसिंह के साथ संधि के समय वह जहांगीर बादशाह के पास गया था। [18] इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका पुत्र अखयराज मेवाड़ का प्रधान [19] बना था। इसके बाद संभवतः इसके वंशजों को यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सका। किन्तु इनका सम्मान यथावत् बना रहा। महाराणा स्वरूपसिंह जी के समय एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि ओसवालों की न्यात में प्रथम तिलक किनको किया जावे? इस पर महाराणा ने वि० सं० १६१२ ज्येष्ठ १५ बुधवार को एक पट्टा लिखकर भामाशाह के परिवार वालों की प्रतिष्ठा बनाये रखने और उनको प्रथम तिलक करने का आदेश दिया। [20]

---

१६. संवत् सोलइसइ पणयाल। श्रावण सुदी पचमी सुविसाल॥
पुहवी पीठि घनु पर गहीं। सबल पुरी सोहइ सादड़ी॥
पृथ्वी परगट राणा प्रताप। प्रतपउ दिन दिन अधिक प्रताप॥
तस मंत्रीसर बुद्धिनिधान। कावडिया कुल तिलक निधान॥
सामिधरमी धुरी भामुसाह। वयरी वंस विध्रुषण राह॥

१७ ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६६२-६३

१८ उक्त भाग २ पृष्ठ ६६३

१६ उक्त

२० "स्वस्ति श्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री स्वरूपसिंघजी आदेशात् कावड़या जैचंद कुनणे वीरचन्द कस्य अप्रंच थारा वडा बासा भांमो कावडयो ई राजम्हे सामध्र कासु काम चाकरी करी जिकी मरजाद ठेठसू इंया है—महाजना की जातम्हे बावनी तथा

इस प्रकार भामाशाह की सेवाओं से मेवाड़ की ही रक्षा नहीं हुई, अपितु समस्त हिन्दू जाति का महान उपकार हुआ। अगर यथा-समय धन की सहायता भामाशाह-परिवार नहीं देता तो संभवतः प्रताप मेवाड़ छोड़कर चले जाते। यहां का इतिहास कुछ और ही होता। प्रताप की त्याग बलिदान और अपूर्व साहस की कहानी के साथ–साथ भामाशाह की स्वामिभक्ति और देशभक्ति की गाथाएं सदैव गाई जाती रहेंगी।

सादड़ी का शिलालेख

सादड़ी का उक्त तारा बावड़ी का शिलालेख महाराणा अमरसिंह के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों का है। इसमें भामाशाह के पिता भारमल से वशावली दी हुई है। इसमें कुल २२ पंक्तियां हैं। लेख वि० सं० १६५४ वैशाख वदि २ का है। ताराचंद उस समय स्वर्गस्थ हो चुका था। उसके पुत्र सुरत्ताण ने इसकी प्रतिष्ठा कराई थी। लेख में भामाशाह की माता कपूरदेवी का उल्लेख है। यह लेख इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि महाराणा प्रताप के अन्तिम दिनों में इस क्षेत्र को मुसलमानों से पूर्ण रूप से मुक्त करा लिया था। इस बात की पुष्टि वि० स० १६५१ के डेलाना (गोड़वाड़) ताम्रपत्र से होती है। यह ताम्रपत्र भामाशाह के हस्ताक्षरों से जारी किया गया था।

नागपुरीय परिशिष्ट लुंका गच्छीय पट्टावली में भामाशाह का वर्णन

"………तत्पट्टे श्री देपागर सूरयो बभूवस्ते परीक्षक वंशोया: कोटड़ा निगमे पेतसी नामा जनक: धनवती जननी नागोरपुरे चारित्रं

चोका को जीमण वा सींग पूजा होवे जीम्हे यह पहेली तलक थारे हो सो अगला नगर सेठ वेणीदास कासो कार्यो अर बेदयाफत तलक थारे नहीं करवा दीदो अबारु थारी साळसी दीखीं सो नगे करी अर न्यात म्हे हवसर म लुप हुई सो अब तलाक माफक दस्तुर के वे थारो करांया जाजो आगा सुं थारा हुक्म कर दीदो है सो पेली तलक थारे होवेगा। प्रवानगी मेहता सेरसींघ संवत् १६१२ ज्येष्ठ सुदी १५ दुवो………॥"

पदमपि तत्रैतम् संवत् १६१६ चित्रकूट महादुर्गे कावदियान्वयो भारमल धनी तथा गणीयोऽभूत्। तेन देपागरसूरीणामभिधानं शुद्धक्रियाधारकत्वं च श्रुतम्। तदादित एवं तद्गुणरञ्जितचेतस्कोऽवदत् श्लोकः—

धन्यो देपागरस्वामी प्रदीपो जैनशासने।
एष एव गुरुर्मेऽस्ति धन्योऽहं तन्निदेशकृत्॥

इति भावनया शुद्धात्माऽभूद् भारमल्लः तस्मिन्नवसरे तत्रत्यो भामा नामो नाहटोऽस्ति। तद्गृहेपुण्योगाद् दक्षिणावर्त्तः शङ्खः प्रादुरभूत् तत्सांनिध्याद् गृहेऽष्टादशकोटयो धनस्य प्रकटी भवन्ति....एकदा तत्र वन्तारुचैर्मण्डपाद्यो धर्मध्यानं विदधत् साधुगुणग्रामाभिरामः श्रीदेपागरस्वामी शुद्ध तपोधने भारमल्लेन दृष्टो विधिवद् वन्दितश्च। शुद्धधर्मोपदेशामृतं पीतं श्रवणाभ्याम्। अति प्रसन्नेन भारमल्लेन विमृष्टमहो! महान भाग्योदयो मे प्रकटितोयदीदृग गुणगौरवो दृष्टः सर्वेऽर्थो मे सेत्स्यन्ति। तदा भारमल्लान्वये च बहवः श्रावका जाता नागोरी लुङ्कगणीयाः। अथ भारमल्लस्य भामानामकसुतोऽजनि। महान् महः कृत। सर्वत्र दानादिनाऽर्थिजनमनोरथाः पूरिताः अन्येपि ताराचंद्रादयः पुत्रा अभूवन्। तत्र भाम शाहताराचंद्रो विश्रुतौ जातौ। स्वगच्छरागेण बहवोजनः स्वगणे समानीताः। पुनः श्री राणाजीतोऽमात्य पदं लात्वा बलिनौ जातौ। ताराचंद्रेण सादड़ीनाम नगरं स्थापितम्। सर्वत्र पौषधशालादिकानि स्थानानि कारतानि। स्थाने स्थाने पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे वहुजनेभ्यो धनं दायं दायं स्व गणीयाः कृताः। श्री नागोरी लुकाङ्-गणोऽतिख्यातिमाप। पुनःभामाशाहेन दिगम्बरमतगा नरसिंघपोराः स्वगणेसमानीताः। बहु स्व दत्वा १७०० गृहाणि तेषामात्मीयानी कृतानि। भिण्डरकादि पुरेषु तदा च जातं श्रावकग्रहाणां चतुरशीतिसहस्राधिकं लक्षमेकम्।........

(मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रंथ से)

कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास | ९

प्रतिहार साम्राज्य के विघटन के पश्चात् उत्तरी भारत में कई नये राज्य स्थापित हो गये। इनमें उल्लेखनीय गुजरात के चालुक्य, मालवा के परमार और अजमेर के चौहान थे। इनके अतिरिक्त अन्य कई छोटे २ राजा भी स्वाधीन हो गये जिनमें ग्वालियर, दूवकुण्ड और नरवर के कछावा भी हैं।

कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकारमय है। निश्चित प्रामाणिक सामग्री के अभाव में तिथि-वद्ध इतिहास प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है। ख्यातों के आधार पर कछावों की उत्पत्ति राम से[1] मानी गई है। ऐसी मान्यता है कि ये लोग प्रारंभ में अयोध्या से रोहतासगढ़ गये जहां नरवर आकर[2] वस गये थे। १० वीं शताब्दी के पश्चात् से कछावों का ग्वालियर, दूवकुण्ड, नरवर और आम्वेर की शाखाओं का जो इतिहास मिलता है उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :--

१. वडे वंश श्री रामके कछवाहे दल साजि।
   आये नरवर तें कियो देस ढुंढाड़उ राज ॥५७

२. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ जयपुर स्टेट by T.C ब्रुक एवं श्री J. P. स्ट्रेन द्वारा लिखित 'दी जयपुर आम्बेर फेमिली एण्ड स्टेट" की जयपुर स्थित प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की टाइप्ड प्रतियों के पृष्ठ क्रमशः २८ और ५।

ग्वालियर के कछावा

कुछ शिलालेखों के अतिरिक्त इस शाखा के इतिहास जानने का कोई साधन नहीं है। वि. सं. ११५० के सासवहू के मन्दिर का लेख इनका पहला विस्तृत लेख है जिसमें निम्नांकित ८ राजाओं का उल्लेख है यथा :- (१) लक्ष्मण (२) वज्रदामा (३) मंगल (४) कीर्तिराज (५) मूलदेव (६) देवपाल (७) पद्मपाल और (८) महीपाल।

लक्ष्मण--लक्ष्मण के पिता और निवास स्थान का उल्लेख नहीं मिलता है। यह निश्चित है कि इसका ग्वालियर पर अधिकार नहीं था। उस समय ग्वालियर दुर्ग पर प्रतिहारों का अधिकार था। ग्वालियर से वि स. ९३३ माघसुदि का एक लेख भोज प्रतिहार के समय[3] का मिला है। इसके पश्चात् भी कई वर्षों तक इस दुर्ग पर प्रतिहारों का ही अधिकार रहा प्रतीत होता है। लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा की तिथि स. १०३४ है। अतएव उसमें से २० औसतन वर्ष कम करके १०१४ लक्ष्मण की तिथि मान सकते[4] हैं। सासवहू मंदिर के लेख से विदित होता है कि वज्रदामा ने सबसे पहले ग्वालियर दुर्ग को विजित किया था। लक्ष्मण के लिये इस लेख में यह वर्णित है कि उसने प्रजा के हित के लिये पृथु की तरह हथियार धारण किये थे। अतएव इतना अवश्य पता चलता है कि उसने कहीं अपना छोटा राज्य अवश्य बना लिया था। कुछ ख्यातों में इसे ढोला राव का पुत्र भी वर्णित किया है और नरवर से ही आकर ग्वालियर जीतना लिखा है। लेकिन उसकी पुष्टि जब तक किसी प्रामाणिक सामग्री से नहीं

---

३. "......संवत ९३३ माघसुदि २ अद्येह श्रीगोपगिरीश्वरमिह परमेश्वर श्रीभोजदेव तदधिकृत कोट्टपाल मल्ल बलाधिकृत तुर्क स्थानाधिकृत श्रेष्ठि वव्वियाक इच्छुवाक सार्थवाह........"
[जरनल, रायल एशियाटिक सोसाइटी बगाल, भाग३१, पृ० ३९५]

४. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नोर्दर्न इंडिया फ्राम जैन सोर्सेस पृ० ७१-९२

हो जावे जब तक इसे नहीं माना जा सकता है। लक्ष्मण का विशेषण "क्षोणीपतेर्लक्ष्मण" लिखा मिला है। अतएव यह छोटा राजा रहा होगा।[५]

वज्रदामा– वज्रदामा लक्ष्मण का पुत्र था। सुहानियां से प्राप्त एक जैनमूर्ति के लेख में इसे महाराजाधिराज वज्रदामा लिखा है। इस लेख की तिथि वि. सं. १०३४ है।[६]

सासवहू के मन्दिर के लेख में इसके द्वारा ग्वालियर दुर्ग को जीतने और गाधिनगर के राजा को हराने का उल्लेख है।[7] यहां गाधिनगर के राजा का तात्पर्य कन्नोज के प्रतिहारों से है।[8] उस समय विजयपाल शासक था।[9] इन अन्तिम प्रतिहार सम्राटों के समय राज्य की शक्ति बहुत कमजोर हो गई थी। वि. सं. १०११ के चन्देल लेख में धंगदेव द्वारा गुर्जर प्रतिहारों को हराकर कालिंजर जीतने का उल्लेख

---

५. आसीद्वीर्य लघुकृतेन्द्र तनयो निः शेप भूमीभृतां।
वन्द्यः कच्छप घात तिलका क्षोणीपतेर्लक्ष्मण;।
यः कोदण्डधरः प्रजाहितकरश्चक्रे स्वचित्तानुगाङ्ग—
मेकः पृथुवत्पृथूनापि दृढाद्भुताद्य पृथ्वीभृतः ॥५॥

[उपरोक्त पृ० ३९९]

६. सम्वतः १०३४ श्रीव दामा महाराजाधिराज वइसाखवदि पाचमि–[उपरोक्त पृ. ३९९ एवं जैन लेख संग्रह भाग २ पृ १९८]

७. तस्माद्वज्र धरोपमः क्षितिवज्रदामाभव दुर्वारोर्जितबाहुदंडविजिते गोपाद्रिदुर्गेयुवा। निर्व्याजम्परिभूय वैरिनगराधीशप्रतापोदयं यद्वीरव्रतसूचकः समनवत् प्रोद्घोषणाडिडिनिः ॥६॥

[उपरोक्त पृ. ३९९]

८. डा. त्रिपाठो—हिस्ट्री आफ कन्नोज पृ १२

९. वहीं पृ. २७६। पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नोर्दर्न इंडिया फ्राम जैनसोर्सेस पृ. ७३। दी एज आफ इम्पिरियल कन्नोज पृ. ३७-३८

मिलता है।[10] इतना होते हुए भी समसामयिक विनायकपाल को सम्राट के रूप में वर्णित[11] किया। इससे प्रकट होता है कि यद्यपि उस समय प्रतिहारो की शक्ति अवश्य कम हो गयी थी फिर भी पराम्परागत मान्यता अवश्य दी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय चन्देल राजपूत शक्ति बढ़ाते जा रहे थे। संभव है कि वज्रदामा ने भी ग्वालियर विजय करने में इनसे सहायता ली होगी। डा० गुलाबराय चौधरी वज्रदामा को चन्देलों का सामन्त राजा मानते हैं किन्तु यह आधारहीन प्रतीत होता है। इसके २ पुत्र सुमित्र और मंगलराज हुए। मंगलराज ग्वालियर का अधिकारी हुआ और सुमित्र को कुछ ख्यातो के अनुसार नरवर का राज्य दिलाया गया। वज्रदामा की मृत्यु आनन्दपाल और मोहम्मद गजनवी के मध्य हुए युद्ध में ३१.१२। १००१ को हुई मानी जाती है।[12]

राजा धंगदेव के खजुरोह के लेख श्लोक २३३ एवं ५० एपिग्राफ़िआ इंडिका भाग १ पृ. १२२ इस लेख में वर्णित विनायकपाल के सम्बन्ध में डा. त्रिपाठी की मान्यता हैं कि यह विनायकपाल है। जिसकी अभिमितिथि ए. डी. ९४२ या ९९९वि० मिली है। इसके पश्चात् महेन्द्रपाल इसका उत्तराधिकारी हो गया था। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि इस शिला लेख का प्रारूप ९४२ ई० के पुर्व हो तैयार कर लिया गया होगा किन्तु उत्कीर्ण इसके बाद ९५४ A.D. या १०११ के आसपास किया गया होगा होगा। [डा. त्रिपाठी हिस्ट्री आफ कन्नोज पृ० १२]। डा० राय के अनुसार यह विनायकपाल II था [इंडियन एंटिक्वेरी, vol LVII page २३२]।

११. राजोरगढ़ से प्राप्त मथनदेव के लेख में "महाराजाधिराजपरमेश्वर" प्रयुक्त हुआ है। मथनदेव समवतः पूर्ण स्वतन्त्र शासक था [दी एज आफ इम्पिरियल कन्नोज पृ० ३८–३९]।

१२. श्री जगदीशसिंह गहिलोत–जयपुर राज्य का इतिहास पृ. ५८

मंगलराज—बयाना के पास "ऊखामंडल" के शिलालेख में मंगलराज का उल्लेख हैं। इसमें उसके वंश वगैरा का उल्लेख नहीं है। किन्तु विद्वान् लोग मानते है कि यह मंगलराज ग्वालियर का कछवाहा राजा ही है। यह शिव का भक्त था। इसके द्वारा कई युद्धों में भाग लेकर शत्रुओं का हराने का भी उल्लेख मिलता है।[13]

महमूद गजनवी ने जब ग्वालियर पर आक्रमण किया था तब मंगलराज या कीर्तिराज शासक रहा होगा।

कीर्तिराज—यह मंगलराज का पुत्र था। इसका मालवे के राजा के साथ युद्ध होना विख्यात है। सास बहू के मन्दिर की प्रशस्ति में केवल मालवे के राजा से युद्ध करना वर्णित है।[14] हाड़ोती में मालवे के परमारों का अधिकार था। शेरगढ़ और झालरापाटन से मालवे के राजा उदयादित्य की प्रशस्तियाँ मिली हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तिराज ने राज्य विस्तार हेतु बयाना से आगे बढ़कर हाड़ोती में अधिकार करना चाहा हो। दूब कुण्ड के कछावा उस समय मालवे के परमारों के सहायक थे। उक्त शाखा के कछावा अभिमन्यु के लिये लिखा मिलता है कि मालवे के राजा भोज ने भी उसकी प्रशंसा की थी। उसके पुत्र के समय का एक शिलालेख भी बयाना से मिला है। अतएव पता चलता है कि भोज ने कीर्तिराज को हराकर उससे बयाना के आसपास का भूभाग छीन लिया और दूबकुण्ड शाखा के कछावों को दे दिया प्रतीत होता है। यह शिव का बड़ा भक्त था। इसके द्वारा कई शिवमन्दिर बनवाये गये थे।[15]

---

१३. ततो रिपुध्वान्तसहस्रधामा नृपोभवन्मंगलराजनामा।
यशेश्वरैकप्रणतिप्रभावान्महेश्वराणाम्प्रणतः सहस्त्रे ॥८॥
[सासबहू मंदिर का लेख]

१४ श्री कीर्तिराजो नृपतिस्ततोभूद्यस्य प्रयाणेषु चमूसमुत्थै.
धूलीवितानैः—………तेन शौर्यांबुधिना यत्ते मालवभूमि-
पस्यसमरेसंख्यामतीतोर्जितः……………………(उपरोक्त)

१५ अद्भुतासिंहपानीय नगरे येन कारितः।
कीर्तिस्तम्भ इवाभाति प्रासादः पार्वतीपतेन ॥ ११ ॥ (उपरोक्त)

इसके बाद मूलदेव, देवपाल और पद्मपाल शासक हुए। मूलदेव बड़ा प्रतापी हुआ। सासबहू मन्दिर की प्रशस्ति में वर्णित है कि इसने कई युद्ध किये थे एवं चक्रवर्ती के राज्यचिन्ह भी धारण किये थे।[16] अतएव पता चलता है कि इसने प्रथम बार स्वतन्त्र शासक के रूप में कार्य किया था। पद्मपाल देवपाल के बाद शासक हुआ। इसने ग्वालियर में पद्मनाथ का मंदिर बनवाना प्रारम्भ किया था किन्तु उसकी अकाल मृत्यु हो गई। इस कारण इसका छोटा भाई महिपाल शासक हुआ। यह वि सं० १०५० में ग्वालियर में शासक था।

वि० सं ११६१ से ग्वालियर का एक और लेख मिला है। इसमें महिपाल[17] और भुवनपाल नामक शासकों का उल्लेख हैं।[18] दोनों ही शिलालेखों के रचयिता एक ही व्यक्ति अर्थात् यशोदेव दिगम्बराचार्य हैं। यद्यपि सं० ११६१ के इस लेख में "कछावा" शब्द अंकित नहीं है। किन्तु यह निश्चित है कि ये राजा कछावा ही थे। सासबहू के मन्दिर के लेख में वर्णित महिपाल के पश्चात् भुवनपाल शासक हुआ था। इसके लिये कई विशेषण प्रयुक्त हुये हैं। इसे गणित आदि कई विषयों का ज्ञाता वर्णित किया गया है। यह संस्कृत का विद्वान् था। इसका विरुद "भुवनैकमल्लः" भी था।

---

१६ तस्मादजायतमहामतिमूलदेवः पृथ्वीपतिर्भुवनपाल इति प्रसिद्धः।
श्रीनंददण्डगदनिन्दितचक्रवर्तिचिन्हैरलंकृततनुर्मनुतुल्यकीर्तिः ॥१२॥
(उपरोक्त)

१७ अधिष्ठाय गोपालिकेराधिपत्ये वभौ भूमिपालो महिपाल देवः।
प्रतिपाखिलक्षत्रियः क्षोददक्षोयेकान्तपत्रां धारित्रीं व्यधत्त।
दिशादन्तिकुंभस्थली शंखभूषां स्वकीर्ति त्रिलोकी तटान्ते न्यधत्ता–
वैवस्वतन्ति करदण्डाश्लिष्टे........................॥ ३ ॥
(शिवमंदिर की प्रशस्ति)

१८ ....भुवनपालनृपद्रविणव्ययागमनियोगनिर्बंधनलेखिनः।
गणिततत्वसमस्तलिपिज्ञाता गुणकृतस्तवेनऽस्य गुरुर्लघुः॥
(उपरोक्त)

इसके बाद वि० सं० १२२१ के एक लेख में विजयपाल, सुरपाल और अनंगपाल नामक राजाओं का उल्लेख है। इस लेख में राजओं के वंश का उल्लेख नहीं है। विद्वान् लोग इन्हें भी कछावा के वंशज मानते हैं किन्तु ये किसी अन्य वंश के भी हो सकते हैं। केवल मात्र नाम के आगे "पाल" शब्दों के साम्य से ऐसी मान्यता विश्वसनीय नहीं हो सकती है। फारसी तवारीखों से पता चलता है कि कुतुबुद्दीन ने जब ग्वालियर पर आक्रमण किया तब वहां सोलंकपाल शासक था। अल्तमश के आक्रमण के समय वहां नेवपाल या मलिकदेव नामक कोई शासक था। इन राजाओं के सम्बन्ध में कोई अन्य विस्तृत एवं विश्वसनीय सामग्री प्राप्त नहीं हुई है।[19] इस शाखा का अन्त मुस्लिम आक्रमणों से हुआ था।

नरवर शाखा

जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कछावा नरवर में दीर्घकाल तक रहे[20] थे। इस शाखा का सबसे उल्लेखनीय शासक ढोला था इसका शासन काल १० वीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। यह नाम इतना प्रचलित है कि आज भी राजस्थान में इसे नायक के रूप में वर्णित किया जाता है। इसके मरवण के साथ विवाह करने की कथा बड़ी प्रचलित है। इस सम्बन्ध में राजस्थानी गीतों में ही नहीं साहित्य में भी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

ढोला के बाद की वंशावली में बड़ा मतभेद है। सुमित्र के वंशजों के पास नरवर का राज्य रहना कई ख्यातों में माना गया है। वि० सं० ११७७ कातिक वदि अमावास्या के एक दानपत्र की प्रतिलिपि देखने को मिली है जिसमें शरदसिंह के पुत्र वीरसिंह का उल्लेख है। इसमें शरदसिंह के कई विशेषण लगे हैं जो कादम्बरी में प्रयुक्त राजा

---

१९ इलियटचहिस्ट्री आफ इन्डिया Vol 2 पृष्ट २२७-२२८ एव ३२७

२० पूंगलि गिलगऊ नए राजा नरवर नयरे।
आदिठा दूरिठ्ठाये सगाई दईप संजोगे॥ १॥
[ढोलामारु रा दूहा]

शुद्रक के विशेषणों की याद दिलाते हैं। इसकी तुलना पांचों पांड़वों दुर्योधन आदि से की गई है।[21] इसकी रानी का नाम लखमा देवी था। इससे वीरसिंह उत्पन्न हुआ। इस दानपत्र में स्पष्टरूप से कच्छपवंशी शब्द अंकित है।

आम्वेर के कछावा राजा भी इसी शाखा से सम्वन्धित हैं। सं० ११७७ के बाद इस शाखा का इतिहास अभी उपलब्ध नहीं हुआ है।

दूबकुण्ड के कछावा

इस शाखा का एक विस्तृत शिलालेख वि.सं. ११४५ का मिला है। इसमें ५ राजाओं का वर्णन है—(१) युवराजदेव (२) अर्जुनदेव (३) अभिमन्यु (४) विजयपाल और (५) विक्रमसिंह। इस लेख में यह वर्णित नहीं है कि इस शाखा के राजा, दूबकुण्ड के आने से पूर्व कहां थे?

युवराज देव के लिये कोइ सामग्री इस लेख में नहीं दी गई है। इसका पुत्र अर्जुन था। उक्त लेख में इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। इसे भूपति विरुद ही दिया गया है। यह विद्याधर चन्देल का सामन्त था। इस लेख में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया है कि इसने विद्याधर चन्देल के लिए राजपाल को माराथा। यह राजपाल प्रतिहार

---

२१ "........संवत ११७७ कार्तिक वदि अमावस्यायां रविदिनेऽद्येह श्रीमन्नवलपुरमहादुर्गे परमवैष्णवपरमब्राह्मण्योदीनानाथः कृपणजनवत्सलोऽनेकगुरुगुणालङ्कृतशरीरः पितृमातृपदाम्बुजसुग्रहणपरो युधिष्ठिरवत् सत्यवादी भीमसेनइवात्यद्भुतवीर्योऽर्जुन इवधनुर्धराग्रेसरः कर्ण इव त्यागार्जितकीर्तिः दुर्योधन इव महामानी मृगन्द्र इवाऽप्रतिमपराक्रमः समरवसुधावतीर्ण दुर्वारवैरिघटावारणसंघट्टविघटनोपार्जितयशः सुधाधवलिताखिलमहीमंडलः श्रीमत्कच्छपघातान्वयसरः कमलमार्तण्डो महाराजाधिराजपरमेश्वरशरदसिंहदेवपादानुध्यानपरः परमराज्ञी श्रीलषमादेवीगर्भरत्न करोत्पन्नमाणिक्यमूर्तिः—परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवीरसिंहदेवी विजयी"..........

वंशी सम्राट[२२] था। राज्यपाल के उत्तराधिकारी त्रिलोचनपाल के समय ही सुल्तान मोहम्मद ने १०२७ ई० में इस पर आक्रमण किया था।

इसका पुत्र अभिमन्यु हुआ। यह परमार राजा भोज का सामन्त था और इसके अधीन रहकर लड़ा भी था। उक्त लेख में 'यस्माद्भुतवाह-वाहनमहाशस्त्रप्रयोगादिषु प्राविण्य प्रविकत्थितं प्रथुमति भोजपृथ्वीभुजा' उल्लेखित है। जैसाकि ऊपर कहा गया है कि भोज ने इसे वयाना के आसपास का इलाका दे दिया था।

अभिमन्यु के वाद विजयपाल शासक हुआ। इसके समय का सं० ११०० का एक लेख वयाना की मस्जिद पर लगा हुआ है। इस लेख में १८ पंक्तियां हैं। इसकी पांचवी पंक्ति में 'अधिराजविजय' नामक राजा का उल्लेख है। इसके राज्य में श्रीपथ नगर के जैनाचार्य महेश्वर-सूरि जो कम्पक गच्छ के आचार्य थे की मृत्यु होने पर 'निषेधिका' बनाने का उल्लेख मिलता है। इसके पश्चात् विक्रमसिंह राजा[२३] हुआ। इसके समय का ही दूबकुण्ड का शिलालेख है। इस लेख में कुल ६१ पंक्तियां हैं। इसमें चन्दोभा नगर का वर्णन है जो वर्तमान दूबकुण्ड ही रहा प्रतीत होता है। इसमें ऋषि और दाहड़ नामक २ श्रेष्ठियों द्वारा जैन मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। इस

---

२२. आसीत्कच्छपघातवंशतिलकस्त्रैलोक्यनिर्यद्यशः पांडूयुवराजसूनुरनग यद्भीमसेनानुगः। श्रीमानर्जुनभूपतिः पतिरपामप्याप यस्तुल्यतां नो गांभीर्यगुणेन निर्जितजग-(द्व) न्वो धनुर्विद्यया। श्रीविद्याधरदेवका-र्यनिरतः श्रीराज्यपालं हठात्कंठास्थिच्छिदनेकवाणनिवहैर्हत्वा मह-त्याहवे। (दूवकुण्ड का लेख, पंक्ति १०—१२)

२३. 'अथैतस्य जिनेश्वरमंदिरस्य निष्पादनपूजनसंस्कराय कालान्तर-स्फुटितप्रतीकारार्थं च महाराजाधिराजश्रीविक्रमसिंहः स्वपुण्य-राशेरप्रतिहतप्रसरं परमोपचयं चेतसि [नि] धाय गोणी प्रतिवि-शोपक गोधूमगोणीचतुष्टयवापयोग्यं क्षेत्रं। [उपरोक्त पं० ५४ से ५६]

मंदिर के लिये विक्रमसिंह ने प्रत्येक गोणी अनाज पर विशोपक($\frac{1}{20}$) कर लगाया।

इसके पश्चात् इस शाखा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

आम्बेर के कछावा

आम्बेर के कछावों का प्रारम्भिक प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं हैं जो कुछ सामग्री उपलब्ध है वह पश्चात् कालीन लेखकों द्वारा लिखी गई है।

सोढ़ाः—नरवर के शासक सुमित्र के वंशजों से ही आम्बेर के कछावों की उत्पति मानी गई है। ख्यातों में सुमित्र के बाद मधुब्रह्म, कहान, वैवानिक, ईशासिह सोढ़देव आदि नाम मिलते हैं। ऐसी भी मान्यता है कि ईशासिंह को करोली के आस पास जागीर मिली हुई थी। सबसे पहले सोढा ने दौसा का भाग छीन कर एक छोटा सा राज्य स्थापित किया। कुछ ख्यातों में सोढ़ा के स्थान पर उसके पुत्र दुल्हराय द्वारा राज्य स्थापित करना भी मिलता है। टॉड ने भी ऐसा ही माना हैं। यह लिखता है कि दुल्हराय को उसकी माता ने बाल्यावस्था में लाकर खोह गग में शरण दी थी।[25] कुछ ख्यातों में ऐसा भी मिलता है कि वह कुछ समय के लिये अपने पैतृक राज्य अपने भानजे को देकर दौसा विवाह करने के लिये आया था। यहां काफी समय तक रहा था। जब उसे मालुम हुआ कि उसके भानजे ने अपने राज्य पर अधिकार कर लिया है तो वह लम्बे झगड़े से बचने के लिये दौसा को अपने अधिकार में कर लिया। रावल नरेन्द्रसिंह ने दुलहराय का विवाह मौरां के चौहान राजा सालार सिंह जिसे राल्हणसी भी कहते हैं की पुत्री कुमकुमदे के साथ होना वर्णित किया है।[26] उसे राल्हणसी ने यहीं ढूंढ़ाड़ प्रदेश में रहने को कहा और दौसा के आसपास का भू भाग उसे जीत कर देदिया। दौसा में उस समय बड़गूजर शासक

---

२४. श्री गेहलोत, जयपुर राज्य का इतिहास (१९६६) पं० ५८।

२५ एनल्स एण्ड ऐंटीक्वीटिज भाग २ पृ. २८०

२६ ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर पृ. १९-२०/मीणा इतिहास-पृ.१२३

थे। नैणसी ने सोढदेव द्वारा दौसा में राज्य स्थापित करना लिखा है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

दुलभराय

पृथ्वीराज विजय और कच्छप वंश महाकाव्य के अनुसार दुर्लभराय को कुलदेवी की प्रेरणा मिली और राज्य विस्तार की उसें प्रबल कामना हुई।[२७] इस सम्बन्ध में ख्यातों में लिखा मिलता है कि मांची के सीहरावंशी मेदा मीणा के साथ संघर्ष करते हुये एक बार दुल्हराय की हार हो गई अतएव वह बहुत ही हतोत्साहित हो गया। इस पर उसने देवी की आराधना की और देवी से प्रेरणा लेकर उसने मांची पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया।[२८] गेटोर घाटी और झोटवाड़ा के मीणाओं के राज्य भी संभवतः इसी ने समाप्त किये थे। कर्नल टॉड की मान्यता है कि इसकी मृत्यु मांच के मीणाओं के साथ हुए संघर्ष में हुई थी। मीणाओं का सर्वप्रथम इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाले विद्वान् लेखक श्री रावत सारस्वत की इस सम्बन्ध में मान्यता है कि दुलहराय ने सबसे पहले खोह का राज्य लिया था।[२९] खोह का राज्य मिल जाने पर अपने सुसुर मोरां के चोहान शासक की सहायता से दौसा के बड़गूजरों को हराकर उस पर दुलहराय का अधिकार कर लेना ठीक लगता है। दौसा के बाद मांची के मीणों से लड़कर उनसे मांची लेना और उनसे लडते हुये ही काम आना—दुलहराय के जीवन का प्रधान इतिवृत है। दुलहराय ने ढूंढाड़ में वि. सं. ११२५ के आसपास राज्य स्थापित किया था। जयपुर राज्य के अन्य विवरणों में यह तिथि भिन्न २ प्रकार से लिखी मिलती है। भू. पू जयपुर राज्य की १९४१ की रिपोर्ट (एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट) में दुलहराय की मृत्यु वि. सं. १०९३ में होना वर्णित किया है। इसमें दुलहराय के पिता सौढ़ देव की तिथि वि. सं. १०२३ से १०९३ तक दी हुई है। श्री

२७ शोध पत्रिका वर्ष १८ अंक ३ पृ०

२८ रावत सारस्वत—मीणा इतिहास पृ. १३१

२९ उपरोक्त पृ. १३३

जगदीश सिंह गेहलोत ने यह तिथि विसं ११६४ दी है। [30] इनकी मान्यता का आधार यह है कि वज्रदामा के वि सं० १०३४ के लेख के बाद ६ पीढ़ि और हुई थी। अतएव २५ वर्ष प्रत्येक पीढ़ि पर लेते हूये ११६८ ही मानी गई है। अगर प्रारम्भिक वंशावली में वर्णित ६ राजाओं के नाम सही हैं तो यह तिथि ठीक हो सकती है। खातों में यह वर्णित किया मिलता है कि दुर्लभराय अन्तिम दिनों में दक्षिण की ओर यात्रा के लिये भी गया था। [31] इसकी मृत्यु कहाँ हुई थी यह संदेहास्पद है। ग्वालियर में उस समय कछावों की दूसरी शाखा का अधिकार था। अतएव इसका वापिस जाना आदि बातें मन गडन्त प्रतीत होती हैं।

कांकिल

कर्नल टॉड इसका जन्म अपने पिता की मृत्यु के वाद मानते है जो ठीक प्रतीत नहीं होता है। पृथ्वीराज विजय काव्य के अनुसार काकिल का जन्म अपने पिता की मृत्यु के पूर्व निश्चित रूप से हो चुका था और धर्म शास्त्रानुसार वह अपने पिता की उत्तर क्रिया करने के उत्तराधिकारी भी हो चुका था। [32] मीणाओं के साथ इसका वड़ा संघर्ष हुआ। आमेर में सूसावत मीणाओं का राज्य था। उस समय वहां "भत्तो" शासक था। कांकिल ने उस पर आक्रमण किया और आमेर जीत लिया और अपनी राजधानी वहां [33] स्थिर की। जयपुर राज्य की ख्यात के अनुसार मीणों ने काँकिल के राज्यगद्दी पर वैठते ही उसके राज्य की जमीन दबाली तथा जब बहुत ही अधिक दबाव पड़ने लगा तो उसने भी मीणों पर चढाई की और संघर्ष में वह घायल हो गया। इस पर कछावों की इष्ट देवी जमवाय माता ने धेनु का रूप धारण कर अमृत रूपी दूध की वर्षा की जिससे कांकिल की मूर्च्छा हटी और माता ने बरदान दिया जिससे वह आमेंर जीतने में सफल हो गया। उसने मीणाओं से संधि करके १२ गांव आमेर के आसपास

---

३० जयपुर राज्य का इतिहास पृ. ५

३१ शोध पत्रिका वर्ष १८ अंक ३ पृ०

३२ उपरोक्त

३३ रावत सारस्वत–मीणा इतिहास पृ. १४१

उनके अधिकार में रहने दिया और वहां का कर (टैक्स) आदि वसूल करने का अधिकार भी दे दिया। जयपुर राज्य की वंशावलियों में कांकिल का शासन काल बहुत ही अल्पकालीन वर्णित है अर्थात् उसने २ वर्ष और ३ महिने ही राज्य किया था अतएव वह इतनी बड़ी विजय कर सका होगा अथवा नहीं इस सम्बन्ध में कुछ विद्वान् संदेह भी करते हैं।

बुद्धिविलास की वंशावली और टॉड द्वारा दी गई वंशावली में भी अन्तर है। टॉड ने ढोला के खोह गांव पर अधिकार करने और माची के शेरा मीणा राव नाटू को मारने का उल्लेख किया है। इसके बाद काकिल को दोनों ने ही शासक माना है। हूणदेव और काकिल के बीच मेहल नामक राजा को टाड ने आर माना है। इसी प्रकार हूणदेव के बाद भी वे कुन्तल नामक एक राजा को और मानते हैं। बुद्धिविलास में जानडदे और सुजान नामक राजाओं का उल्लेख है। इसमें कुन्तल को बाद में माना है।

कांकिल के उत्तराधिकारियों में हणूदेव, जानड़दे, सुजान और पजनदेव गद्दी[34] पर बैठे ख्यातो में पजनदेव को पृथ्वीराज चौहान का समकालीन वर्णित किया है।[35] यह पृथ्वीराज का सामन्त प्रतीत होता है। कहा जाता है कि उसने तराइन के युद्ध में भी भाग लिया था। इसके बाद क्रमशः मालसी, विजलदेव, रामदेव,

---

३४ प्रथन राज काकिल कियौ मंत्रि मवासे तोडि।
बचे भोमिया ते सवै मिले आप कर जोड़ि ।। ५८ ।।
तिनके पाट हणु नृपति भयो मानौ हनुमान।
बबुरयौं जानडदे भए तिनके पाटि सुजान ।। ५९ ।।
पुनि पज्जवण भए नृपति महाबली सामंत।
तिनको बल जस प्राकरम बहु कविजन बरनंत ।। ६० ।।
[बुद्धिविलास]

३५ एनाल्स एड एंटीक्वेटीज आफ राजस्थान भाग २ २८२। इस ग्रंथ में पजनदेव की बड़ी प्रशंसा की है। यह वर्णन पृथ्वीराज रासो एवं भाटों की ख्यातों पर आधारित है। इसमें सच्चाई कहां तक है यह कहना कठिन है।

बिल्हण, कुंतल, जुणसी, उदयकरण, नरसिंह, बणवीर, उद्धरण एवं चन्द्रसेन नामक राजाओं ने राज्य किया था। इस राजाओं के विषय में कोई विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता हैं। उदय करणके वंशज बालोजी के पुत्र मोकल हुये। जिसके शेखा जी हुये। शेखावत राजपूत इसके वंशज हैं। उद्धरण महाराणा कुम्भा का समकालिक राजा था और उसका सामन्त भी था। कछावों की ख्यातों में उसका विवाह महाराणा कुम्भा की एक पुत्री इन्द्रादे से होना वर्णित है।[36] किन्तु मेवाड़ में अबतक यही मान्यता है कि कुम्भा के एक ही पुत्री थी जिसका विवाह गिरनार के राजा मंडलिक के साथ हुआ। संगीतराज में राजा के परिवार का जहां वर्णन आता है वहां एक ही पुत्री का उल्लेख हैं। उस समय तक आम्बेर का राज्य अत्यन्त सीमित ही था। रणथंभोर, बयाना, लालसोट, चाटसू आदि का भूभाग कभी मुसलमानों की जागीर में था तो कभी मेवाड़ वालों के राज्य में। ग्वालियर का राजा डूंगरसिंह तोमर भी अत्यन्त बलशाली था। टोंक के आसपास तक एक बार इसने आक्रमण कर वि० सं० १५१० के लगभग जीत लिया था, किन्तु कुम्भा ने इसे वापस हटा दिया। मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी ने भी कई बार ढूंढाड और रणथंभोर पर आक्रमण किया था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के अनुसार महाराणा कुंभा ने भी आम्बेर जीता था।[37] कुंभा के इस विजय का उद्देश्य राज्य विस्तार करना ही रहा प्रतीत होता। क्यामखांरासो से यह भी पता चलता है कि कायमखानियों ने आम्बेर जीत कर वहां के भोमियों को भगा दिया था।[38] संभवतः महाराणा कुंभा ने कायमखानियों से आम्बेर लेकर वापस उद्धरण को दिलाया हो। टोड़ा में भी उसने ऐसा ही किया था। वहां के शासक सोढवदेव को मुसलमानों ने हटा दिया था जिसे कुंभा ने वापस प्रतिष्ठापित किया था।

---

३६ हनुमान शर्मा—नाथावतों का इतिहास, पृ० ३२।

३७ महाराणाकुंभा पृ. ९९

३८ उपरोक्त पृ. १००

आम्बेर के १५ वीं और १६ वीं शताब्दी के शासकों के सबसे प्रबल प्रतिद्वंदी टोड़ा के सोलंकी रहे प्रतीत होते हैं। चाटसू तक इनके राज्य का भूभाग रहा था। उस समय पूर्वी राजस्थान की स्थिति बड़ी विषम थी। सारा ढूंढाड़ प्रदेश मुसलमानों के निरन्तर आक्रमणों से परेशान था। कुंभा भी इस क्षेत्र को मुसलमानों से पूर्ण मुक्ति नहीं दिला सका। टोंक, नरेना, नैंनवां, बयाना आदि से कुंभा के शासन-काल के अन्तिम दिनों की कई प्रशस्तियां मिली हैं जिनमें वहां के शासकों के नाम कुंभा के स्थान पर मुसलमानों के अंकित हैं।

महाराणा सांगा के समय आम्बेर में पृथ्वीराज कछावा का उल्लेख मिलता है।[३९] पृथ्वीराज ने कछावों की १२ कोटरियें स्थापित की थी। इनके दो पुत्र पूर्णमल और भीमदेव में गृहयुद्ध हुआ। भीमदेव के बाद उसका लड़का रत्नसिंह कुछ समय पश्चात् शेरशाह के पास चला गया और इसकी सहायता से उसने वापस राज्य हस्तगत कर लिया। इसे भी उसके छोटे भाई आसकरण ने हटा दिया। जिसने केवल १५ दिन ही राज्य किया था। आसकरण को भारमल ने हटा दिया एवं वि० सं० १६०३—४ में वह स्वयं शासक बन गया।

इस प्रकार महाराणा सांगा के शासन काल से ही आम्बेर के इतिहास में बड़ी उथल-पुथल आई प्रतीत होती है। सोलंकियों की एक शाखा के 'रामचन्द्र' के आधीन चाटसू और इसका भूभाग रहा था।

---

३९. पृथ्वीराज कछावा की एक ही प्रशस्ति अब तक मिली है जो इस प्रकार है। यह यशोनन्दजी के दिगम्बर जैन मंदिर जयपुर में संग्रहित ज्ञानार्णव नामक ग्रंथ की है। इसकी वे० सं० २५ है:—

संवत् १५८१ वर्षे फाल्गुन सुदि १ बुधवारदिने अथ श्री मूलसंघे बलात्करगणे सरस्वती गच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री-श्री शुभचन्द्रदेवास्तत् पट्टे जिते-न्द्रिय भट्टारक श्री जिनचंद्रदेवस्तत्पट्टे सकल विद्यानिधान य-मस्वाध्याय ध्यान तत्पर सकल मुनिजनमध्य लब्धप्रतिष्ठ भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवः। आंवेरगणस्थानात्। कूरमवंशे महाराधिराज पृथ्वीराज राज्ये....'' (आमेर शास्त्र भण्डार के सौजन्य से प्राप्त)

यह महाराणा सांगा का सामन्त था। इसने अपनी प्रशस्तियों में सांगा का नाम बड़े गौरव से लिखाया है। पृथ्वीराज कछावा के साथ भी सांगा के बड़ अच्छे सम्बन्ध रहे प्रतीत होते हैं। यह सांगा का दामाद था। इसने ही सांगा को खानवा के युद्ध से घायल स्थिति में उठाने में सहायता की थी।

भारमल

इस शाखा का सबसे पहला उल्लेखनीय शासक भारमल था इसके शासन काल की लिखित कई ग्रंथ प्रशस्तियाँ मिली है।[40] इसने ६ फरवरी सन् १५६२ ई० (सं. १६१६) में अपनी पुत्री जोधाबाई का विवाह अकबर के साथ करके कछावा इतिहास में एक

---

४०. राजा भारमल के समय की कई प्रशस्तियां मिली हैं। उदाहरणार्थ पाटोदी जैन मंदिर के ग्रंथ स० २३६ की पुराणसार की वि०सं० १६०६ आषाढसुदि १३, की छोटे दीवानजी जयपुर के मदिर के ग्रंथ यशोधरचरित की प्रशस्ति (वे० सं० २८८) वि. सं. १६३० भादवा सुदी की एवं आमेर शास्त्र भण्डार की नीचे लिखी कुछ प्रशस्तियां उल्लेखनीय हैं:--

(१) जिनदत्त चरितग्रंथ की वि.सं. १६११ चैत्र वुदि ११ की प्रशस्ति (प्रतिलिपि स.) "संवत् १६११ चैत्रवुदि ११ सोमवासरे श्रवणनक्षत्रे सिद्धिनामायोगे आम्रगढमहादुर्ग श्री नेमीश्वरचैत्यालये राज श्री भारमल राज्य प्रवर्तमाने............"

(२) पांडवपुराण ग्रंथ की प्रशस्ति प्रतिलिपि संवत् १६१६ "सवत् १६१६ वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे चतुर्दशेतिथौ वुद्धवासरे धनिष्टानक्षत्रे आमेरमहादुर्गे श्री नेमीनाथजिन चैत्यालये राजाधिराज भारमल राज्य प्रवर्तमाने श्री मूलसंघे........"

(३) हरिवंशपुराण की प्रशस्ति वि० सं० १६१६ (प्रतिलिपि संवत्) "संवत् १६१६ वर्षे आश्विनमासे प्रतिपत्तिथौ शुक्रवासरे शतभिखानक्षत्रे वृतिनामयोगे आंबेरिमहादुर्गे श्री राजाधिराज भारमल राज्य प्रवर्तमाने........"

[प्रशस्ति संग्रह के पृ० १०४, १२६ एवं ७७ क्रमशः द्रष्टव्य हैं।]

नये युग का सूत्रपात किया। यह बहुत दूरदर्शी था। मेवाड़ की, बहादुर-शाह के साथ निरन्तर लड़ते रहने से, शक्ति कमजोर होते देखकर उससे सहायता की अधिक आशा उसे नहीं रही थी। टॉड के अनुसार भारमल को मीणों का भय बहुत अधिक था। किन्तु स्थिति इससे भिन्न थी। वि० सं० १६१५ में भारमल के बड़े भाई पूर्णमल का पुत्र सूजा मेवात के सरदार मिर्जा सर्फुद्दीन की सहायता से आम्बेर पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगा। उसने वि० सं० १६१८ में आमेर पर अधिकार भी कुछ समय के लिए कर लिया। भारमल वहां से भाग खड़ा हुआ। सर्फुद्दीन से मुक्ति पाने के लिये उसने अकबर के साथ संधि की थी।

भारमल की मीणाओं के साथ कई लड़ाइयां हुई थी। उसने नहाण के मीणाराज्य को नष्ट किया था जो संभवतः इस समय एक उल्लेख-नीय राज्य रहा होगा।

इस प्रकार सोढ़ा या दुर्लभराय से लेकर भारमल तक के राजाओं को मीणों से बराबर थोड़ा बहुत संघर्ष करना पड़ा और धीरे-धीरे उन्होंने यहां के स्थानीय मीणा शासकों को हरा कर उनके राज्य पर कब्जा कर लिया।

....

प्राचीन राजस्थान में पंचकुलों की व्यवस्था | १०

प्राचीन भारत में राजाओं को शासनयंत्र सुचारु रूप से चलाने के लिये कई सस्थायें विद्यमान थीं। इनम पंचकुल सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसके सम्बन्ध में शिलालेखों और प्राचीन साहित्य में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

ग्राम और महाजन सभा

प्राय: सब ही मुख्य-मुख्य नगरों में एक महाजन सभा[1] होती थी। ७वीं शताब्दी से राजस्थान में इसकी शक्ति बढ़ती गई। इसे कहीं–कहीं तो कर लगाने का अधिकार प्राप्त था और कहीं राजा की स्वीकृत लेकर यह कर लगाती थी। वि० सं० ७०३ के मेवाड़ के शीलादित्य के लेख से प्रकट होता है कि श्रेष्ठि जेंतक ने देवी का मंदिर बनाने के पूर्व इस सभा से स्वीकृति प्राप्त[2] की थी। वि० सं० १२०० के रायपाल[3] और १३५२ के[4] जूना के लेख में वर्णित किया गया है कि

---

१ अली चौहान डाइनेस्टीज़. पृ० १०३।

२ "एभिर्गुणैर्यत तत्र तत्र [जें] तकमहत्तर: श्री अरण्यवासिन्या-देवकुलं चक्रे महाजनादिष्ट:............" नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, अंक ३, पृ० ३११–३१४, पंक्ति ८–९।

अन्वेषण वर्ष १ भाग २।

३ मूल शिलालेख का कुछ अंश इस प्रकार है:—

(१) ६०। संवत् १२०० कातिक वदि ७ रवौ महाराजाधिराज श्री रायपालदेव राज्ये श्री न—

(२) डूलडागीकायां रा० राजदेव ठकुरायां श्री नडूला (त्र) य महाजने (नैः) सर्वेमिलित्वा श्री

(५) .... एततु महाजनेन वेतरेण धर्माय प्रदत्त ॥

इसी के एक अन्य लेख में "महाजन ग्रामीण। जनपदसमक्षाय धर्माय निमित्त विंशोपकोपालिकद्वयं दत्त" [रायपाल का लेख, वि. सं. १२००]

४ "असौ लागा महाजनेन मानिता" [वि० सं० १३५२ के बाडमेर (जूना) के सामंतसिह के लेख की अंतिम पंक्ति]।

राजा कर लगाने के पूर्व इस संस्था की स्वीकृति लेता था। वि० सं० ११७२ के सेवाड़ी (गोड़वाड़) के लेख से प्रतीत होता है कि सेनाधिकारी भी महाजन सभा का सम्मान करता[5] था। इस लेख में यशोदेव के लिये यह बात बहुत ही गौरव के साथ लिखी गई है कि वह राजा और महाजनसभा द्वारा सम्मानित था।

ग्रामों की सभा को ग्राम सभा कहते थे।[6] इसको भी कई प्रकार के अधिकार प्राप्त थे।

पंचकुलों का गठन

ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त संस्थायें ग्राम की सार्वजनिक संस्थाओं की तरह थी, जिनमें सब ही लोग भाग ले सकते थे। इसका सीमित रूप पंचकुल[7] था। इसमें गांव के सब नागरिक सदस्य नहीं हो सकते थे। सोमदेव कृत नीतिवाक्यामृत की टीका में 'करण' शब्द को पंचकुल का परिचायक बतलाकर इसमें ५ सदस्य माने हैं-(१) आदायक (२) निबंधक, (३) प्रतिबंधक, (४) विनिग्राहक और (५) राजाध्यक्ष।[8]

मध्यकालीन शिलालेखों में राजाओं के मुख्यामात्यों[9] के साथ "पंचकुल प्रतिपत्तौ" लिखा मिलता है जिसका अर्थ कुछ विद्वान ऐसा लेते हैं कि जिन पंचकुलों में राज्य का मुख्यामात्य सदस्य होता था वे केन्द्रीय सरकार के अधिकार में थे और जिनमें वह सदस्य नहीं होता

---

५ इतश्चासीत् विशुद्धात्मा यशोदेवबलाधिपः।
राज्ञां महाजनस्यापिं सभायामग्रणी स्थितः। ७॥ [वि. स ११७२ का सेवाड़ी का लेख]।

६ अर्ली चोहान डाइनेस्टीज, पृ. २०३। लेखपद्धति, पृ. १६।

७ वही, पृ. २०४।

८ पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नादर्न इंडिया फ्रोम जैन सोर्सेज पृ. ३६२। मेरी पुस्तक-महाराणा कुंभा, पृ० १७६।

९ "संवत् १३१० वर्षे मार्गपूर्णिमायामद्येह महाराजधिराज श्री विश्वलदेव कल्याण विजयराज्ये। तत्पादपद्मोपजीविनि महामात्य श्री नागड़ प्रभृति पञ्चकुलेन प्रतिपत्तौ........" (हितोपदेश नामक ग्रन्थ (जैसलमेर भण्डार में संगृहीत) की प्रशस्ति)।

था वे साधारण[10] थे। मध्यकालीन शिलालेखों के अध्ययन से पता चलता है कि यह बात निश्चित रूप से सही नहीं थी। वि० सं० १३३५ और १३४५ के दो लेख हठूंडी (गोड़वाड़) के प्राप्त हुये हैं। दोनों में पंचकुलों[11] का उल्लेख है। एक में तो मुख्यामात्य का उल्लेख है और दूसरे में नहीं। अतएव प्रतीत होता है कि उक्त सिद्धान्त गलत है। केवल उक्त पांच सदस्यों में राज्याध्यक्ष या राजा द्वारा मनोनीत व्यक्ति भी सदस्य होता था। अतएव मुख्यामात्य श्री करणाधिकारी और साथ ही साथ पंचकुलों का भी सदस्य था। यह आवश्यक नहीं था कि वह इनकी बैठकों में भाग ले। महापंचकुलिक संभवतः अध्यक्ष होता था।

इन पंचकुलों पर राजा का आंशिक या पूर्ण अधिकार होता था। भीनमाल के वि० सं० १३०६ और १३३६ के लेखों से विदित होता है कि राजा ही इनके सदस्यों की नियुक्ति करता था। समराइच्चकहा में चंदन सार्थवाह के घर चोरी हो जाने के प्रसंग में राजा द्वारा ही पंचकुल की नियुक्ति का उल्लेख है। इसी प्रकार मोहपराजय नाटक में कुमारपाल द्वारा पंचकुल के नियुक्त करने का उल्लेख है।[12]

---

१० चालुक्याज आफ गुरात पृ. २३६–२३८।

११ वि. सं. १३३५ के हठूंडी के लेख में:—
"संवत १३३५ वर्षे श्राम्वण वदि १ सोमेऽद्येह समीपाट्टी। मण्डपिकायां मां पाटहड़भांवां (?) पवरा महं सजन उ० महं धीणा उधरणसिह उ० ब० देवसिंह प्रभति पंचकुलेन" वर्णित है। इसमें ५ सदस्यों के नाम ही विर्णित हैं। इसके विपरीत वि० स० १३४५ के माताजी के मंदिर (हठूंडी) के लेख में इस प्रकार वर्णन है:–
"संवट् १३४५ वर्षे प्रथम भादवा वदि ९ शुक्रदिने अद्येह श्री नड्डूल मण्डले महराजकुल श्री सम्पंतसिह देव राज्ये तन्नियुक्त श्री श्रीकरणे श्री ललनादि पंचकुल प्रभृति भूमि अक्षराणि पञ्चा ...." आदि वर्णित है। इसमें मुख्य मन्त्री के साथ पंचकुल शब्द उल्लेखित है।

१२ मोहपराजय तीसरा, पृ० ५७। इनमें "देव! नियुक्त पञ्चकुल येन तत् समक्षं गृहनियोगिनः कुबेरस्वामी सर्वस्व उपनयति" वर्णित है। यह कुमारपाल के समक्ष आकर एक वणिक कहता है।

पंचकुलों की कार्य प्रणाली

समराइच्च कहा, जो ८ वीं शताब्दी की रचना है, इस पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। इसके चौथे भव में कथा दी हुई है। जब राजा चण्डसेन के सर्वसार खजाने में चोरी हो गई तो बड़ी तलाश की जाने लगी, किन्तु कोई सुराख नहीं मिला ' तब नवागन्तुकों की भी तलाशी ली जाने लगी। एक वार कुछ लोगों को माल सहित पकड़ लिया गया तो उन्हें पंचकुल के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। तब इसके सदस्यों ने कई प्रश्न किये, जो उल्लेखनीय हैं :—

"नीया पंचउल समीयं, पुच्छिया पंचउलि एहि–
"कओ तुब्भे त्ति !
तेहि भणियं "सावत्थी ओ"
करणि ऐहि भणियं "कहि गम्मिसह त्रि ?"
तेहि भणियं "सुसम्मनयरं"
करणि एहि भणियं "कि निमित्त' त्ति ?"
तेहि भणियं "नरवइ समाए साओ एयं सत्थवाहपुत्त' गेण्हिउ' त्ति?"
करणि एहि भणियं "तुम्हाणं किञ्चिदविण जायं ?"
तेहि भणियं "अत्थि"
करणि एहि भणियं "किं तयं त्ति ?,'
तेहि भणियं "इमस्स सत्थवाहपुत्तस्स नरवइ विइण्ण रायालंकरणयं त्ति"

अर्थात पचकुल के पास ले जाते ही सदस्यों ने पूछा कि तुम लोग कहां से आये हो : तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग श्रावस्ती से आये है। "कहां जाओगे ?" उन्होंने पूछा। उत्तर दिया कि सुशर्मनगर को जायेंगे। "वहां क्या काम है ?" सदस्यों ने प्रश्न किया। उत्तर दिया कि वहां राजा की आज्ञानुसार इस सार्थवाह के पुत्र को ले जाना है। "तुम्हारे पास कुछ धन है ?" इस पर उत्तर दिया गया कि हां है। आदि-आदि

चंदन सार्थवाह के घर पर चोरी हो जाने का प्रसंग भी उल्लेखनीय है। इस में डूंडी पिटवाकर सब को सूचना दिलाई गई। इस के पश्चात् पंचकुल को राजा ने नियुक्त किया। इसमें नगर के प्रधान सदस्य थे

(पहाए नयरजणाहि द्विया कारणिय)। इन्होंने आधुनिक पुलिस की तरह पूरी जांच की और चोरी गये सामान की सूची से सामान मिलाया और कई प्रश्न किये। कुछ अंश इस प्रकार हैं:-

"पुच्छिओ य तेहिं अहं। सत्त्ववाहपुत्त, न ते किंचि केणइ एवं जाइयं रित्थं संववहारवड़ियाए उवणीयं ति। तओ मए असंजाय संकेण भणियं। "नहि नहि" त्ति। तेहिं भणियं। न तए कुप्पियव्वं: राय सासणमिणं, जं ते गेहमवलोइयव्वं ति। मए भणियं। न एत्थ अवसरो कोवस्स, पया परिरक्खण निमित्तं समारम्भो देवस्स। तओ पविट्ठा मे गेहं सह नयर वुड्ढे हि रायपुरिसा। अवलोइयं च तेहिं नाणापयारं दविणजायं दिठ्ठं च पयत्तट्ठावियं चन्दणनामङ्कियं हिरण्णवासणं नीणियं वाहिं दसियं चन्दण भण्डारियस्स। अवलोइऊण सदुक्खामिव भणियं च तेण। अणुहरइ ताव एयं। न उण निस्संसयं वियाणामि त्ति। कारणिहि भणिय वाएहि अवहरियनिवेणापत्तगं (अपहृतः निवेदनापत्रकं) किं तत्थ इमं ईइसं अभिलिहियं न व त्ति। वाइयं पत्तगं दिट्ठमभिलिहियं। सज्झसी भूया नायरकारणिया भणियं च तेहिं। सत्थवाह पुत्त, कुओ तुह इमं-चिन्तिऊण भणिय मए "नियगंचेव एयं" ति। तेहि भणियं "कहं चंदण नामङ्कियं।" मए भणिय "न याणामो कहिं च वासण परावत्तो भविस्सइ"। तेहि भणियं "किं संखियं किं वा हिरण्णजायमेत्थं ति" आदि-आदि। (दूसरा भव—समराइच्चकहा)

सपादलक्ष क राजा द्वारा गुजरात पर आक्रमण करने पर मूलराज ने पंचकुल को बुला कर सैनिक सहायता चाही थी।[13]

कई बार पंचकुल को सदस्य मंदिरों की व्यवस्था भी करते थे। सोमनाथ के मंदिरन की व्यवस्था कुमारपाल ने पंचकुल को सम्भलाई थी। राजस्थान में भी ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। ऐसे सदस्य गोष्ठिक कहलाते थे। वि० स० ११९२ के सेवाड़ी के लेख के अनुसार गोष्ठिकों को मन्दिरों की व्यवस्था सोंपी गई थी।[14] बृहत कथा कोश

---

१३ चालुक्याज आफ गुजरात, पृ. २४१। प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ.२६।

१४ चालुक्याज आफ गुजरात, पृ. ५४१। अरली चौहान ड़ाइनेस्टीज, प. २०४-२०५। प्रबन्धचिंतामणि, पृ. १२६–१२६। सेवाड़ी के

(कथा १२१ श्लोक २६–२७) में भी चोरी हो जाने पर पंचकुल के समक्ष न्याय के लिए उपस्थित होने का प्रसंग आता है। मोह पराजय का वर्णन भी उल्लेखनीय है। इस में लिखा है कि कुबेरस्वामी नामक श्रेष्ठि के निःसतान मर जानेपर एक वणिक कुमारपाल के समक्ष उपस्थित होता है और निवेदन करता है कि हे राजन्, आप पंचकुल को नियुक्त कीजिए, जो जाकर कुबेर स्वामी के धन पर अधिकार कर लेवे। लेखपद्धति में आपसी झगड़ों के निपटारे के साथ-साथ खेतो के बटवारे आदि में भी इसका सक्रिय भाग लेना उल्लिखित है [15] इसके अन्तर्गत भाटक संस्था होती थी जो भाड़े की देखभाल करती थी। वि० सं० ६१८ के घटियाला के लेख में इसका उल्लेख है। इसी प्रकार का वर्णन रत्नपुर के वि० सं० १३४८ के लेख में भी।

इन कार्यों के अतिरिक्त पचकुलों द्वारा शुल्क[16] या कर संग्रह करने की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। संग्रह का कार्य तो वस्तुत मडपिकाओं द्वारा ही होता था। प्रवन्धचिन्तामणि में इस सम्बन्ध में कई संदर्भ हैं। कान्यकुब्ज से कर संग्रह के लिए एक पचकुल की नियुक्ति करना वर्णित है। धार्मिक कर संग्रह की व्यवस्था भी इसके द्वारा करने का उल्लेख मिलता हैं। पंचकुल के सदस्य मंडपिका आय में से कुछ राशि दान के रूप में दे सकते थे। उदाहरणार्थ वि. सं. १३३५ का हठ्ठ ंडी का लेख है[17] इसमें "द्रम्माः वर्ष वर्ष समों मंडपिका पंचकुलेन दातव्या ः पालनीयश्च" वर्णित है। इसी प्रकार वि० सं० १३३६ के इसी लेख के अंश में भी ऐसा ही उल्लेख है।

लेख में "गोष्ठ्या मिलित्वा निषेधकृत" वर्णित है। (नाहर जैनलेख संग्रह भाग १, पृ. २२७)। सांडेराब के वि. सं. १२२६ कार्तिक वदि २ के लेख में भी इसी प्रकार का उल्लेख है"

१५ लेखपद्धति (गायकवाड़ सिरीज), पृ. ८, ६, १६ और ३४ द्रष्टव्य हैं।

१६ मेरी पुस्तक-महाराणा कुम्भा, पृ. १७६।

१७ प्राचीन जैन लेख संग्रह, ले. सं. ३१६।

पंचकुल राज्य में भूमिदान आदि देने समय साक्षी का कार्य करता था। मंदिरों के लेखों से प्रकट होता है कि कई बार दानदाता स्थानीय अधिकारियों और पंचकुल को सम्बोधित करके दान देते थे। भीनमाल के वि० सं० १३३३ के लेख में भी ऐसा ही उल्लेख है।

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल में राजस्थान में पंचकुलों को स्थानीय व्यवस्था सम्बन्धी विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। गोड़वाड़ के लेखों में इनके कार्य व्यापार की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

---

१८ स्वति सं० १३३३ वर्षे। आश्विन सुदि १४ सोमे। अद्येह श्री श्रीमाले महाराज कुल श्री चाचिगदेव कल्याण विजयराज्ये तन्नियुक्त महं० गजसिंह प्रभृति पंचकुल प्रतिपत्तौ श्री श्रीमाल देश वहिकाधिकृतेन नैगमान्वय कायस्थ महत्तम सुभटेन तथा चेट्टक कर्मसिंहेन स्वश्रेयसे आश्वीन मासीय यात्रा महोत्सवे आश्विन सुदि १४ चतुर्दशीदिने श्री महावीरदेवाय प्रतिवर्ष पंचोपचार निमित श्री करणीय पंच-सेलहथड़ाभि नरपाल च भक्तिपूर्वक संबोध्य······· वर्तमान पंचकुलेन वर्तमान सेलहथेन देवदायकृतमिद स्वश्रेयसे—"

मान मोरी | ११

दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और मालवे के कुछ भाग पर ७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से मौर्यों का अधिकार हो गया प्रतीत होता है। इन मौर्यों में चित्राङ्गद[1] मोरी को चित्तौड़ दुर्ग को बनाने वाला वर्णित किया गया है। कर्नल टॉड को प्राप्त एक लेख[2] में महेश्वर, भीम भोज और मान नामक ४ राजाओं का उल्लेख है। महेश्वर को शत्रु का विनाश करने वाला वर्णित किया है। भीम को अवन्तिपुरी का शासक बतलाया गया है। इसके लिए यह भी लिखा गया है कि वह कारागृह में पड़े शत्रु की उन चंद्रवदनियों के हृदय में भी बसता था,

---

१—मध्ये दशपुरे स्थित्वा चित्रकूटनगं गतः।
शांतिर्चैत्ये श्वेतभिक्षो रामचन्द्रस्य सन्निधौ ॥ ४३ ॥
जाते चित्रे चित्रकूटदुर्गोत्पतिमपृच्छयत ।
रामोऽप्यूचेऽतः क्रोशत्रयेऽभून्मध्यमापुरी ॥ ४४ ॥
तत्र चित्राङ्गदो राजासोऽन्यदाभि नवैः फलैः ॥

"कुमारपालचरितादि संग्रहम्"

"तत्र चित्राङ्गदश्चक्रे दुर्गं चित्रनंगोपरि" (कुमारपाल प्रबन्ध)
कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक स० १०२ से १०५ में चित्रांग तालाब का वर्णन है वह भी इसी का बनवाया हुआ था। राजरूपक (१।११६) में भी चित्राङ्गद मोरी द्वारा चित्तौड़ दुर्ग बनाने का उल्लेख है जो मोरी वंशी था। चित्रकूट प्रबन्ध भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है।

चित्रकोट चित्राङ्गदे मोरी कुल महिपाल ।
गढमण्डयो अकलोकि गिरि देवंसी दाढाल ॥

२—वीर विनोद भाग १ के शेष संग्रह में दिया गया हिन्दी अनुवाद लेख।

जिनके ओष्ठों पर उनके पतियों के दन्तक्षत अब भी बने हुए थे। भोज ने युद्ध में शत्रुहस्ती का मस्तक विदीर्ण किया था। मान इसका पुत्र था। श्री रत्नचन्द्रजी अग्रवाल ने हाल ही में चित्तौड़ से एक और लेख प्रकाशित[3] कराया है। इसमें भी राजा मान भंग का उल्लेख है, जिसे "ग्रहपति जाति" का वर्णित किया है।

इन मौर्यो का समय बड़ा संघर्षमय रहा है। ५ वीं शताब्दी के आस-पास से ही चित्तौड़ और इसके आस-पास का क्षेत्र मालवा के शासकों से प्रभावित था। छोटी सादड़ी के वि सं. ५४७ माघ सुदि १० के एक लेख में गोरो[4] वंशी शासकों का उल्लेख है। ये संभवतः मंदसौर के औलिकरों के आधीन थे। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् की विषम स्थिति का लाभ उठाकर ये औलिकर मेवाड़ के दक्षिणी भाग तक फैल गये थे। इनमें आदित्यवर्द्धन (वि. सं, ५४७) द्रव्यवर्द्धन (५६१ वि०) यशोवर्द्धन (५८९ वि०) आदि[5] शासक हुये थे। इनमें यशोधर्मा बड़ा प्रतापी था। इसने स्वेच्छा से गुप्त सम्राट का नाम भी अपने लेख से हटा दिया था। इसकी ओर से अभयदत्त पश्चिमी प्रान्तों का प्रशासक था। हाल ही में प्राप्त छठी शताब्दी के एक लेख में वराह के पौत्र और विष्णुदत्त के पुत्र का

३—राजस्थान भारती में हाल ही में यह प्रकाशित हुआ है। इसमें इसके द्वारा ऊंचे मन्दिर, वापी, प्रपा आदि बनाने का उल्लेख है

श्रीमानभंगनृपः। ग्रहपति जातिरासीन्गु—
पृथ्वी हर्षितमतधरो य हितैर्नक्षिने दत्तं प—
सि स्तुतानेवं यस्य विभक्तयः प्रकटेयं त्यक्तैर्गुण्ड—
वटुक दिव्यः क्षितौ विश्रुतः। येनास्याक्षयवंशो यत्र—
न्य वारित जलाकस्य प्रपा शीतल वाप्यः कस्य-—
यस्या-भिपृष्ठाः कीर्त्तिषु चाविकीर्त्तन शतन्यत्की—

४—एपिग्राफिआ इंडिका Vol XXX अक्टूबर १९५३ पृ० १२२

५—इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली Vol XXXIII No, ४ दिसम्बर १९५७ पृ० ३१६ वीर भूमि चित्तौड़ पृ........

उल्लेख है जो दशपुर और माध्यमिका का प्रशासक[5A] था। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार वराह[6] के पुत्र और विष्णुदत्त के उल्लेखित पुत्र को पहले प्रशासक का पद मिला था और इसके पश्चात् अभयदत्त को। दोनों एक ही परिवार से सम्बन्धित थे। इनके राज्य को मेदों के सामूहिक आक्रमण से बड़ी क्षति पहुंची। मेद लोग मेवाड़ में फैल गये और इनके दीर्घ काल तक यहां निवास करने के कारण इस प्रदेश का नाम भी मेवाड पड़ा था। मौर्यों ने इसी संधि काल में मालवा के कुछ भाग दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया।

'समराइच्च कहा' का एक प्रसंग

समराइच्च कहा के लेखक हरिभद्र सूरि थे। ये चितौड़ के रहने वाले थे। इन्होंने धूर्त्ताख्यान की पुष्पिका में स्पष्टतः उक्त ग्रन्थ को चित्तौड़ में[7] पूर्ण करना वर्णित किया है। प्रभावक चरित के अनुसार ये ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे और राजा जितारि के पुरोहित थे। जितारि किस का नाम था यह स्पष्ट नहीं है। यह उपनाम प्रतीत होता है।

प्राकृत की कथा 'समराइच्च कहा' के एक प्रसंग में राजा मान भंग के बसंतपुर के आसपास के भाग को जीतने का उल्लेख है। प्रसग इस प्रकार हैं कि राजा गुणसेन अग्निशर्मा नामक साधु को भोजन के लिए आमन्त्रित करता है। यह साधु एक मास का उपवास करता है एवं पारणे के दिन जिस घर में पहले प्रवेश के समय जो भी अन्न मिल जावे, उस तक ही सीमित रहने का प्रण किया हुआ था। वह

---

५ A—इपिग्राफिआ इंडिका Vol XXXIV Part II पृ० ५५–५७

६—रिसर्चर वर्ष ५-६ पृ० ७–८

७—चित्तउडदुग्गसिरिसंठिएहिं सम्मत्तरायरत्तेहिं।
सुचरिअसमूहसहिआ कहिआ एसा कहा सुवरा ॥१२३॥
सम्मत्तसुद्धिहेउं चरिअं हरिभद्दसूरिणा रइअं।
णिसुणंतकहंताणं 'भवविरहं' कुणउ भव्वाण ॥१२४॥
धूर्ताख्यान (पृ० ३२)

साधु गुणसेन से, जब वह राजकुमार था, तंग होकर साधु बना था। राजा के निमन्त्रण पर यह राजा के घर पर पारणे के दिन जाता है किन्तु भाग्य से राजा के सिर में भारी दर्द रहता है, अतएव उसके पारणे की व्यवस्था नहीं होसकी। अगले महिने भी अचानक राजा मान के आक्रमण कर देने से व्यवस्था नहीं होसकी। मान के आक्रमण का का उल्लेख इस प्रकार है:—

'एत्थन्तरंमि य संपत्ते पारणगदिवसे निवेदियं से रन्नो विक्खेवा-गएहि निययपुरिसेंहि। जहा; महाराय अइसविसमपरक्कमगव्विय विसमदोणीमुहप्पविट्ठं अकयपरिक्खणोवायं अप्प मत्तेण माणहङ्ग नरवइणा इहरहा विसमविणाससमवलोइऊण वीरचरियमवलम्बिय वीसत्थसुत्तेसु नरिन्दपाइक्केसु जाए अड्ढरत्तसमए अत्थमिए रयणि बहुपिययमें तेलोक्यमङ्गलपईवे मियङ्के सयलबलसहिएणमवक्खन्दं दाऊण अइपमत्तं ते विणिज्जियं सेन्न" (पढमो भवो)

यह आक्रमण वसंतपुर के आस पास के भू भाग पर किया गया था। वहां के राजा गुणसेन द्वारा प्रत्याक्रमण की तैयारी का भी सुन्दर चित्रण खींचा[8] गया है। इसी ग्रन्थ में आगे चलकर राजा जितारि या जित-शत्रु का भी उल्लेख किया है। राजा गुणसेन के जब पुत्र उत्पन्न होता है, तब वह कहता है कि उत्सव उसी प्रकार सम्पन्न[9] किया जावे, जैसा कि

८—तओ राइणा एवं सूहुमहं वयण मायण्णिऊण कोवाणलजलियर-त्तलोयणेण विसमफुरियाहरेणं निद्दयकराभिहयधरणिवट्टेणं अमरिसवसपरिक्खलन्तवयणेणं समाणत्तो परियणो। जहा; देह तुरिय पयाणयपडहं सज्जेह दुज्जय करिबलं पल्लाणेह दप्पु-द्धुरं आससाहणं संजत्तेह धयमालोवसोहियं सन्दणनिवहं पयट्टावेह नाणापहरणसालिणं पाइक्कसेन्नंति"

(पढमो भवो)

९—जहा; मोयावेह कालघण्टा पओएण ममरज्जे सव्वबन्धणाणि दवा वेह घोसणापुव्वयं अणवेक्खियाणरूवं महादाणं; विसज्जावेहं जियसत्तुप्पमुहाणं नरवईणं ममपुत्त जम्म पउत्ति—

(पढमो भवो)

राजा जितारि ने किया था। जैन प्रबन्धों में जैसाकि ऊपर उल्लेखित है हरिभद्र सूरि को इस राजा का पुरोहित वर्णित किया गया है। ये दोनों प्रसंग स्वेच्छा से लेखक ने जोड़े हैं। मूल कथा से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

हरिभद्र सूरि मान मोरी के समसामयिक लेखक थे और चित्तौड़ के रहने वाले थे। यद्यपि इनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध में मतैक्यता नहीं है किन्तु अब[10] सब लेखक इन्हें वि० सं० ७५७ से ८२७ के मध्य हुआ मानते हैं। मेरुतुंग ने विचार श्रेणी में इनका निधन काल वि० सं० ५८५ बतलाया है। कुवलयमाला के कर्त्ता ने वि० सं० ८३५ में अपना ग्रंथ पूर्ण किया था। इसमें हरिभद्र सूरि का उल्लेख किया है। सिद्धर्षि ने वि० सं० ९६२ में "उपमिति भव प्रपच कथा" की प्रशस्ति में हरिभद्र सूरि को अपना धर्म बोध गुरु कहा है और यह भी लिखा है कि मानों ललित विस्तरा ग्रंथ उसके लिये ही लिखा था। सिद्धर्षि के इस प्रकार उल्लेख कर देने से समय निर्धारण में कुछ असंगति प्रतीत होती है। इसे जिनविजयजी ने अपने निबन्ध 'हरिभद्र सूरि का समय निर्णय' में अधिक स्पष्ट किया है। इन्होंने कई प्रमाणों से हरिभद्र सूरि को वि० सं० ७५७ से ८२७ के मध्य हुआ माना हैं। मान मोरी के शिलालेख वि० सं० ७७० के प्राप्त हुये है। अतएव उक्त समराइच्च कहा का प्रसंग भी ऐतिहासिक माना जा सकता है। मेवाड़ की ख्यातों में भी मान मोरी को कई प्रदेशों को जीतने वाला लिखा हैं। ये ख्यातें

१०– हरिभद्र सूरि के काल निर्णय के सम्बन्ध में निम्नांकित सामग्री पठनीय है:–
पूना ओरियन्टल कांफ्रेंस और जैन साहित्य संशोधक भाग १ अंक १ में प्रकाशित जिनविजयजी का निबन्ध/श्री कल्याण विजय जी–धर्म संग्रहणी की भूमिका/एच० जेकब–समराइच्चकहा (Bib-In 1926) की भूमिका/उपमितिभव प्रपंच कथा (B. I) की भूमिका/के वी अभ्यंकर की 'विंशतिनिर्विंशिका' की भूमिका/ भद्रेश्वर की कथावली (अद्यावधि अमुद्रित)/प्रभावक चरित राजशेखर का प्रबन्ध आदि आदि

बहुत बाद की है और ऐतिहासिक दृष्टि से इनका महत्व नगण्य सा है। फिर भी परम्परा से चली आई धारणा की अवश्य पुष्टि होती है कि मान मोरी एक प्रबल शासक था। समराइच्च कहा के उक्त प्रसंग में जिस प्रकार सैनिक तैयारी का वर्णन किया गया है, इससे भी इसकी पुष्टि होती है।

गुहिल राजाओं से संघर्ष

मान मोरी का बाप्पारावल के साथ युद्ध करना और उससे चित्तोड़ लेना प्रायः वर्णित किया है। बाप्पारावल की तिथि वि. सं. ८१० श्री ओझाजी ने मानी है। यह एक लिंग माहात्म्य [11A] नामक ग्रन्थ के आधार पर स्थिर की है. जो महाराणा कुंभा के समय संकलित किया गया था। बाप्पारावल की तिथि के सम्बन्ध में १३ वीं शताब्दी से ही मेवाड़ के राजकीय शिलालेखों में भ्रांति मिलती है। राणकपुर के लेख में भी उसे गुहिल का पिता मान लिया है। कुंभलगढ प्रशस्ति में जो कई प्रशस्तियों को देखकर के अत्यन्त शोध पूर्वक बनाई गई थी, बाप्पा के समय निर्धारण में भूल की है। चित्तोड़ से वि० सं० ८११ का एक लघुलेख [11B] कुकडेश्वर का कर्नल टॉड को मिला था, जो अब प्राप्य नहीं है। जब वि० सं० ८११ में चित्तोड़ में राजा कुकडेश्वर शासक था,

---

११–A अकाशचंद्रदिग्गजसंख्ये संवत्सरो बभूवाद्यः
श्री एकलिंगशङ्करलब्धवरो बप्पभूपालः
एकलिंग माहात्म्य (हस्त० १४७७ सरस्वती भवन उदयपुर)
एक अन्य प्रति में जो अपेक्षाकृत बाद की रचना है, उक्त तिथि में बाप्पारावल का राज्य छोड़ना वर्णित किया है।
राज्यं दत्वा स्वपुत्राय आथर्वणमुपागते।
खचंद्र दिग्गजाख्ये च वर्षे नागहृदे मुने ॥ २/२१ ॥
(उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ से उद्धृत)

११B– आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इंडिया सन् १८७२–७३ पृ० ११३ एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान Vol. I, पृष्ठ 106.

तब किस प्रकार बाप्पारावल वहां शासक हो सकता है ? यह विचारणीय है । बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में ओझाजी के अनुसार एक गुटका सग्रहित है, जिसमें बाप्पारावल[12] की तिथि वि० सं० ८२० दी है । मेवाड़ के गुहिल राजाओं में जब तक बाप्पारावल की तिथि निश्चित नहीं होती है, तब तक मान मोरी के मध्य उसके संघर्ष की कथा पर विचार करना[13] संभावित नहीं हो सकता । मान मोरी (७७० वि०) और बाप्पारावल के मध्य एक राजा और होना चाहिए। इस में कोटा के कन्सवा के लेख वि० सं० ७६५ में वर्णित धवल अथवा कुकड़ेश्वर को रक्खा जा सकता है । धवल के लिये लेख में 'भूपेषु भुञ्जत्सु सकलां महीम्'' वर्णित किया गया है एवं वह मौर्य वंशी भी था । इस सम्बन्ध में और शोध की आवश्यकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि अरब आक्रमण कारी जूनेद के आक्रमण से मौर्यो को बड़ी क्षति पहुंची और इसी के फलस्वरूप बाप्पा ने शक्ति एकत्रित की हो ।

निर्माण कार्य

मोर्यों द्वारा चित्तौड़ और इसके आसपास कराया गया निर्माण कार्य उल्लेखनीय है । ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कि चित्तौड़ दुर्ग को प्रथम बार सामरिक महत्व का इन मौर्यों ने बनाया था । चित्रांगद द्वारा और भी कई तालाब बनाने का यत्र तत्र उल्लेख मिलता है । मान मोरी के वि० ७७० के टॉड द्वारा प्रकाशित लेख में मानसरोवर के निर्माण का उल्लेख[14A] हैं । इस तालाब के सिवाय और भी कई एक वारीकूप गगन चुम्बी प्रासाद बनाने का उल्लेख शंकरघट्टा के वि० सं०

१२- बापाभिधः समभवद् वसुधाधिपोसौ ।
पञ्चाष्टषट् परमितेथ स (श) केन्द्रकालो (ले)
उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० १०८

१३- ततः स निर्जित्य नृपं तु मोरी जातीय भूपमनुराज संज्ञम् ।
ग्रहीतवाँश्चित्रतचित्रकूटं चक्रेत्र नृप चक्रवर्ती ।। १८ ।।
राजप्रशस्ति सर्ग ३

(१४A) एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान Vol- I. पृष्ट 652.

७७० के लेख में है। श्री रत्नचन्द्र जी अग्रवाल की धारणा है कि चित्तौड़ का सूर्य मंदिर भी इस मान मोरी ने ही बनाया[14B] था। यह राजस्थान की पूर्व मध्ययुगीन स्थापत्यकला की अनुपम निधि है। इस प्रकार राजा मान मोरी एक प्रबल शासक रहा होगा।

राजा मान मोरी और बाप्पारावल के संघर्ष के सम्बन्ध में और शोध किया जाय तो पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास में एक नई सामग्री प्राप्त हो सकती है। इसी समय प्रतिहार राजा शक्ति बढ़ाते जारहे थे और कुछ ही समय पश्चात् शक सं० ७०५ (विसं० ८४०) में इन्होंने उज्जैन आदि भाग जीत लिया था,

क्या गुहिल शासक ने प्रतिहारों की सहायता से चित्तौड़ जीता था ? इस सम्बन्ध में कोई निश्चय सामग्री उपलब्ध नहीं है। मौर्यों के साथ प्रतिहारों का संघर्ष सम्भावित है। इसी समय सिंध पर अरबों का आक्रमण हुआ था। श्री पृथ्वीसिंह महता के[15] अनुसार दाहिर के बेटों ने संभवतः चित्तौड़ के मौर्यों की मदद से अरबों को सिंध के एक बड़े भाग से निकाल दिया था। इन संघर्षों के कारण मौर्यों की शक्ति संभवतः कमजोर हो गई हो और गुहिल शासकों ने इस का लाभ उठा कर चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया था।

इस समय में चित्तौड़ में विशाल साहित्य का सर्जन हुआ था जिसका उल्लेख मैंने ''वीरभूमि चित्तौड़'' में विस्तार से कर दिया है। विषय की स्पष्टता हेतु मान मोरी का वंश क्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:—

चित्रांगद मोरी [डी० सी० सरकार ने इसे मथुरा शाखा के मौर्यों से सम्बन्धित माना है जो गलत प्रतीत होता है।]

|

महेश्वर

|

भीम [झालरापाटन का दुर्गगण इसका सामन्त रहा प्रतीत

१४B– वरदा वर्ष ९ अंक ४ पृ० ७

१५– हमारा राजस्थान पृ० ५५

होता है ।]

|

भोज [इन्द्रगढ़ के लेख में वर्णित नन्न राठौड़ या इसके पिता

| ने इसे मालवा से निष्कासित कर दिया था ।]

मान [वि० सं० ७७०]

|

धवल [वि० सं० ७९५. श्री डी० सी० सरकार ने इसे मथुरा शाखा से सम्बन्धित माना है, जिसकी कोई पुष्टि नहीं होती है ।]

|

कुकडेश्वर (वि० सं० ८११)

[वरद वर्ष १० अंक २ में प्रकाशित]

८ वीं शताब्दी में विवाह-समारोह | १२

विवाह एक मांगलिक पर्व है। राजस्थान में ८ वीं शताब्दी में सम्पन्न विवाहों का सविस्तार उल्लेख कुवलयमाला और समराइच्चकहा में मिलता है। प्रस्तुत निबंध में मुख्यतः इन्हीं दो ग्रन्थों के आधार पर संबंधित विषय पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

सगाई एवं मुहूर्त : समराइच्चकहा के अनुसार विवाह के पूर्व 'सगाई' की जाती थी तथा उस अवसर पर बड़ा महोत्सव किया जाता था। विवाह का दिन ज्योतिषी निश्चित करते थे। ज्योतिषियों का उल्लेख कुवलयमाला और हर्षचरित में भी हैं। कुवलयमाला में कहा गया है कि राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर कहा-'कृपा कर कुवलयमाला के लग्न समय की गणना करो।' इस पर ज्योतिषियों ने जन्म नक्षत्र के अनुसार शुभाशुभ फल बतलाकर विवाह का दिन और समय निश्चित किया। समराइच्चकहा में लिखा है कि विवाह का दिन निश्चित करने के बाद प्रचुर दान-पुण्य किया गया।[1]

विवाह की तैयारियाँ : विवाह की तैयारियों का अधिक विस्तार से वर्णन समसामयिक कृति हर्षचरित में मिलता है। इसमें उल्लेख है कि विवाह के दिन ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगे, राजकुल की ओर से सब लोगों की खातिर के लिये ताम्बूल, पटवास और फूल बांटे जाने लगे [उद्दामदीयमानताम्बूलपटवासकुसुमप्रसाधितसर्वलोक] । चतुर शिल्पी बुलवाये गये। गांवों से तरह-तरह के सामान इकट्ठे किये जाने लगे। कुवलयमाला में भी इसी तरह का उल्लेख है। इसमें अनाज

---

१. कुवलयमाला, सिंघी जैन सिरीज, पृ० १७०। समराइच्चकहा, दूसरा भव, गाथा १२९ के बाद का गद्य-भाग।

एकत्रित करने तथा भोजन के लिये नाना प्रकार की सामग्री जुटाने की बात भी कही गई है [अविय मुसुमूरिज्जन्ति धण्णाइं पुणिज्जंति सहिण समियाओ, सवकारिज्जति खण्ड-खज्जाइं, उग्गविखज्जंति भवखाइं, आहारिज्जन्ति कुलालइं..........] ।

दूर-सुदूर के सम्बन्धियों को निमन्त्रण दियागया । उनके ठहरने के लिए विशेष व्यवस्था की जाती थी । हर्षचरित और कुवलयमाला में इसका सुन्दर उल्लेख है । [2] भवनों में सफेदी कराई गई [धवलिज्जन्ति भित्तीओ] । हर्षचरित में सफेदी करने वालों का सुन्दर चित्रण खींचा गया है । वर्णन है कि पोतने वाले कारीगर हाथ में कूंची लिये, कंधे पर चूने की हांडी लटकाए, निसैनी पर चढ़ कर, राजमहल के पोरी, शिखर आदि पर सफेदी कर रहे थे [उत्कूर्चककरैश्च सुधाकर्परस्कन्धैः अधिरोहिणीसमारूढ़ेः धवैः धवलीक्रियमाणप्रसादप्रतोलीप्रकारशिखर....] कुवलयमाला में चांदी की चीजें बनवाने का उल्लेख है, जबकि हर्षचरित में स्वर्ण आभूषणों के बनवाने का ।

वस्त्रों के सम्बन्ध में हर्षचरित अत्यन्त विस्तार से कहता है । कुवलयमाला में केवल उल्लेख है—'फलिज्जंति पट्टीओ, सीविज्जति कुप्पासया । ,,

विवाह के दिन वर-वधू को विशिष्ट वस्त्र पहनाये जाते थे । समराइच्चकहा में राजकुमार सिंह और कुसुमावली के विवाह प्रसंग में इसे विस्तारपूर्वक बताया गया है । वधू को भली भाँति सजाया जाता था । उसे ऊंची चौकी पर बिठाया जाता था । नाई उसके पांव के नाखून साफ करता था । वह लाल रंग का वस्त्र पहने रहती थी । नाना प्रकार के सुगंधित द्रव्यों से उस की देह पर लेप किया जाता था । तदनन्तर सधवा स्त्रियां उसे स्नान कराती थीं । तरह-तरह के उसे आभूषण पहनाये जाते थे । [3] कुवलयमाला के अनुसार भी इसी

---

२. कु० मा०, पृ०१७० । ह० च०, चतुर्थ उच्छ्वास, राजश्री-विवाह-प्रसंग । वासुदेवशरण अग्रवाल; हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७०-८१ ।

३. समराइच्च कहा, दूसरा भव, गाथा १०३-१५४ ।

प्रकार वर को उत्तम वस्त्र पहना कर, शरीर पर चन्दन का विलेपण कर, गोरोचन और सिद्धार्थ का तिलक निकाल कर विवाह-मंडप की ओर लेजाया गया था। [4] समराइच्चकहा में वरात का सुन्दर वर्णन है। रथों में आरूढ़ कई राजपुत्र सुशोभित हो रहे थे। वर हाथी पर आरूढ़ था। [5] मार्ग में स्त्री-पुरुषों के झुंड ने वरात को बड़ी उत्कठा से देखा।

वरात विवाह-मंण्डप में पहुंची। वहां एक वृद्धा, जो सफेद वस्त्रों से सुसज्जित थी, वर का स्वागत किया। इस के बाद वह हाथी से उतरा और पांडाल की ओर गया। मार्ग में उत्सुक दर्शकों की भीड़ को कई बार नियन्त्रित करना पड़ा।

लग्न: शकुछाया देखकर ज्योतिषियों ने निश्चित समय को नजदीक आया समझा। उन्होने राजा से कहा कि हथलेवा का मुहूर्त [समय] आ गया है [आसन्नंपसत्थं हत्थग्गाहण मुहुत्तं ति]। वधू ने सफेद वस्त्र पहिन रखे थे। कुवलयमाला और समराइच्चकहा दोनों में सफेद वस्त्रों का उल्लेख मिलता है वादी पर अग्निहोम किये जाने का वर्णन है। मध्यभाग में ज्योतिषी, वेद-शास्त्र के ज्ञाता अनेक विद्वान् आसीन थे। दोनों ओर वर-वधू के पिता और अन्य परिवार के वृद्ध पुरुष बैठे थे। समराइच्चकहा में यह वर्णन अधिक विस्तार से है। हथलेवा जोड़ने के बाद बर-बधू विवाह-मंडप की ओर गए। चंवरी बड़ी सुन्दर बनी हुई थी। दोनों ओर बड़े-बड़े कांच लग रहे थे, जिन में वर-वधू के पीछें बैठी स्त्रियों के सुन्दर मुख स्पष्टतः प्रतिबिम्बित हो रहे थे। यज्ञ के धुएं से वधू की आंखों में, जो नीचे की ओर झुकी हुई थीं, आंसू आ गये। [6]

---

४. कुवलयमाला, पृ० १७०।

५. तओ य सीहकुमारो नरवइ समाणत्तपरिणयपवत्तिओ वज्जंतमंगलतूर रवावूरियसयलदिसामण्डलो पवणपणच्चन्तधयवडुग्घायसुन्दरहवरारूढ़-रायलोयपतियरिओ मणहरनट्टोवयारकुसलावरोहसुन्दरीवन्देणऽनुचन्तरुद्धरा यमग्गो धवलपसाहियकरिवरारूढ़ो........[समराइच्चकहा]।

६. समराइच्चकहा, दूसरा भव, गाथा १५७-१६८।

इस के बाद चार फेरे फिरने का वर्णन आता है। [7] पहले फेरे में स्वर्ण दान, दूसरे फेरे में विभिन्न प्रकार के आभूषण, तीसरे फेरे में तरह-तरह के चांदी के बर्तन' और चौथे में नाना प्रकार के वस्त्र प्रदान किये गए। इसके अतिरिक्त अन्य कई वस्तुएं दी गईं, जिन में हाथी, घोड़े, आभूषण तथा वस्त्र थे। अन्त में वधू के पिता द्वारा कन्या-दान का उल्लेख करते हुए अंजलि छोड़ी गई। [8]

राजस्थान में ही विरचित समसामयिक कृति शिशुपालवध में उल्लेख मिलता है कि वधू को ससुर की गोदी में रक्खा जाता था। यह प्रथा आज के २० वर्ष पूर्व तक मेवाड़ में प्रचलित रही, जिसे इन पंक्तियों के लेखक ने भी देखा है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवाह-समारोह के समय के रीतिरिवाज लगभग १२०० वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी आज कीसी प्रकार से बहुत कुछ प्रचलित है। सांस्कृतिक अध्ययन के लिये यह जानकारी बड़े महत्त्व की है। विवाह और अन्य मांगलिक पर्वों पर 'वधावणा' गाने का रिवाज उस समय भी प्रचलित था—"वद्धवाणय निवहं वद्धावणयं मणभिरामं।" यह शब्द [वधावणा] आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षित है। वस्त्रों में रेशमी वस्त्रों का बाहुल्य था। "दुगुल्लदेवङ्गपट्ट-चीणद्ध चीणाइं पवरवत्थाइ"—आदि प्रकार के वस्त्रो का उल्लेख

---

७. पढमंमि वहूपिउणा दिन्नं हिट्ठेण मण्डल वरंमि।
भाराण सय सहस्सं अडियरुवं सुवण्णस्स ॥१७॥
वीयंमि हारकुण्डलकड़िसुत्तयतुड़ियसारमाहरणं।
तइयंमि थालकच्चोलमाइय रुप्प भण्डतु ॥१७१॥
दिन्नं च चउत्थंमि वहुए परिओस पयड़ पुल एण।
पिउणा सुट्ठु महग्घं केलं नाणा पयारं ति ॥१७ ॥ (समराइच्च०)
इमिणा कमेण पढमं मंडलं। दुइयं पि भक्खिता लाजंजली।
आहूया लोयवाया। तइयं मंडलं। पुणो तेणेण कमेण दिण्णं
दायत्थं। तहा चतुत्थं मंडलं.......।—(कुवलयमाला, पृ० १७१)।

८. कुवलयमाला, पृ० १८१।

हर्षचरित में भी है। वेहर, हार, कुंडल आदि आभूषणों का जो वर्णन इन ग्रन्थों में मिलता है, वह समसामयिक हरिवंशपुराण और आदिपुराण में अधिक विस्तार से प्राप्त है। घोड़ों की विभिन्न किस्मों का उल्लेख, जो समराइच्चकहा में दान के प्रसंग में आता है, महत्त्वपूर्ण हैं (तुरुक्क वल्हीय कम्बोय वज्जरा इआस कलियाइं घोड़या वन्दाइं)।

[अन्वेषणा भाग १ अङ्क १ में प्रकाशित]

....

जैन ग्रन्थों में राष्ट्रकूटों का इतिहास

१३

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजाओं के गौरवपूर्ण शासनकाल में जैनधर्म की अभूतपूर्व उन्नति हुई। कई आचार्यों ने उस समय कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की संरचना की जिनमें समसामयिक भारत के इतिहास के लिये उल्लेखनीय सामग्री मिलती है।

राष्ट्रकूट राज्य की नींव गोविन्दराज प्रथम ने चालुक्य राजाओं को जीत कर डाली थी। इस का पुत्र दन्तिदुर्ग बड़ा उल्लेखनीय हुआ है। इसका उपनाम साहसतुंग भी था। जैनदर्शन के महान विद्वान् भट्ट अकलंक इसके समय में हुए थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में लघीयस्त्रय, तत्त्वार्थराज वार्त्तिक, अष्टशती, सिद्धिविनिश्चय और प्रमाण-संग्रह आदि बड़े प्रसिद्ध हैं। इन के ग्रन्थों में यद्यपि समसामयिक राजाओं का उल्लेख नहीं है किन्तु कथाकोश नामक ग्रन्थ में इनकी संक्षेप में जीवनी है। इसमें इनके पिता का नाम पुरुषोत्तम बतलाया है जिन्हें राजा शुभतुंग का मन्त्री वर्णित किया गया है।[1] यह राजा शुभतुंग निसंदेह कृष्णराज प्रथम है और इसी आधार पर श्री के० बी० पाठक ने इनको कृष्णराज प्रथम का समसामयिक माना है। इसके विपरीत श्रवणबेलगोला की मल्लिषेण प्रशस्ति में इन्होंने राजा साहसतुंग की सभा मे बड़े गौरव के साथ यह कहा था कि हे राजा! पृथ्वी पर तेरे समान तो प्रतापी

१. जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी भाग १८ पृष्ठ० २२६ कथा कोष में इस प्रकार उल्लेख है—

अत्रैव भवति मान्यखेटाख्य नगरे वरे।
राजा भूच्छुभतुंगाख्यस्तन्मन्त्री पुरुषोत्तमः।

इंडियन एंटिक्वरी भाग XII पृष्ठ २१५

राजा नहीं है पर मेरे समान बुद्धिमान भी नहीं [2] है। "अकलंक स्तोत्र" नामक एक अन्य ग्रन्थ में कुछ पद ऐसे भी हैं जिन्हें किसी राजा की सभा में कहा जाना वर्णित है लेकिन इसमें कई स्थालों पर "देवोऽकलङ्कलो" पद आया है। अतएव प्रतीत होता है कि ग्रन्थ किसी अन्य के द्वारा लिखा हुआ [3] है। मल्लिषेण प्रशस्ति के उक्त श्लोक सम्भवतः जनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं जो सही प्रतीत होते हैं।

श्री वीरसेनाचार्य भी प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री थे। ये अमोघवर्ष के शासनकाल तक जीवित थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में धवला और जयधवला टीकाएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। धवला टीका के हिन्दी सम्पादक डा० हीरालाल जी ने इसे कार्तिक शुक्ला १३ शक सवत् ७३८ में पूर्ण होना वर्णित किया है और लिखा है कि जिस समय राष्ट्रकूट राजा जगतुंग राज्य त्याग चुके थे और राजाधिराज बोद्दणराय शासक थे इसे पूर्ण किया।[4] श्री ज्योतिप्रसाद जी जैन ने इसे अस्वीकृत कर के लिखा है कि प्रशस्ति में स्पष्टतः "विक्कमरायम्हि" पाठ है अतएव यह विक्रम संवत् होना चाहिए। अतएव उन्होंने यह तिथि ८३८ विक्रमी दी है। भाग्य से ज्योतिष के अनुसार दोनों ही तिथियों की गणना लगभग एक सी है। लेकिन राजनैतिक स्थिति पर विचार करें तो प्रकट होगा कि यह

---

२. राजन् साहसतुंग एसांति बहव श्वेतातपत्रानृपाः।
किन्तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः।
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो।
नानशास्त्रविचारचातुरधियाः काले कलौमद्विधाः।
जैन लेख संग्रह भाग १ लेख २६०

३. न्याय कुमुद चन्द्र की भूमिका पृ० ५५

४. अट्ठतीसम्हि सासिय बिक्कमरायम्हि एसु संगरमो।
पासे सुतेरसीए भाव-विलग्गे धवलपक्खे ॥ ६ ॥
जगतुंगदेव-रज्जे रियम्हि कुंभम्हि राहुणा कोणे।
सूरेतुलाए सते गुरुम्हि कुल विल्लए होंते ॥ ७ ॥
बोद्दणराय रिंदे णरिंद चूड़ामणिम्हि भुंजते ॥ ६ ॥
धवला १,१,१, प्रस्ता० ४४–४५

तिथि विक्रमी के स्थान पर शक संवत् ही होना चाहिये।[5] इसका मुख्य आधार यह है कि विक्रमी संवत नाम का प्रचलन इतना प्राचीन नहीं है। इसके पूर्व इस सवत् का नाम कृत और मालव संवत मिलता है। विक्रमी संवत् का प्राचीनतम लेख ८९८ का धौलपुर का चंड महासेन का अब तक मिला है। किन्तु इसका प्रचलन उत्तरी भारत में अधिक रहा है।[6] गुजरात और दक्षिण भारत में उस समय लिखे गए ताम्रपत्रों में शक संवत् या वल्लभी सवत् मिलता है। इसमें उल्लेखित जगतुंग निःसन्देह राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज तृतीय है और बोद्दणराय अमोघवर्ष। अगर विक्रमी सम्वत् ८३८ मानते हैं तो यह तिथि १६।१०।७८० ई० ही आती है उस समय गोविन्दराज का पिता ध्रुव निरुपम भी शासक नहीं हुआ था। इसके अतिरिक्त हरिवशपुराण में वीरसेनाचार्य का उल्लेख है। लेकिन उस की इस धवला टीका का उल्लेख नहीं है। स्मरण रहे कि इस ग्रन्थ में समन्तभद्र, देवनन्दि, महासेन आदि आचार्यों के ग्रन्थों का स्पष्टतः उल्लेख हैं।

जयधवला के अन्त में लम्बी प्रशस्ति दी हुई है। इससे ज्ञात होता है कि वीरसेनाचार्य की इस अपूर्ण कृति को जिनसेनाचार्य ने पूर्ण किया था। यह टीका शक संवत् ७५९ में महाराजा अमोघवर्ष के शासन काल में पूर्ण की गई थी।

बहुर्चचित हरिवश पुराण की प्रशस्ति के अनुसार[7] शक स० ७०५ में जब दक्षिण में राजा वल्लभ, उत्तर दिशा में इन्द्रायुद्ध, पूर्व में वत्सराज और सौरमंडल में जयवराह राज्य करते थे तब वढ़वाण नामक ग्राम में उक्त ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। शक सम्वत् ७०५ की राजनैतिक स्थिति बड़ी उल्लेखनीय है। दक्षिण के वल्लभ राज का जो

---

५. अनेकांत वर्ष ७ पृ० २०७–२१२

६. भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १६६

७. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोतरेपूत्तरां
पातीन्द्रायुधा नाम्नि कृष्ण नृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादि (धि) राजेऽपराम्
सोराणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहऽवति ॥ २५ ॥

उल्लेख है वह सम्भवतः ध्रुव निरुपम है। गोविन्द II की उपाधि भी "वल्लभराज" थी। इसी प्रकार श्रवणबेलगोला के लेख नं० २४ में स्तम्भ के पिता ध्रुवनिरुपम की भी उपाधि वल्लभराज वर्णित है। गोविन्दराज का शासनकाल अल्पकालीन था और शक सं० ७०१ के धूलिया के दानपत्र के पश्चात् उसका कोई लेख नहीं मिला है। अतएव यह ध्रुव निरुपम के लिये ही ठीक है। उत्तर में इन्द्रायुध का उल्लेख है। यह मण्डी वंशी राजा इन्द्रायुध है। फ्लीट, भण्डारकर प्रभृति विद्वानों ने भी इसे ठीक माना[9] है। कुछ इसे गोविन्दराज III के भाई इन्द्र III मानते है जो उस समय राष्ट्रकूटों की ओर से गुजरात में प्रशासक था स्वतन्त्र[10] राजा नहीं। प्रशस्ति में तो स्पष्टतः इन्द्रायुध पाठ है अतएव इस प्रकार के तोड़ मोड़ करने के स्थान पर इसे इन्द्रायुध ही माना जाना ठीक है। पूर्व में वत्सराज का उल्लेख है। शक स० ७०० में लिखी गई कुवलयमाला में इस राजा को जालोर का[11] शासक माना हैं। अवन्ति प्रतिहार राजाओं के शासन में समवतः दंतिदुर्ग के शासन पूर्व काल से ही थी। [12] डा० दशरथ शर्मा एवं भण्डारकर के अनुसार वत्सराज और अवन्ति के शासक अलग २ शब्द हैं।

आचार्य जिनसेन जो आदिपुराण के कर्त्ता थे।[13] अमोघवर्ष

---

८. अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृष्ठ ५२–५३

९. एपिग्राफिआ इंडिका भाग XVIII पृ–११० ११२

१० डा० गुलाबचन्द चौधरी-हिस्ट्री आफ नोर्दर्न इंडिया फ्राम जैन सोर्सेस पृ० ३३

११. सगकाले बोलीणे वीरस्स सएहिंसत्ताई गएहिं।
एक दिन णोहि रइया अवरण्ह वेलाए।
परभडमिउहि भगोपण ईयण रोहिणी कलाचंदो।
सिरिवच्छरायणामो णरहत्यी पत्थिवो जइया॥[कुवलयमाला की प्रशस्ति]

१२. अल्तेकर-राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ४०

१३. "इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचितमेघदूतवेष्टितेपार्श्वाभ्युदये........" [पार्श्वाभ्युदय के सर्गों के अन्त की पुष्पिका]

के गुरु के नाम से विख्यात है। उत्तरपुराण की प्रशस्ति में स्पष्टतः वर्णित है कि वह जिनसेनाचार्य के चरणकमलों में मस्तक रख कर अपने को पवित्र मानता था।[14] इसकी बनाई हुई प्रश्नोत्तर रत्नमाला नामक एक छोटी सी पुस्तक मिली है। इसके प्रारंभ में "प्रणिपत्य वर्द्धमान" शब्द है। यद्यपि यह विवादास्पद है कि अमोघवर्ष जैन धर्म का पूर्ण अनुयायी था अथवा नहीं किन्तु यह सत्य है कि वह जैन धर्म की ओर बहुत आकृष्ट था। इसी के शासन काल में लिखी महावीराचार्य की गणितसार संग्रह नामक पुस्तक में अमोघवर्ष के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने समस्त प्राणियों को प्रसन्न करने के लिये बहुत[15] काम किया था और जिसकी चित्तवृत्ति रूपी अग्नि में पापकर्म भस्म हो गये। अतएव ज्ञात होता है कि वह बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति का था। इसमें स्पष्टतः जैनधर्मावलम्बी वर्णित किया है। राष्ट्रकूट शिलालेखों से ज्ञात होता है कि अमोघवर्ष कई बार राज्य छोड़कर एकांत का जीवन व्यतीत करता था और राज्य युवराज को सोंप देता था। संजान के दानपत्र के श्लोक ४७ व अन्यदान पत्रों में इसका स्पष्टतः उल्लेख है। प्रश्नोत्तर-रत्नमाला में अन्तिम दिनों में उसका राज्य से विरक्त होना[16] वर्णित है। अगर अमोघवर्ष जैनधर्म की ओर आकृष्ट नहीं होता तो निसंदेह जिनसेनाचार्य उसकी प्रशंसा में सुन्दर पद नहीं लिखते।[17] उसमें लिखा है कि उसके आगे गुप्त राजाओं की कीर्त्ति भी फीकी पड़ गई थी। संजान के दानपत्र में भी इसी प्रकार का उल्लेख

---

१४. यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
त्पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यल
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥८॥

उत्तर पुराण की प्रशस्ति

१५. नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य का इतिहास पृ० १५२

१६. अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ८९–९०

१७. गुर्जरनरेन्द्रकीर्तेरन्तः पतिता शशांकशुभ्रा या।
गुप्तैव गुप्तनृपतेः शकस्य मशकायते कीर्त्तिः ॥१७॥

है।[18] उत्तर पुराण की प्रशस्ति में अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी राजा कृष्ण II की[19] प्रशंसा की है। किन्तु यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि यह राजा जैन था अथवा नहीं। इसका सामन्त लोकादित्य जो वनवास देश का राजा था अवश्यमेव जैन था। इसकी राजधानी[20] वंकापुर थी। यह जैन धर्म का बड़ा भक्त था।

शिलालेखों और ताम्रपत्रों में भी गोविन्दराज और अमोघवर्ष का वर्णन मिलता है। गंगवंशी सामन्त चाकिराज की प्रार्थना पर शक सं० ७३५ में गोविन्दराज III ने जालमंगल नामक ग्राम यापनीय संघ को दिया था। यह लेख गोविन्दराज III के शासन काल का अन्तिम लेख है। उत्तरपुराण में वर्णित लोकादित्य के पिता वकेय के कहने पर अमोघवर्ष ने जैन मंदिर के लिये भूमिदान में दी थी ऐसा एक दानपत्र से प्रकट होता है।[21]

महाकवि पुष्पदंत और सोमदेव उस युग के महान विद्वान थे। पुष्पदंत का एक नाम खड भी था। ये महामात्य भरत और उनके पुत्र नन्न के आश्रित रहे थे। ये दोनों राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज के III के सम समायिक थे। इसने कृष्णराज के लिये "तुडिगु" "वल्लभ नरेन्द्र" और "कण्हराय" शब्द भी प्रयुक्त किये हैं।[22] तिरुक्कलुक्ननरम् के शिलालेख में कन्हरदेय शब्द इस राजा के लिए प्रयुक्त[23] किया

---

१८. हत्वा भ्रातरमेवराज्यमहरत् देवीं च दीनस्तथा।
लक्षं कोटिमलेखयत् किलकिलौ दाता स गुप्तान्वयः
येनात्याजि तनुः स्वराज्यमसकृत वाह्यर्थं कैः का कथा
ह्रीस्तस्योन्नति राष्ट्रकूटतिलक दातेति कीर्त्यामपि। ४८।
संजान का ताम्रपत्र

१९. उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २६–२७

२०. उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २९ और ३०

२१. जैन लेख संग्रह भाग ३ की भूमिका पृ० ९५ से ९७

२२. सिरीकण्हरायकरयलणिा हिय असि जलवाहिणि दुग्ग यरि।
आदि पुराण भाग ३ की भूमिका पृ० १९

२३. एपिग्राफिआ इंडिका भाग III पृष्ठ २८२ एवं साउथ इंडियन इंसक्रिप्सन भाग १ पृ० ७६

गया है। यह राजा जव मेलपाटी के सैनिक शिविर में था तव सोमदेव ने यशस्तिलक चम्पू ग्रंथ को पूर्ण किया था।[24] इस ग्रंथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि अरिकेशरी के पुत्र वद्दिग की राजधानी गंगधारा में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ था। इसमें स्पष्टतः वर्णित है कि कृष्णराज ने पाण्ड्य, सिहल, चोल चेर आदि के राजाओं को जीता था। इस बात की पुष्टि समसामयिक ताम्रपत्रों से भी होती है। पुष्पदंत के आदिपुराण में मान्यखेटपुर को मालवे के राजा द्वारा विनष्ट करने का उल्लेख है।[25] यशोधर चरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि जिस समय सारा जनपद नीरस हो गया था। चारों ओर दुःसह दुःख व्याप्त हो रहा था। जगह जगह मनुष्यों की खोपड़ियां और ककाल विखर रहे थे, और सर्वत्र नरक ही नरक दिखाई दे रहा था उस समय महात्मा नन्न ने मुझे सरस भोजन और सुन्दर वस्त्र दिये अतएव वह चिरायु हो।[26] महाकवि धनपाल की पाइअ लच्छी नाममाला[27] के अनुसार यह

२४. "पांड्यसिहलचोलचेरभप्रभृतीन्महीपतिन्प्रसाध्य मेलपाटी प्रवर्द्ध-मानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे"...एवं ८८१ शक के दानपत्र में भी इसी प्रकार उल्लेखित है।

२५. दीनानाथधनं सदा वहुजनं प्रोत्फुल्लवल्लीवनं, मान्याखेटपुरं पुरन्द-पुरीलीलाहरं सुन्दरम्। धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्धं विदग्धप्रियं। क्वेदानीं वसति करिष्यति पुनः श्री पुष्पदन्तः कविः। यह पद संदिग्ध है और क्षेपक है। प्र० श्लो० ३४ महापुराण की ५० वीं संधि।

२६. जण वयनीरसि दुरियमलीमसि। कइणि दायरि दुसहे दुइयरि। पड़ियकवालइ णरकंकालइ। वहुर कालइ अह दुक्कालइ। पवरागारि सरसा हारि सण्हि चेलि वरं तंवोलि॥ महु उवयारिउ पुण्णि पेरिउ। गुणभत्तिल्लउ णण्णु महल्लउ॥ होउ चिराउसु" यशोधर चरित ४।३१

२७. विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे साहस्सम्मि। मालवनरिंद धाडीए लूडिए मण्णखेडम्मि॥ पाइअ लच्छीनाममाला (भावनगर) पृ० ४५

घटना १०२९ वि० में घटित हुई थी। राष्ट्रकूट राजा खोट्टिग के बाद कर्कराज हुआ। परमार आक्रमण के बाद राष्ट्रकूट राज्य का अधः पतन प्रारम्भ हो गया और शीघ्र ही चालुक्यों ने वापिस हस्तगत कर लिया।

संस्कृत और प्राकृत के साथ-साथ कन्नड भाषा में भी कई दान-पत्र और ग्रंथ लिखे गये। इनमें सबसे ल्लेखनीय महाकवि पम्प हैं। इसके द्वारा विरचित आदि पुराण चम्पू और विक्रमार्जुन विजय ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। पिछले ग्रंथ में अरिकेसरी जो चालुक्य वशीय था और जो सोमदेव के यशस्तिलक चम्पू में भी वर्णित है की वंशावली दी गई है। विक्रमार्जुन विजय ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसमें राष्ट्रकूट राजा गोविन्द चतुर्थ के विरुद्ध उसके सामंत राजाओं के आक्रमण करने और राज्य को बद्दिग राज को सौंपने का उल्लेख है। वद्दिग अमोघवर्ष II का ही उपनाम प्रतीत होता है।[28]

शासन व्यवस्था

राष्ट्रकूट राजाओं के राजनैतिक इतिहास के साथ—साथ समसामयिक राज्यव्यवस्था का भी जैन ग्रंथों में सविस्तार वर्णन मिलता है। आदि–पुराण और नीतिवाक्यामृत में इसका स्पष्ट चित्र खींचा गया है। राजा और मंत्रियों को उस समय वंश परम्परागत अधिकार प्राप्त थे।[29] मन्त्रियों की संख्या सीमित रखने का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[30] मंत्रि मडल में मन्त्रियों के अतिरिक्त आमात्य (रेवेन्यू मिनिस्टर) सेनापति, पुरोहित दण्डनायक आदि भी होते थे। गावों के मुखियों का उल्लेख आदिपुराण में है। तलारक्ष का जो नगर अधिकारी था उल्लेख आदिपुराण नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलक चम्पू में भी है। अष्टादश श्रेणिगण प्रधानों का भी उल्लेख यत्रतत्र

---

२८. अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० १०७–१०८

२९. सन्तान क्रमतो गताऽपि हि रम्या कुष्टा प्रभोः सेवया। महामन्त्री भारत ने वंशपरम्परागत पद को जो कुछ दिनों के लिए चला गया था पुनः प्राप्त किया (महापुराण (अप) भाग ३ पृ० १३

३०. "बहवो मंत्रिणः परस्परं स्वमतीरुत्कर्षयन्ति १०।७३ ।।

मिलता है। नीतिवाक्यामृत में कई प्रकार के गुप्तचरों का उल्लेख है। राज्य कर जो प्रायः धान के रूप में लिया जाता था यह उपज का १/६ भाग था। इसके अतिरिक्त शुल्क मंडपिकाओं द्वारा भी संग्रहित किया जाता था। राजाओं के ऐश्वर्य का सविस्तार वर्णन है। इनके राज्याभिषेक के समय किये जाने वाले उत्सवों का भी आदि पुराण में वर्णन है। राजाओं का अभिषेक भी एक विशिष्ट पद्धति द्वारा कराया जाता था। राज्याभिषेक के समय "पट्ट बन्धन" होता था। यह पट्ट बन्धन युवराज पद पर नियुक्त करते समय भी बांधा जाता था। पट्टबन्धन का उल्लेख शिलालेखों में भी मिलता[31] है। अन्तःपुर की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता हैं। इसकी रक्षा के लिये वृद्ध कंचुकीगण नियुक्त थे। राजाओं द्वारा जलक्रीडाएं और कई प्रकार की गोष्ठियां किये जाने का भी वर्णन मिलता है।

सांस्कृतिक सामग्री

उस समय की सांस्कृतिक गतिविधियों के अध्ययन के लिये जैन सामग्री बहुत ही महत्वपूर्ण है। वर्णव्यवस्था[32] वर्णाश्रम धर्म[33] सामाजिक संस्कार,[34] वेश्यावृत्ति[35] भोजन व्यवस्था,[36] शिक्षा[37]

---

३१. "पट्टवन्धापदेशेन तस्मिन् प्राज्ञङ्कृते वसा (आ० पु० ११.४२) राज्य पट्टबन्धास्य ज्यायान् समवधीरयन्। आ० पु० ५।२०७ "मणे के शक सं. ७१९ के लेख में" राष्ट्रकूट-पल्लवान्वयतिलाकाभ्यां मूर्द्धाभिषिक्त गोविन्दराज नन्दिवर्माभिधेयाभ्यां समनुष्ठित-राज्याभिषेकाभ्यां निजकरघटितपट्टविभूषित ललाट-पट्टो विख्यात" इसी प्रकार पट्टबन्धोर्जगद्बन्धोः ललाटे विनिवेशितः। १६।२३ आ० पु० उल्लेख है। पुष्पदंत ने राजाओं के अभिषेक और चमरों का उल्लेख व्यंग के साथ किया है "चमराणिल उड्डाविय गुणाइ। अहिट सेय धोय सुयणत्तणाइ"

३२, आदि पुराण १६।१८१-१८८, २४२-२४६, २४७, २६।१४२

३३, ,, ३८।४५-४८ और ४२ वा पर्व

३४. ,, ४० और ३९ वां पर्व

३५. ,, ४।७३

३६. ,, ३।१८६-१८८-२०३, १९।७३

३७. ,, १४ (१९०-१९१), १६ (१०५-१२८)

चित्रकला,[38] संगीत,[39] आभूषण,[40] सौन्दर्य प्रसाधन,[41] चिकित्सा साधन,[42] खेतों की व्यवस्था [43] आदि का इनमें सांगोपांग वर्णन मिलता है। समसामयिक भारत के वास्तुशिल्प का भी सविस्तार वर्णन मिलता है। मंदिर महल आदि के वर्णनों में इस प्रकार की सामग्री उल्लेखनीय है। अल्तेकरजी ने अपने ग्रंथ राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स में इस सामग्री का अधिक उपयोग नहीं किया है। इस सामग्री का अध्ययन वांछनीय है।

---

३८ ,, ६ (१७०–१९१)
३९. ,, १४ (१०४–१५०) १२ (२०३–२०९)
४०. ,, १६ (४४–७१) १५ (८१–८४)
४१. ,, १२ (१७४) ११ (१३१) ६ (३०–३२)
४२. ,, ११।५९, ११।५८, ११।१६६ ११।१७४–७६, २८ (३८, ४०)
४३, ,, २६ (११२–११५) २६ (४८) २६ (१२३–१२७) २८ (३२–३६) १६ (१५७)

[बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित]

....

महाराणा मोकल की जन्मतिथि | १४

महाराणा मोकल महाराणा लाखा का पुत्र और कुम्भा का पिता था। इसकी जन्म- तिथि के सम्बन्ध में विवाद है। मेवाड़ की ख्यातों में यह तिथि वि० सं० १४५२ दी हुई है।[1] श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने यह तिथि वि० सं० १४६६ के आस-पास मानी है।[2] ओझाजी ने इसे छोटी अवस्था में ही शासक होना माना है।[3] प्राप्त सामग्री के आधार पर यह प्रतीत होना है कि यह तिथि वि० सं० १४५२ के आस-पास ही आनी चाहिये।

मोकल की पुत्री का विवाह अचलदास खींची के साथ हुआ था वह गागरोण का शासक था। इसकी मृत्यु मालवे के सुल्तान होशंगशाह के आक्रमण के समय हुई थी। यह घटना वि० सं० १४८०-८५ के मध्य सम्पन्न हुई थी।[4] अचलदास ने कर्नल टॉड के अनुसार शादी के समय गागरोण की रक्षा का वचन भी मेवाड़ के शासकों से लिया था लेकिन नागोर के सुल्तान के साथ युद्ध में व्यस्त होने के कारण

---

१ वीर विनोद भाग १ पृ० ३१३–१४

२ मारवाड़ का इतिहास पृ० ७५ का फुटनोट

३ ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० २७१

४ तारीख इ–फरिश्ता का अनुवाद भाग ४ पृ० १८३। मुन्तखाबउत तवारीख का अनुवाद इसमें वि० सं० १४७९ और १४८३ में २ वार ग्वालियर पर आक्रमण करना उल्लेखित है।

मोकल ने पर्याप्त सहायता संभवतः नहीं दी ।[5] अचलदास खींची की वचनिका से प्रकट होता है कि मोकल की पुत्री बड़ी चतुर थी । राज्य की सारी शक्ति उसने अपने हाथ में ले रक्खी थी । मोकल की तिथि जानने के लिये एकमात्र विश्वस्त साधन अचलदास खींची की वचनिका है जिसका सम्पादन होकर भी सादूंल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर से प्रकाशन हो गया है ।

वचनिका का रचनाकाल

वचनिका के रचनाकाल पर विचार करना इसलिये आवश्यक हो गया है कि इसे कुछ विद्वान् सम-सामयिक कृति नहीं मानते है । डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसे वि० सं० १५०० के आस-पास की कृति बतलाई है ।[6] इसकी हस्तलिखित प्रति वि० सं० १६२? की अनूप संस्कृत पुस्तकालय में उपलब्ध है । श्री मेनारिया जी ने हाल ही में इसके रचनाकाल के संबंध में कुछ संदेह किया है । इनकी आपत्ति के मुख्य आधार ये हैं:—[7]

(१) इसमें होशगशाह का पूरा नाम उल्लेखित नहीं है । इसके लिये केवल मात्र गोरी, सुल्तान, आलम आदि नाम ही दिये है ।

(२) इसमें बून्दी के राजा का नाम समरसिंह दिया है जो वि० सं० १४०३ में मर गया था ।

(३) मोकल के पुष्पा बाई नामकी कोई पुत्री ख्यातों में वर्णित नहीं है ।

---

५ नागौर के सुल्तान के साथ महाराणा मोकल के युद्ध कई वर्षो तक चल रहे प्रतीत होते हैं । चित्तौड़ के वि० सं० १४८५ के लेख में मोकल की विजय होना उल्लेखित है । इसी प्रकार का उल्लेख शृंगी ऋषि के लेख में भी हैं । फारसी तवारीखों में इसी प्रकार महाराणा की हार होना उल्लेखित हैं । वीर विनोद में २ युद्ध होना वर्णित है जिसमें एक में महाराणा की हार और दूसरे में जीत होना वर्णित हैं । क्यामखां रासो में लगभग ऐसा ही वर्णन है ।

६ राजस्थानी साहित्य पृ० ८३

७ शोध पत्रिका वर्ष १७ अङ्क १—२ पृ० २५—३०

यह तो विदित है कि होशंगशाह का पूरा नाम अलपखां ही था शिलालेखों में यह नाम कई बार उल्लेखित किया है। वि० सं० १४८१ के देवगढ़ के एक लेख में जो जैन लेख संग्रह भाग ३ के पृ० ४६४ पर प्रकाशित हुआ है, होशंगशाह के स्थान पर आलम खां ही नाम दिया है जो इस प्रकार हैं:–

"श्रीमान् मालवपालके शक नृपे गोरी कुलोद्योतके निः कान्ते-विजयाय मण्डपपुराच्छीसाहिआलम्मके ।"

इसमें स्पष्टत होशंगशाह का नाम आलमखां दिया है। शिला-लेख सम-सामयिक है और प्रामाणिक आधार हैं। इसके अतिरिक्त इसके लिये जो 'गोरी सुल्तान' आलम आदि नाम दिये है उन पर संदेह नहीं किया जा सकता है। सम-सामायिक कृतियों में कई ऐसे संदर्भ उपलब्ध हैं जिनमें बादशाह का नाम न देकर केवल मात्र 'सुरताण' शब्द ही दिया मिलता है। इसमें गोरी शब्द दिया हुआ है उससे उल्टा यहध्वनित होता है कि लेखक समसामयिक ही था। गोरी वंशी वि सं. १४९३ के पश्चात् शासक नहीं रहे थे। इनके पश्चात् वहां खिलजीवंशी शासक आ चुके थे। अगर यह रचना पश्चात् कालीन होती तो इसमें खिलजी शब्द भी अङ्कित कर सकता था क्योंकि गोरी वंशियों का शासन बहुत ही थोड़े समय तक रहा था।

दूसरी आपत्ति समरसिंह के सम्बन्ध में है। मेरे ख्याल से बूंदी के राजा का नाम इसमें समरसिंह दिया ही नहीं है। डा० दशरथ शर्मा की भी यही मान्यता है। उन्होंने बड़ोदा के ओरियन्टल जनरल के सितम्बर १९६४ के अङ्क में प्रकाशित लेख में यह स्पष्ट कर दिया हैं कि इसमें बूंदी के राजा और देवड़ाओं का उल्लेख मात्र[8] है। इनके शासकों के नाम नहीं दिये हैं। मूल पक्ति इस प्रकार है—"बूंदी का चक्रवर्ती अवर

८. डा० दशरथ शर्मा के लेख–
(१) राजस्थान भारती का कुंभा विशेषांक पृ० २२–२३
(२) अचलदास खीची की वचनिका की भूमिका
(३) जनरल आफ ओरियन्टल इंस्टीट्यूट आफ बड़ोदा (सितम्बर १९६४) पृ० ७९ से ८३

देवडा हिन्दूराइ वंदि छोड दूसरा मालदेव समरसिंह सरीखा"। इसमें समरसिंह को बूंदी का शासक वर्णित नहीं किया है। इस पंक्ति का अर्थ यह लेना चाहिए कि 'बूंदी का चक्रवर्ती राजा, सिरोही का देवड़ा राजा मालदेव समरसिंह आदि युद्ध में सम्मलित हुये। समरसिंह और मालदेव का वंश उल्लिखित नहीं है। उल्टा इसमें बूंदी के चक्रवर्ती शब्द से यह अर्थ निकलता है कि यह कृति सम सामयिक ही है। बूंदी के हाड़ा न तो इसके पूर्व और न इसके पश्चात् कभी भी स्वाधीन रहे थे। वे प्रारम्भ में मेवाड़ के राजाओं के, कुछ समय तक मालवे के खिलजी वंशियों के और इसके बाद फिर मेवाड़ वालों के अधीन रहे थे। मुगलों के साथ संधि के बाद ये मुगलों के आधीन हो गये। केवल मात्र मोकल के अन्तिम दिनों में ये लोग स्वाधीन हो गये थे। इसी कारण महाराणा कुंभा को अपने शासनकाल में सबसे पहले इनको अधीन करके करदाता[9] बनाना पड़ा था। श्री शारदा जी के अनुसार हाडा मालदेव मोकल का समकालीन भी था।[10]

इनके अतिरिक्त वचनिका में ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह और रावल गइपा का उल्लेख है जो वि० सं० १४८० में शासक के रूप में विद्यमान थे "पंच पद प्रस्थान विषम पद व्याख्या" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति के अनुसार डूंगरपुर में महारावल गइपा वि० सं० १४८० में शासक के रूप म विद्यमान था। डूंगरसिंह के पिता वीरमदेव की अन्तिम तिथि वि० स० १४७६ आषाढ़ सुदी ५ है जो आमेर शास्त्र भण्डार के ग्रन्थ "षटकमोपदेश माला" की प्रशस्ति की है।[11]

तीसरी आपत्ति मेवाड़ की ख्यातों में मोकल की पुत्री का उल्लेख न होना है। ख्यातों में मेवाड़ की रानियों के नाम गलत दिये हैं।

---

९. जित्वा देशमनेकदुर्गविषमं हाडावटीं हेलया।
तन्नाथन् करदान्विधाय जयस्तभानुद स्तंभयत्॥
कुशलगढ प्रशस्ति

१०. शारदा—महाराणा कुंभा पृ० ३१

११. प्रशस्ति संग्रह (अमृतलाल मगनलाल शाह) पृ० १५ एवं,,
(श्री कासलीवाल) पृ० १७३

ओझाजी ने इस सम्वन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला है कि ख्यातों में रानियों के नाम प्रायः गलत दिये हुए हैं। उनका कथन है कि "ख्यातों में १३ वीं शताब्दी तक के राजाओं की रानियों के नाम तो मिलते ही नहीं हैं यदि कुछ नाम मिलते है तो शिलालेखों में ही— वि० सं० १५०० और इसके कुछ पीछे तक रानियों के नाम जो ख्यातों में दिये हैं वे विश्वास योग्य नहीं है।" [१२]स्वय मोकल की रानियों के नाम भी गलत दिये हुये हैं। टॉड ने पुष्पादेवी को मोकल की पुत्री माना है जो भी ख्यातों के आधार पर ही था।

बीकानेर वाली प्रति घटना के लगभग १५० वर्ष बाद की है। अतएव इसमें वर्णित घटनायें अप्रामाणिक नहीं मानी जा सकती हैं जब तक कि कोई समसामयिक अधिक प्रामाणिक तथ्य प्रकाश में नहीं आ जावे। इसे वि० सं० १५०० के आस-पास की कृति मानी जा सकती है।

अन्य सामग्री

श्री रेऊ द्वारा दी गई तिथि को महाराणा मोकल की जन्मतिथि मान ली जावे तो गागरोण पर होशंगशाह के आक्रमण के समय कभी भी उसके विवाह योग्य पुत्री नहीं हो सकती थी। अतएव मोकल की तिथि कभी भी वि० सं० १४५२ के पश्चात् नहीं रखी जा सकती है, इसके पूर्व अवश्य। श्री रेऊ द्वारा भ्रमात्मक तिथिमां मानने का आधार क्या है? अस्पष्ट है। सम्भवतः राव रणमल को महाराणा कुंभा के शासनकाल में वि० स० १४९५ तक हुई घटनाओं का श्रेय देने के लिए ही ऐसी कल्पना की गई प्रतीत होती है। महाराणा खेता की निधन तिथि भी इसी प्रकार भ्रमात्मक मानी गई है। सोम-सोभाग्य-काव्य के अनुसार वि० स० १४५० में महाराणा लाखा मेवाड़ में शासक के रूप में विद्यमान थे। अतएव इस तिथिक्रम पर विचार करना आवश्यक हैं। निस्संदेह यह सत्य है कि कुंभा राज्यारोहण के समय छोटा सा बच्चा नहीं था। वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में कुंभा के लिये "वार्त्तापितापविपयात्रकथं प्रजानां श्रीकुंभकर्ण पृथिवीपतिरद्भुतोजाः" वर्णित है। इसी प्रकार वर्णन राणकपुर के लेख में भी

---

१२ ओझा निबन्ध संग्रह भाग २ पृ० १७२

हैं। दोनों ही कृतियां राज्याश्रित कवियों द्वारा विरचित की हुई नहीं है। इसके अतिरिक्त महाराणा कुंभा की मृत्यु के समय उसके ज्येष्ठपुत्र ऊदा के विवाह योग्य एक पुत्री और दो पुत्र[13] थे। यह जब ही सभव हो सकता है कि कुंभा राज्यरोहण के समय पूर्ण वयस्क हो। अतएव जब वि० सं० १४९० में कुंभा पूर्ण वयस्क था और १४८०-८५ के मध्य मोकल की पुत्री विवाहित थी तब उसकी जन्म तिथि वि० स० १४६६ के आसपास नही रखी जा सकती है। राजस्थान भारती के वर्ष १० अंक २ में लिखते हुये डा० दशरथ ने लिखा है कि (क) महाराणा मोकल की मृत्यु सं० १४८५-१४९० के बीच हुई थी। उस समय उसके ७ पुत्र थे क्या इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देहावसान के समय महाराणा मोकल की आयु १४ या १५ वर्ष न होकर उससे कहीं अधिक थी। ऐसी ही संभावना होने र हम पुष्पावती को मेवाड़ के महाराणा मोकल की पुत्री मान सकते हैं। (ख) किन्तु यह अधिक संभव है कि पुष्पावती किसी राणक मोकल की पुत्री थी जो महाराणा मोकल से भिन्न था। वचनिका में ऐसी कोई बात नहीं है जो राणा मोकल को महाराणा मोकल मानने के लिये विवश करे।"

वचनिका में अचलदास अन्त समय में जब अपने शौर्य और त्याग की कथा के सम्बन्ध में कहता हैं तब वह गर्व से कहता है कि इसे मोकल डूंगरसी, गहपा आदि सुनेंगे तो वे भी प्रसन्न होंगे। यहां मोकल का संदर्भ निसदेह मेवाड़ के महाराणा से सम्बन्धित है तो कोई कारण नही है कि पुष्पावती को अन्य वर्णन में इसकी पुत्री नहीं माने। मेवाड़ में ही नहीं अचलदास खीची की कथा लिखने वाले पश्चात् कालीन लेखकों ने इसे ठीक माना है। अतएव डा० दशरथशर्मा का उपरोक्त (ख) में वर्णित विचार माननीय नहीं है।

इसी प्रकार राव रणमल की जन्म तिथि श्री रेऊ ने वि० सं० १४४९ वैसाख सुदी ४ मानी है। मारवाड़ की अन्यख्यातों में यह तिथि वि सं० १४३२ भी मिलती है। वीर मायण में वीरमदेव सलपावत की बात छपी है उस में यह तिथि विसं० १४३२ छपी है। अतएव इससब सामग्री पर अधिक शोध करने की आवश्यकता है।

---

१३. महाराणा कुम्भा पृ० ६५-६६

लकुलीश मत | १५

भगवान शिव के २८ अवतार माने गये हैं जिनमें लकुलीश इनका अन्तिम अवतार है। संस्कृत में लकुलीश के लिये नकुलीश शब्द प्रयोग में लाया गया है किन्तु बूलर[1] भांडारकर प्रभृति विद्वानों ने लकुलीश शब्द को ही प्राचीन स्वीकार किया है। इनका कहना है कि सामान्यतया प्राकृत के व्याकरण के नियमानुसार "ल" का लोप होकर उसके स्थान पर "न" का प्रयोग अधिक होता था जबकि न के स्थान पर "ल" का प्रयोग कम। इसके अतिरिक्त शिव स्वयं लकुल लेकर अवतरित हुये हैं अतः लकुलीश शब्द ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

पाशुपत मत का प्रवर्त्तक कौन ?

नागरी प्रचारिणीपत्रिका वर्ष ६३ अंक ३-४ में श्री विश्वम्भर पाठक ने पाशुपत मत के प्रवर्त्तक श्री कण्ठ को माना है। इनका कहना है कि महाभारत में जहां ५ दर्शनों का विवेचन है वहां पाशुपत मत के प्रवर्त्तक के रूप में श्री कण्ठ का नाम ही[2] दिया है। तंत्रालोक में वर्णित

१. जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी VoXXII पृ. १५६ एवं आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इन्डिया वर्ष १९०७ में डी० आर० भंडारकर के लेख

२. सांख्या योगं पाञ्चरात्रं वेदा पाशुपतंस्तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै ॥६४॥
उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्राह्मणः सुतः।
उक्तवानि दमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ॥६७॥ शांतिपर्व पृ० ३४९

है कि श्री कण्ठ ने पंचस्रोतोरूप शिवशासन का[3] प्रवर्तन किया। कालान्तर में इसके विलुप्त हो जाने पर अद्वैत-त्रिक द्वैत-शैव सिद्धान्त और द्वैतादेत लाकुलीश के विभिन्न मतों का प्रवर्तन हुआ। अतएव श्री पाठक की मान्यता हैं कि "इन साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि श्रीकंठ ही शैवमत के आद्य आचार्य हुये और क्रमशः इस मूल मत से अलग होकर अनेक सम्प्रदायों की उत्पति हुई। श्री प्रबोधचद्र बागची ने बिना किसी प्रमाण के ही यह लिखा है कि श्री कंठ और लकुलीश संभवतः गुरुशिष्य होंगे और इसीलिए पाशुपत मत के साथ दोनों के नाम जुड़े हैं। तंत्रालोक में भी दोनों को शिवशासन से सम्बद्ध बत[4] लाये हैं। अभिनवगुप्त[4] यह भी कहते हैं कि श्री कंठ के यशोगान के लिये ही लकुलीश का आविर्भाव हुआ"। यद्यपि शैव ग्रंथों में श्री कण्ठ का गुणगान हो रहा है किन्तु पाशुपत धर्म की जो धारा उत्तरी और दक्षिणी भारत में फैलाई थी उसमें लकुलीश का ही प्रधान योगदान रहा था। शिलालेखों में लकुलीश आचार्यों का पाशुपताचार्य कहा गया है। एक लिंग मंदिर के विसं० १०२८ के लकुलीश सम्प्रदाय के शिलालेख में हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक कीर्ति फैलाने वाला कहा गया[5] है। तंत्रालोक के अवतरण से भी स्पष्ट है कि श्री कण्ठ द्वारा चलाया हुये शैव मत की कई शाखायें होगई किन्तु इन शाखाओं में लकुलीश सम्प्रदाय वाले ही अधिक विख्यात हुये। अगर लकुलीश नहीं होते तो निसंदेह पाशुपत सम्प्रदाय इतना अधिक विख्यात नहीं होता। श्री पाठक जी ने भले ही साहित्यिक आधार पर श्री कण्ठ के सम्बन्ध में

---

३. तच्च पञ्च विधं प्रोक्तं शक्तिवैचित्र्यचित्रितम्।
पचस्त्रोत इति प्रोक्तं श्री मच्छ्रीकण्ठशासनम् तन्त्रालोक जि० १ पृ० ३४ (नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६३ पृ० ३३८ से उद्धृत)

४. एतद्विपर्ययाद् ग्राह्यमवश्यं शिवशासनम्।
द्वा वाप्तौ तत्र च श्रीमच्छ्रीकण्ठ लकुलेश्वरो (उक्त पृ० ३३९)

५. तेभ्यो..........क्लेश समुद्गतात्ममहसः—योगिनः। शापानुग्रह भूमयो हिमशिला व (ब) न्धोज्वलादागिरेरासते रघुवंश कीर्त्ति-पिशुनास्ती......" एकलिंग मंदिर का १०२८ का शिलालेख

सामग्री अवश्य प्रस्तुत की है किन्तु शिलालेखों में लकुलीश को पाशुपत सम्प्रदाय का आद्य आचार्य कहा गया है। कहीं कहीं तो आरम्भ ही "ॐ नमो लकुलीशाय" से किया गया है। इस सामग्री पर भी हमें दृष्टि डालनी पड़ेगी। अतः यही कहा जा सकता है कि जो मत श्रीकण्ठ ने प्रारम्भ किया था और जो विलुप्त प्रायः सा हो गया था उसे लकुलीश ने वापस पल्लवित किया। शिलालेखों में श्रीकंठाचार्य का बहुत ही कम उल्लेख है। पुराणों में भी लकुलीश को ही शिव के अवतार के रूप में वर्णित किया है।

उत्पत्ति

यह बतलाना कठिन है कि भगवान शिव के विभिन्न अवतारों की कल्पना कब हुई थी? पुराणों में इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध में बहुत ही कम सामग्री उपलब्ध है। लिंग और वायु पुराण में इस मत का उद्भव काल वर्णित है। वहाँ लिखा है कि जब भगवान कृष्ण और द्वैपायन व्यास अवतरित होंगे तब ही शिव भी लकुल लेकर अवतरित[6] होंगे। पुराणों का यह कथन अधिक विश्वसनीय नहीं है। सचमुच बात यह है कि सामान्यतया सभी उपासक अपने उपास्य देव को परमब्रह्म या शक्तिशाली देव के रूप में पूजते हैं। कालान्तर में यह भावना इतनी बलवती हो जाती है कि उन्हीं देवों को लोक में पूजे जाने वाले अन्य देवों के साथ सम्बन्धित करने की चेष्टा करते हैं। अपने मत के प्रसार हेतु कई चमत्कारिक घटनाओं की कल्पना कर लेते हैं। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पाशुपताचार्यों ने भी लकुलीश को भगवान श्री कृष्ण का समकालीन बतलाकर अपने मत को अपेक्षाकृत प्राचीन बतलाने का प्रयास किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

मथुरा से प्राप्त वि० सं० ४३७ के चन्द्रगुप्त II के लेख में पाशुपताचार्य कुशिकान्वयी उदिताचार्य का[7] उल्लेख है। यह कुशिक

---

६. यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः। १.५
तदा षष्टेन चांशेन कृष्ण पुरुषोत्तमः।
वासुदेवाद्यदुश्रेष्ठोवासुदेवो भविष्यति। १२६
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया॥

७. एपिग्राफिआ इण्डिका Vol XXI में प्रकाशित

से १० वीं पीढ़ि में हुये थे। अतएव इस मत का प्रादुर्भाव काल वि. सं. १६२ से १८७ के मध्य हुआ माना जाता है। इसमें प्रत्येक आचार्य का औसतन काल २५ वर्ष माना जाकर ११ के लिये २७५ वर्ष मानने पर लकुलीश का काल ज्ञात हो जाता है। अगर यह लेख नहीं मिलता तो लकुलीश की ऐतिहासिकता में संदेह बराबर बना ही रहता है। वह युग निसदेह शिवोपासना की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था। कुशाण एवं भारशिवशासकों का उदय भी लगभग इसी काल में हुआ था।

शिव का यह अवतार गुजरात में कायावरोहण (कारवां) नामक स्थान पर हुआ है। एकलिंगजी के वि० सं० १०२८ के लेख में वर्णित है कि भगवान का यह अवतार भृगुकच्छ देश में हुआ जहां मेकला की पुत्री नर्मदानदी वहती है और जहां भृगुऋषि तपस्या[8] करते थे। सोमनाथ मन्दिर की वि० सं० १२७४ की प्रशस्ति के अनुसार यह अवतार उलका के पुत्रों को अनुग्रहित करने के लिये हुआ[9] था। शिलालेखों में प्रायः भगवान शिव के स्वयं लकुल लेकर अवतरित होने का उल्लख है जब कि पुराणों में मरे हये ब्राह्मण के शरीर में प्रविष्ट होने का। पाशुपत सूत्राणि पर राशिकर भाष्य में भी लिखा है कि ब्राह्मण काय में मनुष्य रूप से आकर इन्होंनें सबसे पहले उज्जैनी जाकर प्रथम उपदेश कुशिक को दिया।[10]

इतिहास

इस सम्प्रदाय में मुख्यरूप से प्रारम्भ में ४ प्रकार के आचार्य[11]

---

८. एकलिंग मंदिर के वि० स० १०२८ के लेख की पंक्ति सं. ७। पालड़ी के लेख वि० सं० ११७३ की पंक्ति सं० ८ और ९

९. अनुग्रहीतुं च चिरं विपुत्रकनुलूकभूतानभिशापतः पितुः।

१०. अवतरुश्चत्वारः पाशुपतविशेषचर्यार्थं।
इहकुशिकगार्गकौरुषमैत्रेया इति तदंत सद ॥१६॥

११. "मनुष्यरूपीभगवान् ब्राह्मणकायन्मास्थायकायावतरणे अवतीर्ण इति..............तथा पद्भ्यामुज्जयिनीं प्राप्त..........अतो रुद्र प्रचोदितः कुशिक भगवान्भ्यागत्य पृष्ठवान्" पाशुपत सूत्राणि राशिकर भाष्य पृ. ४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष ६३ पृ. ३३७ से उद्धृत)

ही प्रमुख हुये थे (१) कुशिक (२) गार्ग्य (३) कौरुष और (४) मैत्रेय ।। हरिभद्रसूरि ने "षटदर्शन समुच्चय" में १८ नाम दिये हैं । इसी प्रकार का उल्लेख कौडिन्य रचित पंचार्थभाष्य की भूमिका में भी उपलब्ध है । कुछ नामों में हेरफेर अवश्य है । मुनि कान्तिसागर जी द्वारा रचित एकलिंगजी के इतिहास पृ. ४०० पर इनकी नामावली इस प्रकार प्रस्तुत की है:—

(१) नकुलीश (२) कुलिश (३) गर्ग (४) मैत्रेय (५) कौरुष (६) ईशान (७) पारगार्ग्य (८) कपिलाण्ड (९) मनुष्यक (१०) कुशिक (११) अत्रि (१२) पिंगल (१३) पुष्पक (१४) बृहदार्थ (१५) अगस्ति (१६) सन्तान (१७) राशिकर (१८) विद्यागुरु कौंडिन्य ।

लकुलीश मत के महन्त यौगिक क्रियाओं में विशारद माने जाते थे । ७ वीं शताब्दी के शीतलेश्वर महादेव झालरापाटन से प्राप्त शूकर वराह की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख में "ईशान मुनि" का उल्लेख है जिसे लकुलीश के समान बतलाया है और उसके विशेषण स्वरूप'—ष्ट जाततिलकोधार्मिकव्रतभूषण:[12]" लिखा गया है । यह प्रतिमा वराह की है जो वैष्णव मत की है । इस पर तत्कालीन शैव साधु का नाम होना एक उल्लेखनीय घटना है । मूर्ति बनाने वाला इसका उपासक था । ईशान मुनि लकुलीश के १८ आचार्यों में से १ एक है । कण्याणपुर से राजा पद्र और केदर्थिदेव के समय के २ शैवलेख प्रकाशित हुये हैं । पहले लेख को श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने और इन दोनों को डॉ. सी सरकार ने सम्पादित[13] किये हैं । केदर्थिदेव वाले लेख में शैवाचार्य कुटुकाचार्य और उनकी शिष्या वेण्णा का उल्लेख है ।

---

१२. कनिघम आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इंडिया Vol II पृ. २६६ ।

१३. जरनल आफ इन्डियन हिस्ट्री Vol XXXV अंक १ पृ ७३–७४ । एपिग्राफिआ इण्डिया Vol XXXV पृ. ५६ ।

प्रतिहार राजा भोज ने प्रमाणराशि नामक पाशुपताचार्य को कुछ राशि गोष्ठियों को पहुंचाने को दी थी। कामां से प्राप्त हर्ष संवत २६६ शिलालेख[14] में इसकी सूचना दी गई है। चामुण्डा और विष्णु के देवालयों की देखमाल का कार्य भी शैवाचार्यों को सोंपा गया था जो एक विशेष घटना है।

एकलिंग क्षेत्र—मेवाड़ में एकलिंग मंदिर के मठाधीश बडे प्रसिद्ध रहे हैं। बाप्पारावल को राज्य प्राप्ति के लिये, एक लिंग माहात्म और ख्यातों के अनुसार हारीत राशि नामक शैवसाधु ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इन हारीत राशि की गुरु परम्परा आदि का विस्तृत विवरण एवं अन्य सम सामयिक वृतान्त उपलब्ध नहीं है। इनका उल्लेख भी १३ वीं शताब्दी के शिलालेखों[15] में ही आया है। यहां लकुलीश का मंदिर आज भी मोजुद है। इसमें वि० स० १०२८ का शिलालेख लग रहा है। शिलालेख की पंक्ति ६ में लकुलीश के अवतार लेने का उल्लेख है और १२ वीं पंक्ति में यहा के आचार्यों का उल्लेख है जो कुशिक शाखा के थे। वे लोग शरीर पर भस्म लगाते थे। वक्षों की छाल पहिनते थे और सिर पर जटा धारण करते थे। लेख के अन्त में कुछ साधुओं के नाम भी दिये हैं यथा—सुपूजित राशि सद्योराशि, एव विनिश्चत राशि। प्रशस्ति की रचना वेदांग मुनि के शिष्य आम्रकवि ने की थी। वेदाग मुनि का बौद्ध और जैन धर्मावलिम्बियों से शास्त्रार्थ हुआ था। सौभाग्य से

१४. एपिग्राफिआ इंडिया Vol XXIV पृ. ३३१।
वर्णन इस प्रकार है "२६६ फाल्गुण शु. २ पुरा श्री भोजदेवेन ये द्रम्मास्सम्प्रसादिता: प्रमाण राशये तेन चामुण्डाकस्य तेर्पिताः।

१५. वि. स. १३३१ के चित्तौड के लेख के श्लोक ६ से ११। चित्तौड के १३३५ वि. के लेख के ८वीं पंक्ति। इनमें भी स्पष्टतः हारीत-राशि शब्द है। "श्री एकलिंगशिवसेवनतत्परश्रीहारीतराशिवंश संभूतमहेश्वरराशितच्छिष्य श्रीशिवराशि ...." शब्द अंकित है।

इस घटना का उल्लेख लाट वागड़ की गुर्वावली में भी किया गया है।[16] शैव साधुओं का मेवाड़ में दीर्घकाल से सन्मान किया जाता था। बाप्पा-रावल के समकालीन ही हुए हरिभद्र सूरि ने आर्जव कौन्डिन्य नामक साधु का जो विवरण समराइच्चकहा में प्रस्तुत किया है वह ठीक शैव साधु[17]सा ही प्रतीत होता है। इससे उस समय में प्रचलित जन भावनायें प्रति ध्वनित होती है। पश्चिमी राजस्थान में लिखे उप मिति भव प्रपंच कथा में वठर गुरु का वृतान्त दिया है वहां इसमें जो शिव मदिर और मठ का प्रसंग वश वर्णन दिया है वह[18]रोचक है। मंदिर में धतूरे को पीने का प्रचलन था। मेवाड़ में एकलिंग क्षेत्र से पालडी और चीरवा के शिल लेख और मिले हैं जो भी इन पर प्रकाश डालते हैं। पालड़ी के ११७३ वि.के. लेख में भी लकुलीश की उत्पति आदि का परम्परागत वर्णन है। इस लेख में खण्डेश्वर नामक शैव साधु की परम्परा में हुए कई आचार्यों का उल्लेख है यथा जनकराशि त्रिलोचन राशि वसन्त राशि

---

१६. "चित्रकूटदुर्गे राजानरवाहनसभायां विकटशैवादिवृन्दवन दहनदावानलविविधाचारग्रन्थकर्त्ता श्रीमत्प्रभाचंद्रदेव..............."

१७. दिठ्ठो य तेण विक्कलवियड्जडाजणतिदण्डाधरि य।
मूइ रयकति पुण्ड्रो आसन्न कमण्डलु सो भो॥
भिसियाए सुह निसण्णो कयलो हृरयन्तरंमि झाणगओ।
परि वत्तन्तो दाहिणकरेण रद्दक्खमाल ति॥
मन्तक्खर जवणेण य ईसि वियलन्त कण्ठ उठ्ठ उडो।
नासाए निमिय दिट्ठि विणिवारिय सेस वावारो॥
अयसिमय जोगपट्टयपमाणसंगय कयासण विसेसो।
तावसकुलप्प हाणो अज्जवकोडिण्ण नामोत्ति॥ (प्रथम भव)

१८. "........ततो दृष्टोऽसौ वठरगुरुणामाहेश्वरः। तथा भव्यतया —चःसञ्चातखेदेन या चितोऽसौ जलपानः। माहेश्वरः प्राह। भट्टारक! पिबेदं तत्व रोचकं नामसत्तोकोदकं। पीतमनेन। ततः प्रनष्टः क्षणादुन्मादो निर्मलीभूताचेतना विलोकितं शिव-मंदिरं दृष्टास्ते धूर्तत्स्कराः।

(पञ्चम प्रस्ताव पृ. १२०६-७७)

वल्कल आदि। वल्कल के एक शिष्य शिव भक्ति ने ही पालड़ी का शिव मन्दिर बनाया था चीरवा के १३३० वि. के लेख में शिव राशि का उल्लेख है। इसके लिए "पाशुपततपस्त्रिपतिः" विशेषण दिया है। यह महेश्वर राशि का शिष्य था जो पाशुपत सम्प्रदाय में हुए हारीत राशि की परम्परा में था।

महाराणा कुम्भा के लेखों में एकलिंग माहात्म्य एकलिंग पुराण और रायमल के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति आदि १५ वीं. शताब्दी की सामग्री में इन आचार्यों की उपेक्षा की गई जो एक विचारणीय विषय है। शिलालेखों से प्रतीत होता है कि वि० सं० १५९२ में नरहरि नामक मठाधीश ने मौजुदा मठ का विस्तार किया था और वि. स० १६०२ में गर्गाचार्य के मठाधीश होने का उल्लेख मिलता है। अतएव प्रतीत होता है कि उस समय में आचार्य वापस यहां आ चुके थे। एकलिंग माहात्म्य आदि में वर्णित है कि महाराणा कुम्भा के साथ शिवानन्द नामक शैवाचार्य के सम्बन्ध ठीक नहीं होने से आचार्य रुष्ट होकर काशी चला गया था। कालान्तर में नरहरि वापस आया हो किन्तु ये पाशुपत मठाधीश अधिक समय तक नहीं रह सके और इनकी जगह दण्डी स्वामी साधु यहां लाये गए और व्यवस्था में आमूल मूल परिवर्तन किया गया। एकलिंगक्षेत्र से प्राप्त शिलालेखों में इन आचार्यो के विषय में विस्तार से क्रम बद्ध वर्णन नहीं मिलता है।

मेनाल क्षेत्र—मेनाल क्षेत्र माण्डलगढ़ सब डिवीजन में है। इस क्षेत्र में चौहान कालीन कई शिव मन्दिर आज भी विद्यमानहैं। लाहोरी के मूतेश्वर शिवालय में वि० सं० १२११ का एक शिलालेख[19] उत्कीर्ण है जिसमें चौहान राजा वीसलदेव के शासनकाल में पाशुपताचार्य विश्वेश्वर प्रज्ञ द्वारा सिद्धेश्वर मन्दिर का मण्डप बनवाना वर्णित है। मेनाल के मठ में वि० सं० १२२६ का एक शिलालेख लग रहा है जिसमें ब्रह्म-

---

१९. राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट अजमेर १९२३ पृष्ट १। वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० ९

मुनि द्वारा मठ के [२०] निर्माण का उल्लेख है । इसी समय के थोड़ के शिलालेख में पाशुपताचार्य प्रभासराशि का उल्लेख है । यहां के वि सं. १२२६ के एक लेख[२१] में इसी प्रभासराशि द्वारा मठ बनाने का भी उल्लेख है । जिसमें बाहर से आये हुये कपिल तपस्वी ठहर सकें । कपिल के स्थान पर कापालिक पाठ भी पढ़ा जाता है । विश्वास किया जाता है कि मेनाल के साधु प्रारम्भ में अजमेर के चौहान शासकों के गुरु थे । यहां अच्यंतधज जोगी नामक एक साधु का उल्लेखनीय वर्णन मिलता है । इसका नाम एक लिंग मंदिर स्थित लकुलीश मंदिर में भी खुदा हुआ है । मांडलगढ़ के उंड़ेश्वर शिवायतन में भी इसका नाम अंकित है । इसके आगे वि० सं० १४५० भी खुदा हुआ है ।[22] चित्तौड़ के मन्दिरों में भी इसका नाम खुदा मिलता है । कोटा क्षेत्र के रामगढ़ मंड़देवरा बूढ़ादीत आदि के मदिरों में भी इसका नाम खुदा हुआ है ।[22A] मेनाल से वि० सं० १५१४ पोष वदि १२ सोमवार के एक लघुलेख में कड़व भोजा और चम्पा जोगियों[23] का उल्लेख है । कड़व महन्त[24] का उल्लेख और भी कई लेखों में मिलता है । उदयपुर संग्रहालय में संग्रहित लकुलीश सम्प्रदाय के १६वीं शताब्दी के एक लेख से उस समय तक इस सम्प्रदाय की विद्यमान प्रतीत होती है । यह लेख मेनाल क्षेत्र से ही प्राप्त हुआ है ।[25] इस लेख का प्रारम्भ "जयसव लिन्गुवाशराय" से होता है । कालान्तर में यह मत इस क्षेत्र से विलुप्त हो गया था । इस प्रकार १०वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक इस मत के कई शिव मन्दिर इस क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं ।

---

२०. "कारितं- मठमनुत्तम कलौ भावब्रह्ममुनिनाम्नाह्वय" वीर वनोद भाग १ में प्रकाशित

२१. वरदा वर्ष ८ अङ्क-४ में श्रीरतनचन्द अग्रवाल द्वारा सम्पादित

२२. वरदा वर्ष ६ अङ्क ४ पृष्ठ ६

२२A. रिसर्चर भाग III एवं IV पृ० १७ का फुटनोट २२

२३. महाराणा कुम्भा पृष्ठ १८८ फुटनोट १६

२४. " सं० १५१४ वर्षे पोष वदि १२ सोमे कड़व भोजाचम्पा ......" (उपरोक्त)

२५ वरदा वर्ष ४ अङ्क ३ पृ० ३-४ [illegible]

शेखावाटी में हर्षनाथ के मन्दिर के वि. स. १०३० के शिलालेख में इस सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री[26] उपलब्ध है । शिलालेख में अनन्त गोत्र के साधुओं का उल्लेख हैं जो कुशिक की शाखा के थे । इस लेख की पंक्ति सं २२ में विश्वरूप नामक गुरु को "पंचार्थलाकुलाम्नायें" कहा गया है । इसका शिष्य अल्लट हुआ । यह रणपल्लिका ग्राम में रहता था और "सांसारिककुलाम्नाय" का मानने वाला था । प्रस्तुत लेख की २३वीं पक्ति में इसे "आजन्मब्रह्मचारीदिगमलवसनः संयमात्मातपस्वी' कहा गया है । इससे पता चलता है कि यह शैव साधु भी नग्न रहता था । इसकी २६वीं पंक्ति में अल्लट के शिष्य भावद्योत का उल्लेख है जो पाशुपत व्रत में एक निष्ट था । इस प्रकार प्रतीत होता है कि हर्ष-नाथ का यह शिवालय इन पाशुपत साधुओं का केन्द्र स्थल रहा था । नासूण के लेख में वर्णित है कि नीललोहित[27] शिव का मन्दिर.गामुण्ड स्वामी नामक एक शैवाचार्य ने स्थापित किया था । धनोप के लेख में भी नग्न भट्टारक नामक साधु का उल्लेख है जिसने शिव मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई थी ।[28] अथूंणा (बांसवाड़ा) क्षेत्र में भी लकुलीश की प्रतिमायें मिली हैं । यहां के मण्डलेश्वर शिवालय में जो वि.सं. ११३६ में परमार राजा चामुण्डराय के द्वारा बनाया गया था द्वार पर लकुलीश की प्रतिमा बनी है ।[29] यहां के साधुओं का वर्णन नहीं मिलता है ।

आबूके विसं० १२६५ के एक लेख में शैवाचार्य केदारराशि का उल्लेख है । इसे "अमलचगलगोत्रप्रोद्यतानां मुनीनामजनि तिलक स्वरूपस्य केदारराशि" कहा गया है । इसी लेख की १५वीं पंक्ति में "शान्ता" नामक ब्रह्मचारिणी का उल्लेख है । इससे पता चलता है कि स्त्रियां भी पाशुपत सम्प्रदाय में दीक्षित हो सकती थी ।[30] आबू के एक

---

२६. एपिग्राफिआ इण्डिका भाग II पृ० १२३ । वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० ६

२७. इण्डियन एन्टिक्वरी भाग LIX पृ० २१

२८. उक्त भाग LX पृ० १७५

२९. बांसवाड़ा राज्य का इतिहास पृ०

३०. वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० १०

अन्य विसं० १३४२ के शैव मठ के एक लेख में भावाग्नि और उसके शिष्य भावशङ्कर का उल्लेख हैं जो पाशुपत साधु थे। मारवाड़ में चोहटन नामक स्थान में तीन मन्दिरों के भग्नावशेष है। इनमें से एक पर कान्हड़देव चौहान के समय का लेख है। एक ११वीं शताब्दी के लकुलीश मन्दिर का विसं० १३६५ पौष सुदि ६ के दिन उत्तमराशि के शिष्य धर्मराशि द्वारा जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख वहां लगे शिलालेख में मिलता है।[31]

मध्यप्रदेश के झालावाड़ जिले की सीमा से लगे इन्द्रगढ़ से वि सं. ७६७ का शिलालेख मिला है। इसमें भी पाशुपत सम्प्रदाय के विनीतराशि और दानराशि के नाम है।[32]

गुजरात से इस सम्प्रदाय के सैकडों शिलालेख और असंख्य मूर्तियां मिली है। यहां कई आचार्य हुये हैं जो चालुक्य और बाघेला राजाओं के गुरु थे। सिन्नाप्रशस्ति में इस सम्बन्ध में विस्तार से लिखा हुआ है। इन आचार्यों में से कुछ नाम ये हैं श्री वच्छकाचार्य दीक्षिताचार्य भावबृहस्पति विश्वेश्वरराशि बृहस्पतिराशि त्रिपुरान्तकराशि आदि।[33]

दक्षिणी भारत में भी यह सम्प्रदाय खूब फैला। वहां त्रिल्लुक नामक एक साधु को तो पाशुपताचार्य लकुलीश का अवतार तक कहा गया है। इस सम्बन्ध में कई शिलालेख वहां मिले हैं जिनमें 'लकुलिन' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

इन शिलोत्कीर्ण प्रशस्तियों में वर्णित आचार्यों के अतिरिक्त वामध्वज नामक एक पाशुपताचार्य द्वारा विरचित ग्रंथ भी मिले हैं। अगर चन्द नाहटा ने राजस्थान भारती में इस सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है।

उपमिति भवप्रपंच कथा के प्रस्ताव ४ प्रकरण १२ में जो विवरण प्रस्तुत किया है उससे पता चलता है कि उस समय कई पाशुपातों की

---

३१. जोधपुर राज्य का इतिहास पृ०
३२. एपिग्राफि आ इण्डिका भाग XXXII पृ० ११३
३३. सिन्ना प्रशस्ति की पंक्ति १८,१९,२० और २१ में कार्तिक राशि का नाम है जिसे "गार्ग्य गोत्राभरण" लिखा है। इसका शिष्य वाल्मिकी राशि था और उसका त्रिपुरांतक।

शाखायें थी। ये शैवों से भिन्न थी। ये पाशुपत, घोप पाशुपत, दिगम्बर शंख कर्म नारा (कनकटे योगी) आदि थे। हरिभद्र सूरि के षट् दर्शन समुच्चय के अनुसार कुछ पाशुपत विवाह करते थे और कुछ अविवाहित होते थे। गुजरात के साधु विवाह करते थे। सित्रा प्रशस्ति में इसका विस्तार से उल्लेख है।

लकुलीश प्रतिमा

लकुलीश की मूर्ति में शिव को एक हाथ में बिजोराफल और दूसरे हाथ में लकुल लेकर पद्मासन में बैठे हुये घुंघराले बालों सहित उत्कीर्ण किया जाता है। लकुलीश उर्व रेता होता है अतएव लिंग का चिन्ह भी बना रहता है। मूर्तिकला की दृष्टि से लकुलीश का यह वर्णन अत्यन्त प्रसिद्ध है:—

नकुलीश उर्ध्वमेंढ्रं पद्मासन सुसं स्थितम्।
दक्षिणे मातुलिंगं च वामे दंडं प्रकीर्तितम्।"

लकुलीश की यह प्रतिमा मुख्य द्वार के बाहर उत्कीर्ण होती है। साधारणतया लकुलीश का मंदिर शिव मंदिर से अभिन्न होता है। अन्तर केवल द्वार पर खुदी हुई लकुलीश की मूर्ति से ही प्रतीत होता है।

भारतीय मूर्ति कला के इतिहास में लकुलीश की प्रतिमा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। दूर से जैन तीर्थङ्करों-सी प्रतीत होने वाली यह प्रतिमा विशेष आकर्षण का विषय बनी रहती है। जिस प्रकार पाशुपताचार्यों ने बीज और बिन्दु का समन्वय करके अर्द्धनारीश्वर की कल्पना की थी उसी प्रकार लकुलीश की प्रतिमा की कल्पना में उन्होंने ब्रात्य और शैव सिद्धान्तों का समन्वय किया प्रतीत होता है। इस प्रतिमा में दण्ड बिजोराफल और लिंग चिन्ह ही इसे जैन प्रतिमा से भिन्न सिद्ध करते हैं। कारवां माहात्म्य नामक ग्रन्थ के ४ थे अध्याय की परिसमाप्ति पर लकुलीश के लिये 'तीर्थङ्कर'-शब्द भी प्रयोग में लिया गया[३४] है। अतएव प्रतीत होता है कि इस मूर्ति की रचना करते समय कलाकारों के सन्मुख

३४. आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट सन् १९०६—७, पृ २८० महानागा कुम्भा प १८६

प्राय मूर्तियों का स्वरूप अवश्य रहा था। तिलस्मा की मूर्ति में हाथ के आयुधों में बिजोरा की जगह नारियल हैं। मांडलगढ़ के मन्दिर की मूर्ति में दण्ड की जगह साधारण डंडा है। तिलस्मा की उपरोक्त मूर्ति जैन पार्श्वनाथ की प्रतिमा सी दिखाई[35] पड़ती है। हाल ही में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने कई लकुलीश और शिव मूर्तियां ऐसी ढूंढ निकाली हैं जिन पर जैन तीर्थङ्करों की तरह श्रीवत्स का चिन्ह भी बना हुआ है। इन्होंने इस सम्बन्ध में नागदा के सास बहु देवालय की आसनस्थ शिव प्रतिमा, आहड़ के गंगोद्‌भव कुण्ड के पास की जटाधारी शिव प्रतिमा अजमेर संग्रहालय की लकुलीश की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय बतलाई है।

लकुलीश की प्रतिमाओं में दो की जगह चार हाथ भी होते हैं इन प्रतिमाओं में झालावाड़ कोटा संग्रहा लयों की लकुलीश प्रतिमायें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। झलावाड़ वाली प्रतिमा डग नामक स्थान से प्राप्त हुई थी। कन्सुवा के मालव संवत ७६५ वाले लेख वाले मंदिर में भी चतुर्भज लकुलीश प्रतिमा का अंकन है। बाडोली के शिवालय में एक गान्धर्व किन्नरियों से युक्त चतुर्बाहु वाली लकुलीश प्रतिमा है। इसके सिर पर जटाजूट बना हुआ हैं। इसी प्रकार इसी देवालय में एक शिला पर ब्रह्मा और विष्णु के साथ चतुर्बाहु लकुलीश का सुन्दर अंकन हो रहा हैं। चित्तौड़ के सूर्य मन्दिर में भी चतुर्बाहु आसनस्थ लकुलीश प्रतिमा उत्कीर्ण है। कुम्भश्याम के मंदिर में स्थानक लकुलीश की प्रतिमा अपने ढंग की विशिष्ट प्रकार की है। यहां जटाधारी शिव के केवल २ हाथ है और स्थानक मुद्रा में है। वामहस्त में सर्प वेष्टित दण्ड है और दांये हाथ में बिजोरा। राजस्थान में तो स्वतन्त्र द्विबाहु लकुलीश की प्रतिमायें बहुत ही कम मिली है। दशपुर से भी गुप्तोतर युगीन् एवं स्थानक द्विबाहु शिव

---

३५. महाराणा कुम्भा पृ १८६

३६. वरदा वर्ष ७ अंक २ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख।

३७. शोध पत्रिका वर्ष ८ अङ्क ३ में 'श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का' लेख

३८. वरदावर्ष ६ अंक ४ में—

प्रतिमा मिली है। जिसमें उर्ध्व मेढ शिव के वामहस्त में त्रिशूल हैं जिस पर पाशु जड़ा है। श्री रतनचन्द अग्रवाल की मान्यता है कि इस प्रतिमा का प्रभाव अवश्य चित्तौड़ की उक्त प्रतिमा पर रहा होगा।

शैव दर्शन में ३ मुख्य पदार्थ माने गये हैं (१) पति (शिव) २ पशु (जीव) और पाश (कर्म)। शिव का शरीर कर्मफल से मुक्त माना जाता है। लकुलीश दर्शन में कुछ अन्तर है। इसमें कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त को अधिक महत्व दिया गया है। कारण परमेश्वर, कार्य को पशु या जीव का स्वरूप माना है। विधि के अन्तर्गत भस्म स्नान जप उपहार तथा प्रदक्षिणा और इसी प्रकार शिव की पूजा के निमित हसित, गीत नृत्य हुडकार नमस्कार आदि को भी आवश्यक बतलाया गया है। उनकी इन प्रक्रियाओं के कारण रामानुजाचार्य ने इन्हें वेद विरोधी बतलाया है।

[शोध पत्रिका में प्रकाशित [

—: ० :—

महाराणा खेता की निधन तिथि | १६

महाराणा खेता मेवाड़ के महाराणा हमीर का पुत्र और महाराणा लाखा का पिता था। इनकी निधन तिथि में कुछ विवाद है। ओझा प्रभृति विद्वान् इसे वि. सं. १४३६ (१३८२ ई०) में हुई वर्णित करते है। श्री रामकर्ण आसोपा, श्री रेऊ और श्रीदत्त इसे वि. सं. १४६२ (१४०५ ई०) के आसपास [1] मानते है। इनकी मान्यता का आधार काल्पनिक तर्क है। इनका कहना है कि कुंभलगढ़ प्रशस्ति में राणा खेता द्वारा ईडर के राव रणमल को हराने का उल्लेख है। उक्त प्रशस्ति में यह भी वर्णित है कि राणा खेता ने ईडर के उस शक्तिशाली राजा रणमल को हराया, जिसने गुजरात के सुल्तान जफर को भी हरा दिया था। फारसी तवारीखों के अनुसार गुजरात के जफर और ईडर के राव रणमल के मध्य ३ युद्ध हुये थे। पहला युद्ध हि० सं० ७९६ (१३९४--९५ ई०) दूसरा हिजरी संवत् ८०१ (१३९८--९९ ई०) और तीसरा ८०३ (१४००--१४०१ ई० में हुआ था। इनमें दूसरे युद्ध में रणमल की विजय [2] हुई थी। यह घटना हि. सं ८०१

---

(१) श्री रामकर्ण आसोपा–हिस्ट्री आफ जोधपुर, पृ० २७६ का फुटनोट। भारतीय विद्या भवन बम्बई द्वारा प्रकाशित देहली सुल्तानेत, पृ० ३५९ रेऊ। मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० ७५

(२) बेले-हिस्ट्री आफ गुजरात पृ. ५०-५१, श्रीधर पंडित द्वारा विरचित रणमल काव्य (गुजरात ओरियन्टल सिरीज) में भी इसी प्रकार का वर्णन है।

या १३९८--९९ ई० में घटित होने से दत्त महोदय कल्पना करते हैं कि खेता ओर रणमल के मध्य युद्ध इसके पश्चात् हुआ [3] होगा। इसके साथ ही साथ वे यह भी कहते हैं कि मालवे के सुल्तान अमीशाह के साथ भी खेता का युद्ध होना प्रसिद्ध है, जो वि० सं० १४६२ (१४०५ ई०) तक जीवित था। अतएव अमीशाह की निधन तिथि को ही खेता की निधन तिथि मानी जानी चाहिए।

श्री दत्त का आधार काल्पनिक तर्क है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के रचनाकाल के लगभग ही विरचित किये गये सोम सौभाग्य [4] काव्य में

(३) कुंभलगढ़ प्रशस्ति का मूल श्लोक इस प्रकार है—

"माद्यन्माद्यन्महेभप्रखरकरहतिक्षिप्तराजन्ययूथो।
यं खानः पत्तनेशो दफर इति समासाद्य कुण्ठीबभूव॥
सोयं मल्लो रणादिः शककुलवनितादत्तवैधव्यदीक्षः।
कारागारे यदीये नृपतिशतयुते संस्तरं नापि लेभे॥ १९६ कु० प्र०
वीर श्रीरणमल्लमूर्जितशकक्ष्मापालगर्वान्तकं।
स्फूर्जद्गुर्जरमण्डलेश्वरमसौ कारागृहे वीवसत् ॥२३॥ की० प्र०

ईडर के राव रणमल्ल की वीरता में संदेह नहीं किया जा सकता है। समसामयिक जैन ग्रंथों में "संग्रामसंत्रासितनैक शाखी—शूरेषुरेखारणमल्ल भूपः", वर्णित है। रणमल्ल काव्य में उसका राजस्थान जीतना वर्णित है। सोम सौभाग्य काव्य में जो महाराणा कुंभा के शासन काल में विरचित किया गया था, के ७ वें सर्ग के श्लोक सं० ५ में भी प्रसंगवश ऐसा ही उल्लेख है।

(४) श्री वाचकोत्तमपदं खशरब्धिचंद्र संवत्सरे (१४५०) विगतमत्सर-
चित्तवृत्तेः। अब्दैः समस्य समभूत नखसमिताब्दे शाब्देन सन्मधुरिमातिशयेन तस्य ॥१४॥
श्री मेदपाद विकटावनिपुद्रतुल्ये विस्तीर्ण देवकुल संकुलमध्य भागे।
श्री ख्यात देवकुलपाटकपत्तने ते श्री वाचकाः समागमन् मुनिवृंद-युक्ताः ॥१६॥
श्री लक्ष भूमिपति षति मान्यवदान साधु श्री रामदेवसचिवोत्तम चृण्डमुख्याः। श्री मद्गुरोरभिमुख संमुखा महेभ्या जग्मु विभूषित देहदेशाः ॥१७॥ सोम सौभाग्य काव्य पंचमसर्ग

वि० सं० १४५० में ही मेवाड़ में महाराणा लाखा को शासक के रूप में वर्णित किया है। उस समय मेवाड़ राज्य का प्रधान रामदेव नवलखा था। इसने आचार्य सोम सुन्दरसूरि का देलवाड़ा में स्वागत किया था। उस समय राजकुमार चुंडा मुख्यमंत्री का कार्य करता था। इस ग्रंथ में वर्णित सारी घटनाएं वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ के महावीर जैन मंदिर की प्रशस्ति और 'गुरु गुण रत्नाकर काव्य" से मिलती हैं। सोम सौभाग्य काव्य में जब वि० स० १४५० में ही मेवाड़ में महाराणा लाखा को शासक के रूप में विद्यमान होना वर्णित कर दिया गया है, तब वि० स० १४६२ तक उसके पिता के जीवित रहने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

रामदेव नवलखा और इसके पुत्र सारंग और सहणपाल कई वर्षों तक मेवाड़ में प्रधान के पद पर रहे थे। रामदेव महाराणा खेता के समय से प्रधान था। करेड़ा के जैन मंदिर का वि० सं० १४३१ का विज्ञप्ति लेख इस [5] सम्बन्ध में द्रष्टव्य है। राणा लाखा ने इसे बहुत सन्मानित किया था। इसे जैन लेखों में "श्रीधर्मोत्कटमेदपाटसचिव श्रीरामदेवः" लिखा मिलता है। इसके और उसकी पत्नी मेला देवी के कई शिलालेख मिलते है। इसके पुत्र सहणा का उल्लेख महाराणा कुंभा के मुख्यमंत्री के रूप में वि० सं० १४९१ के लेख में है। इसके परिवार के अन्य सदस्यों का उल्लेख आवश्यक वृहद्वृत्ति की प्रशस्ति और करेडा के मंदिर के एक लेख में है। दूसरे पुत्र सारंग का उल्लेख वि. सं. १४९४ के नागदा को अद्भुतजी की मूर्ति के लेख में है। इसी प्रकार सोम सुन्दरसूरि के मेवाड़ से कई लेख मिले हैं। ये मेवाड़ में प्रथम बार वि० सं १४५० में आये थे। अतएव दोनों ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और सोम सौभाग्य काव्य में उल्लेखित घटनाओं की भी इससे पुष्टि होती है।

---

(५) वि० सं० १४४६ में इस विज्ञप्ति लेख की प्रतिलिपि कपड़े पर की गई थी,
सवत् १४४६ वर्षे श्री दीपोच्छव दिपने समर्थितमिदं ॥श्री॥ मूल विज्ञप्ति लेख में रामदेव का उल्लेखनीय वर्णन मिलता है यथा
"श्रीकरहेटाख्य श्रीपार्श्वनाथजिनचरणपरिचर्याप्राप्तसादवरेण सुधाः करेणेव सदवगुरुसंगमस्पृहयालुनापुराकृतसुकृतसञ्चयोदयदश वशीभूतराज्यप्रधानसाधुरामदेव श्रावक वरेण.........................'

इसके अतिरिक्त कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक १९६ एवं कीर्ति स्तंभ प्रशस्ति के श्लोक २३ (जो मूलतः फुटनोट सं० ३ में दिये हैं) में जो वर्णन है, उनका सार यही है कि वहां शत्रु को प्रबल घोषित किया गया है। यहां प्रशस्तिकारों का उद्देश्य खेता की वीरता बतलाने के लिये उनके द्वारा हराये गये शत्रुओं को भी अत्यन्त प्रबल वर्णित किया है। यह अंलकारिक वर्णन है। अगर यह समसामयिक होता तो उल्लेखनीय हो सकता था। ये दोनों प्रशस्तियां लगभग ५० वर्ष बाद की हैं। केवल मात्र इन दो श्लोकों के आधार पर ही हम खेता की निधन तिथि इतनी पीछे नहीं रख सकते हैं। सोम सौभाग्य काव्य में जब वि० सं० १४५० में लाखा को मेवाड़ का शासक वर्णित किया है फिर वि. सं. १४६२ के बाद तक उसके पिता खेता को शासक रूप में माना जाना असंगत है।

खेता की निधन तिथि वि० सं० १४६२ मानने से मोकल की जन्म तिथि वि० सं० १४६५-६६ के लगभग मानी गई है, जो किसी की स्थित में सही नहीं हो सकती। मोकल की पुत्री लालादे वि० सं० १४८० के पूर्व विवाह योग्य हो चुकी थी और गागरौण के शासक अचलदास खींची को ब्याही गई [6] थी। अतएव अगर मोकल की जन्म तिथि १४६५-६६ में मानते हैं, तब १४८० में कभी भी उसके विवाह योग्य पुत्री नहीं हो सकती। यह तभी संभव है, जब कि मोकल की जन्मतिथि वि० सं० १४५२ के पूर्व मानी जावे। यह लाखा के शासन-काल में जन्मा था।

अतएव इन सब घटनाओं पर विचार करते हुये यह मानना पड़ेगा कि महाराणा खेता की निधन तिथि वि० सं० १४६२ नहीं हो सकती। यह तिथि वि० सं० १४३९ के लगभग ही होनी चाहिये।

---

(६) मेरा लेख "महाराणा मोकल की जन्मतिथि" राजस्थान भारती ९, अंक ४ में प्रकाशित द्रष्टव्य है।

[वरदा में प्रकाशित]

पूर्व मध्यकालीन जैसलमेर १७

जैसलमेर क्षेत्र ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। हाल ही में हुये सर्वेक्षण के अनुसार लूणी नदी के तटवर्ती भागों में प्रस्तर कालीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं। सिंधुघाटी सभ्यता के अवशेष हडप्पा और मोहनजोदडों के अतिरिक्त बीकानेर में कालीबगा और सौराष्ट्र में लोथल नामक स्थान से भी मिल चुके हैं। अतएव आश्चर्य नहीं कि उत्खनन से इस क्षेत्र में भी उक्त सभ्यता के चिन्ह मिल जावें। स्मरण रहे कि मोहन जोदडों में ऊंट के अवशेष भी मिले थे। अतएव उनका भी इस रेगिस्तान से अवश्य सम्पर्क रहा होगा। पौराणिक काल में इस क्षेत्र में कौन शासक हुये थे इसका प्रामाणिक वर्णन उपलब्ध नहीं है।

विद्वानों की मान्यता है कि पश्चिमी राजस्थान का कुछ भाग जिसमें जैसलमेर भी सम्मलित है यूनानी राजा सेल्यूकस के राज्य के अन्तर्गत था एवं चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ संधि हो जाने पर यह मौर्य साम्राज्य का अंग बन गया। इस क्षेत्र पर जाट और मेवों का अधिकार लम्बे समय तक रहा था। ये दोनों एक दूसरे के पड़ोसी थे और बराबर एक दूसरे से संघर्ष किया करते थे। कभी जाट विजय प्राप्त करते तो कभी मेव।[1] यहीं से ये जातियां कालन्तर में राजस्थान के अन्य भागों और गुजरात में चली गयी प्रतीत होती है।

भाटियों का प्रारम्भिक इतिहास

जैसलमेर के भाटी राजा यदुवंशी हैं। इनकी मान्यता है कि द्वारिका से यादवों का एक दल काबुल की तरफ चला गया जहां से

(१) इलियट एण्ड डॉसन हिस्ट्री आफ इंडिया भाग १ पृ० ५२८–२९

७ वीं शताब्दी में वापस ये लोग भारत की तरफ लोट आये। ख्यातों में कई राजाओं के नाम मिलते हैं। वंश के आदि पुरुष का नाम राजा रज बतलाया जाता है। इसके पुत्र का नाम गज था : यह पंजाब के सीमा प्रान्त में शासन करता था। टॉड ने इसे कलियुगी संवत् ३००८ वैशाख सुदी ३ को होना माना है, परन्तु इसका कोई प्रमाणिक आधार नहीं है। इसका उत्तराधिकारी शान्ति वाहन नामक राजा हुआ। इसका भी पंजाब में श्यालकोट के आसपास अधिकार रहा माना जाता है। इसका पुत्र बलन्द हुआ। जिसके भट्टिक नामक पुत्र हुआ। वर्तमान भटिन्डा एवं हनुमानगढ़ (भटनेर) की स्थापना इसके द्वारा ही की गई[2] मानी जाती है जो कहां तक सही है कहा नहीं जा सकता है।

भाटियों का जैसलमेर क्षेत्र में बसना

राजा भट्टिक के पीछे ही भट्टिक संवत चला था। यह किसी बड़ी विजय का सूचक है। ख्यातों में मंगलराव के राजस्थान में आकर के बसने का उल्लेख किया गया है। किन्तु भट्टिक के ही इस क्षेत्र में बसना मानना युक्तिसंगत है क्योंकि किसी संवत का प्रचलन किसी साधारण घटना से नहीं, किसी विशेष विजय की परिचायक होना चाहिये। यह पश्चिमी भारत की विजय का सूचक ही माना जाना चाहिये। भट्टिक की तिथि वि० सं० ६८० ही ठीक प्रतीत होती है। इसका आधार यह है कि प्रतिहार राजा बाऊक के लेख में जो वि० स० ८९४ का है अपने ५ वें पूर्वज शीलुक के लिये देवराज भाटी को जीतने वाला लिखा है। देवराज भट्टिक से ७ वीं पीढ़ि में हुआ था। प्रत्येक पीढ़ि के लिये २० वर्ष लेवें तो शीलुक का समय वि० सं० ८१४ और इसी हिसाब से भट्टिक का समय ६८० के आसपास आ जाता है।[3]

भट्टिक के पीछे तन्नूजी उल्लेखनीय शासक हुये। तन्नूजी ने तन्नकोट में राजधानी[4] स्थापित की ऐसा ख्यातों में लिखा मिलता है। ऐसा लगता है कि अरब आक्रमणकारी जुनैद ने वल्ल मंडल (जैसलमेर

(२) टॉड-एनल्स एण्ड एंटिक्वीटिज भाग २ पृ १७३ से १९८

(३) गेहलोत राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ० ६५१

(४) नैणसी की ख्यात (रामनारायण दूगड) भाग २ पृ० २९२

क्षेत्र) पर भी आक्रमण किया था और यहां से मारवाड़ होकर उज्जैन[5] गया था। इसके आक्रमण के फलस्वरूप राजनैतिक परिवर्तन हुआ और इसी का लाभ उठाकर भाटियों ने शक्ति एकत्रित करली हो। देवराज भाटी शक्ति सम्पन्न हुआ था। राज्य विस्तार के मामले में प्रतिहार राजाशीलुक के साथ संघर्ष हुआ था जिस में इसकी हार हो गई थी[6]। ख्यातों में लिखा है कि इसके समय में राजधानी लोद्रवा स्थापित होगई थी।

देवराज के बाद सबसे उल्लेखनीय घटना मोहम्मद गजनी का आक्रमण है। जब मोहम्मद सोमनाथ पर आक्रमण करने जारहा था तब वह लोद्रवा के मार्ग से गया था। यहां के भाटी शासक ने उसका सामना भी किया था किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। उस समय बछराज नामक शासक हुआ था। इसका शासनकाल वि० सं० १०६५ से ११०० तक माना जाता है।

वस्तुतः उस समय भाटियों को यवनों के आक्रमणों का निरन्तर मुकाबला करना पड़ रहा था। पोकरण के दालकनाथ के मंदिर के वि० सं० १०७० के लेख में गायों की रक्षा[7] करते हुये स्थानीय गुहिल और परमारों के बलिदान का उल्लेख है। अतएव प्रतीत होता है कि भाटियों को भी उस समय इनसे अवश्य संघर्ष करना पड़ रहा होगा!

विजयराव लांजा

विजयराव लांजा एक बड़ा प्रबल शासक हुआ था। ख्यातों में विजयराव नाम के २ शासक हुये हैं। एक के भट्टिक संवत् ५०१, ५४३, और ५५२ के शिलालेख[8] मिले हैं। इसके विरुद भी परम भट्टारक महा•

---

(५) राजस्थान थ्रू दी एजेज भाग १ पृ० १११

(६) ततः शीलुको जातः पुत्रो दुर्व्वारविक्रमः
येन सीमा कृता नित्या स्त्र (त्र) वणीवल्लदेशयोः ॥
भट्टिकं देवराजयो वल्लमण्डलपालकं
निपात्य तत्क्षणं भूमो प्राप्तवान् (वांछ) छत्र चिन्हकम् ॥

(७) सरदार म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९३१ पृ ८

(८) रिसर्चर वर्ष III–IV पृ० ५० से ५३

राजधिराज परमेश्वर मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह एक प्रबल शासक था। इसका विवाह गुजरात के चालुक्य शासक जयसिंह की कन्या से हुआ था। तब इसे "उत्तर भट किवाड़" कहा गया था [9] जिसका अर्थ है कि भारत पर उत्तर की ओर से होने वाले आक्रमणों का दृढतापूर्वक मुकावला करना। उस समय की राजनैतिक परिस्थिति से विदित होता है कि कुमारपाल चालुक्य ने पश्चिमी राजस्थान तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसने नाड़ोल के चौहान शासक आल्हण को किराडू दे दिया किन्तु कुछ वर्षों बाद उसे हटाकर उक्त प्रदेश वापस सोमेश्वर परमार को लौटा दिया था।[10] सोमेश्वर के किराडू के वि० सं० १२१८ के शिलालेख में लिखा है कि चालुक्य शासक की आज्ञा से उसने तणकोट जीतकर उसे वापस वहां के अधिकारी को लौटा [11] दिया। तणकोट का भू-भाग उस समय भाटियों के राज्य में ही था। अतएव प्रतीत होता है कि जैसलमेर क्षेत्र पर कुमारपाल का कुछ समय के लिये अधिकार हो गया। उस समय या तो विजयराज शासक था अथवा इसका पिता। वहुत कुछ संभव है कि इसका पिता उस समय शासक रहा होगा। विजयराव ने चालुक्यों से संभवतः मुक्ति प्राप्त की और वास्तविक उत्तराधिकारी जैसल से राज्य छीन लिया। विजयराव का सबसे पहला शिलालेख भ सं ५४१ का मिला है।[12] जिससे प्रतीत होता है कि विसं १२२१ के पूर्व वह अवश्य शासक हो चुका होगा। भट्टिक संवत ५४१ वाले लेख में विजदासर

---

(९) भट किवाड उतराद रा भाटी झेलण भार।
वचन रखां विजराज रो समहर बांधा सार ॥
तोड़ा घड तुरकाण रा भोड़ा खांन मजेज।
दाखै अनमी भोजदे जादम करे न जेज ॥

(१०) अरली चौहान डाइने स्टिज पृ० १३२

(११) ग्लोरिज आफ मारवाड मे छपा लेख।

(१२) राजस्थान थ्रू, दी ऐजेज vol I पृ० २८६ फुटनोट २। रिसर्चर vol III एवं IV पृ० ५०। इ'डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५० पृ० २३१

तालाव बनाने का उल्लेख है जो आसानी कोट के पास है। दूसरे भाटिक संवत् ५४३ के लेख में चाहणी देवी के मन्दिर निर्माण का उल्लेख है। सं० ५५२ के लेख में विजयराज देव की पटरानी का उल्लेख [13] है। इसका उत्तराधिकारी भोज हुआ। इसके समय में मोहम्मद गोरी का आक्रमण हुआ। यह आबू जा रहा था मार्ग में इसने लोद्रवा पर आक्रमण कर भोज को हराया। संभवत लोद्रवा नगर को जीतकर इसे जैसल को दे दिया। किराडू से प्राप्त वि० सं० १२३५ के एक लेख में तुरुष्कों द्वारा मन्दिर को भग्न करने का उल्लेख [14] मिलता है जिससे भी इसकी पुष्टि होती है।

जैसलमेर नगर की स्थापना

जैसलमेर नगर के निर्माण की तिथि ख्यातों में वि० सं० १२१२ दी हुई मिलती है। डा० दशरथ शर्मा इस तिथि को अप्रमाणिक मानते हैं और यह घटना विसं० १२३४ के पश्चात्[14] रखते हैं, जो ठीक है। वस्तुतः मुस्लिम आक्रांताओं के निरन्तर आक्रमण के कारण सुरक्षित स्थान पर राजधानी स्थापित करने का विचार दृढ़ हुआ। नगर निर्माण का कार्य जैसल के पुत्र शालिवाहन के समय भी चलता रहा। इसका सबसे प्राचीतम उल्लेख खरतरगच्छ पट्टावली में है जहां १२४४ वि. के एक वर्णन में अन्य नगरों के साथ इसका भी नाम है [15]जैसलमेर भंडार में संगृहीत वि.सं. १२८५ की कृति धन्य शाली भद्र चरित में इस नगर का नाम दिया है जिससे प्रतीत होता है कि नगर निर्माण के शीघ्र बाद ही जैन धर्म का केन्द्र रहा होगा। [16] ऐसा कहा जाता है कि शालिवाहन

---

(१३) ग्लोरिज आफ मारवाड़ में छपा लेख।

(१४) राजस्थान थ्रू दी ऐजेज vol i पृ. २८५। रिसर्चर vol III एवं IV पृ. ५२

(१५) युग प्रधान गुर्वावली पृ. ३४

(१६) तदाज्ञया सद्गुण सर्वदेवाचार्यैः समं जेसलमेरुदुर्गे। स्थितो निदेशा स्व परोपकार हेतोः समाधि मनसोऽभिलाष्यम् (वि. सं. १२८५ में पूर्ण भद्र लिखित धन्य शालो भद्र चरित्त ह० ग्रंथ सं. २६० जैसलमेर भंडार)

को भाटियों के साथ संघर्ष हुआ था। इसकी मृत्यु खिज्रखां वल्लोच के साथ युद्ध करते हुए हुई थी। इसके बाद उसका पुत्र वैजल उत्तराधिकारी हुआ जो केवल २ मास तक ही शासक रहा। इसे हटाकर इसके काका केल्हण ने राज्य ले लिया। केल्हण के बाद चाचगदेव अधिकारी हुआ। इसी समय[17] कर्ण और जैतसिंह शासक हुये जो खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार वि. सं. १३४० में और १३५६ में क्रमशः शासक के रूप में विद्यमान थे।[18] कर्ण के बाद लखनसेन पुण्यपाल जैत्रसिंह और मूलराज नामक शासक हुये। ख्यातों में लखनसेन को गद्दी से उतारने का वर्णन मिलता है।

पहला और दूसरा शाका

इन आक्रमणों का उल्लेख फारसी तवारीखों में उपलब्ध नहीं है, किन्तु नैणसी के वृतान्त के अनुसार पहला आक्रमण अल्लाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में हुआ था।[19] पहले कमालुद्दीन को लगाया किन्तु उसे जब सफलता नहीं मिली तो उसने मलिक कफूर को इस कार्य के लिये नियुक्त किया। उसने कमालुद्दीन की राय के अनुरूप घेरा नहीं डालकर सीधा दुर्ग पर आक्रमण किया इसके फलस्वरूप उसे भी सफलता नहीं मिली। सुल्तान ने पुनः कमालुद्दीन को ही लगाया जिसे ८०,००० सैनिक दिये। इस विशाल सेना के सामने स्थानीय राजपूतों की शक्ति नगण्य-सी थी। अतएव जैसलमेर वालों की हार हुई। मूलराज और रतनसिंह वीरगति को प्राप्त हो गये। अब प्रश्न उठता है कि फारसी तवारीखों में इस आक्रमण का वर्णन क्यों नहीं मिलता है? यह अवश्य विचारणीय है। खजाइन उल फतुह आदि कृतियां वस्तुतः समकालीन होते हुये भी सुल्तान के राज्य की तरफ से तैयार की हुई

---

१७. "सकलसैन्यपरिवारपरिकलितसंमुखायातप्रमुदित श्रीकर्णमहानरेन्द्राणां श्रीजिनप्रबोधसूरिमुनीन्द्राणां श्रीजैसलमेरौ सं. १३४० फाल्गुनचतुर्मासके महता विस्तरेण प्रवेशकमहोत्सवः समपनीपद्यत।"

१८. सं. १३५६ राजाधिराज श्री जैत्रसिंह विज्ञप्तया मार्गशीर्षसितचतुर्थ्यां श्रीजैसलमेरौ श्री पूज्याः समायाता;।"

१९. नैणसी की ख्यात भाग २ पृ. २८८ से २९७

आफिसियल हिस्ट्री नहीं है। यह कार्य तो वस्तुतः कवीमद्दान का किया गया था जिसने विस्तृत रूप से फतहनामा के नाम से ऐतिहासि ग्रन्थ तैयार किया था जिसका उल्लेख ऊपर पद्मनी वाले लेख में किया जा चुका है।

डा० दशरथ शर्मा ने प्रथम बार इस आक्रमण की ऐतिहासिकता पर प्रकाश[20] डाला था। उन्होंने भट्टिक संवत पर एक विस्तृत लेख भी प्रकाशित कराया है। इसमें भट्टिक संवत के शिलालेखों पर विस्तार से भी प्रकाश डाला गया है। प्रसंगवश भट्टिक सं० ६८५ (१३६५ वि.) के लेख में गायों और स्त्रियों की रक्षा करते हुए कई वीरों की मृत्यु[21] का उल्लेख है। अतएव आपकी मान्यता है कि यह घटना निसंदेह अलाउद्दीन के उक्त आक्रमण से ही सम्बन्धित है। डा० दशरथ शर्मा की इस मान्यता को प्रायः सब ही विद्वान् ठीक मानते हैं। जैसलमेर के जैन मंदिरों के शिलालेखों के प्रसंगों पर भी आपने अपने लेखों में ध्यान दिलाया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के वि. सं. १४७३ के लेख की पंक्ति ४ में स्पष्टः रूप से जैसलमेर पर मुसलमानों के आक्रमण का उल्लेख है।[22] इसी प्रकार सम्भवनाथ मन्दिर के वि. सं. १४९७ के लेखों में भी प्रसंगवश इसका उल्लेख है। वि. सं. १४७३ वाले लेख में रतनसिंह के पुत्र घटसिंह द्वारा जैसलमेर दुर्ग को मुसलमानों द्वारा लेने का वर्णन है।[23] संभवनाथ वाले लेख के अनुसार

---

२०. इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XI पृ. १४९। राजस्थान थ्रू दी ऐजज vol i पृ. ६८२।

२१. इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५९ ले. नं. १८ से २१।

२२. यत्प्राकारवरं विलोक्य बलिनो म्लेच्छावनीपा अपि, प्रोद्यत्सैन्य सहस्र दुर्ग्रहमिदं गेहं हि गोस्वामिनः। भग्नोपायबला वदंत इति ते मुंचंति मानं निजं तत् श्री जेसलमेरु नाम नगरं जीयाज्जननायकं। पार्श्वनाथ मन्दिर का लेख पंक्ति सं. ४।

२३. श्री रतनसिंहस्य महीधरस्य बभूव पुत्रो घटसिंह नामा।

यह दूदा के बाद ही शासक हुआ था।[24] अतएव प्रतीत होता है कि जैसलमेर पर संभवतः २ आक्रमण हुये थे। पहला रतनसी के समय अलाउद्दीन का और दूसरा दूदा के समय हुआ। दूदा केल्हण का प्रपौत्र था। डा. दशरथ शर्मा की मान्यता है कि इस के समय आक्रमण तुगलक शासकों की ओर से हुआ था।[25] संभवतः फिरोजशाह तुगलक उस समय शासक रहा हो। दूदा ने रतनसी की मृत्यु के बाद दुर्ग पर मुसलमानों को हराकर अधिकार किया था। यह घटना वि. सं. १३८३ के पूर्व अवश्य हो चुकी थी क्योंकि खरतरगच्छ पट्टावली में वहां स्थानीय शासकों का उल्लेख है।[26] ख्यातों में लिखा मिलता है कि राठोड़ों ने भी कुछ समय के लिये दुर्ग अपने अधिकार में रक्खा था। दूदा के बाद जब दुर्ग मुसलमानों के हाथों चला गया तो उसके वंशजों, के अधिकार में यह नगर फिर नहीं आ सका। यही कारण है कि प्रशस्तियों और कई ख्यातों में उसका नाम नहीं है। रतनसी के पुत्र घटसिंह ने नगर का उद्धार किया और फिर से अपना अधिकार यहां स्थापित किया।[27] इसके सम्बन्ध में नैणसी ने एक लम्बी कहानी दी है जिसके अनुसार घटसिंह ने एक लम्बे समय तक बादशाह की सेवा में रह कर राज्य प्राप्त किया था।[28] इसकी मृत्यु भट्टिक संवत ७३८ मिगसर बुदि ११ बुधवार को हुई थी। इसके साथ इसकी

यः सिंहवन् म्लेच्छगजान् विदार्य बलादलाद्वप्रदरीम रिम्यः ॥७॥
उक्त लेख पंक्ति ५।

२४. "तस्तिन् यादववंशे। राउल श्रीजइतसिंह मूलराज, रतनसिंह राउल श्री दूदा राउल श्री घटसिंह.........."

सम्भवनाथ मन्दिर का लेख पंक्ति सं० ७।

२५. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XI पृ. १४९। राजस्थान थ्रू दी ऐजेज vol I पृ. ६८३-४

२६. श्री जैसलमेरमहादुर्गमध्य निवासी सामान्यनराजव्यय महाज्ञान दैत्योत्पाटनाय श्री राजलोक-नगरलोक महामेलापकेन...."

२७. उपरोक्त फुटनोट २३

२८. नैणसी की ख्यात भाग २ अध्याय २४

कई राणियां सती हुई थीं। इन राणियों में सोढी लचुला दे, देवड़ी श्री रतना दे, जोहियानी, तारंगदे आदि के नाम[29] हैं। वहुत कुछ संभव है कि उसके ये विवाह जैसलमेर पर अधिकार कर लेने के वाद ही हुये हों।

घटसिंह के उत्तराधिकारी

घटसिंह के वाद मूलराज का पौत्र और देवराज का पुत्र केहर शासक हुआ था। शिलालेखों में देवराज का गायों की रक्षा करते हुए मृत्यु होना लिखा मिलता है।[30] यद्यपि सम्भवनाथ मंदिर के लेख की ७ वीं पंक्ति में घटसिंह के वाद देवराज का उल्लेख करते हुये उसके लिये लिखा है कि "मूलराज पुत्र देवराज नाम्नो राजानोऽभूवन्" लिखा है किन्तु यह देवराज वस्तुतः शासक नहीं हो सका था। घटसिंह के भ० सं० ७३८ के सती के लेख मिले हैं। अगले वर्ष केसरी को शासक के रूप में उल्लेखित किया है। भ०सं० ७६९ (विसं १४१९) का लेख तेमदराय की पहाड़ी के पास स्थित तालाव पर लगा हुआ है) जिसमें केसरीसिंह को शासक के रूप में उल्लेखित किया हुआ है[31]। अतएव घटसिंह की मृत्यु के वाद केहरी ही उत्तराधिकारी हुआ था। यह वड़ा प्रतापी शासक था। भ० सं० ७३९ के लेख में उसके कई विरूद दिये। इसने लम्बे समय तक राज्य किया था एवं अपने पुत्र केल्हण को राज्याधिकार से वंचित कर दिया था[32]। जिसके पुत्र चाचा का एक

---

(२९) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९४९ पृ २३० लै० सं० २४ से ३०

(३०) सुनंदनत्वाद्विधुर्धर्न, तत्वाद् गोरक्षाणाम् श्रीदसमाश्रित तरगात् श्रीमूलराजक्षितिपाल सूनुर्नुर्यथार्थ नामजनि देवराजः॥८॥
पार्श्वनाथ का मंदिर का लेख पं० ६ और ७

(३१) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५९ ले सं ।

(३२) ऐसी मान्यता है कि इसने अपनी शादि आपके पिता की इच्छा के विरुद्ध करली थी। अतएव इसे राज्याधिकार से वंचित कर दिया था।

लेख विसं० १४७५ का बीकानेर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसे डा० दशरथ शर्मा ने राजस्थानी पत्रिका में प्रकाशित कराया है। केहरी का उत्तराधिकारी लक्ष्मणसी हुआ था। इसका राज्यारोहण ख्यातों में विसं १४५१ बतलाया जाता है जो निसंदेह गलत है। केहर की मृत्यु विसं० १४५३ में हुई थी। इनकी मृत्यु पर राणी कपूरदे सती हुई थी। चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर इसी लक्ष्मण के समय बना था। इस मन्दिर में २ शिलालेख लग रहे हैं। इन प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि निर्माण के समय इस मंदिर का नाम "लक्ष्मण विहार" रक्खा गया था।[33] इसका निर्माण कार्य विसं. १४५९ में शुरू किया गया था जो लगभग १४ वर्ष तक चला और वि सं० १४७३ में पूर्ण हुआ। साधु कीर्तिराज ने इसकी प्रशस्ति की रचना की और वाचक जयसागर गणि ने इसे संशोधित किया और कारीगर धन्ना ने इसे खोदा। ओसवाल वंशीय रांका गोत्र के सेठ जयसिंह ने इसे बनाया। दूसरे लेख में रांका परिवार वालों का सविस्तार से उल्लेख है। इस परिवार वालों ने वि०सं० १४२५ में तीर्थयात्रा, वि० १४२७ में प्रतिष्ठादि महोत्सव और वि०सं० १४३६ और वि०सं० १४४९ में शत्रुञ्जय और उज्जयंत तीर्थों की यात्रायें की थी।[34]

मंदिर का निर्माण सागरचन्द्र सूरि ने जिनराज सूरि की सम्मति से जो खरतरगच्छ के थे, शुरू करवाया था। इस सम्बन्ध में ऐसा वर्णन मिलता है कि क्षेत्रपाल की मूर्ति को हटा देने से उसने अपने प्रभाव से जिनवर्द्धन सूरि का चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य) को भंग करा दिया। समस्त खरतरगच्छ संघ ने एकत्रित हो करके नवीन व्यवस्था की थी।[35] जैसलमेर चैत्य परिपाटियों में इस मंदिर की कई प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है।

---

(३३) श्रीलक्ष्मणविहारोयमिति विख्यातो जिनालयः। श्रीनंदीवर्द्धमानश्च वास्तुविद्यानुसारतः ॥२५॥ श्रीपार्श्वनाथमंदिर का लेख ॥

(३४) जैन लेख संग्रह भाग ३—ले० सं० २११३ पंक्ति सं० ८, ९, १३ और २२.

(३५) उपरोक्त भूमिका पृ १५.

मारवाड़ की ख्यातों में इसका रावरणमल के साथ संघर्ष होना वर्णित है। वस्तुस्थिति जो मारवाड़ की ख्यातों में वर्णित है एक पक्षीय है। फलोदी में वि.सं. १४८६ का शिलालेख लग रहा है इससे प्रकट होता है कि यह क्षेत्र जो कुछ समय पूर्व राठोड़ों के पास था भाटियों ने हस्तगत कर लिया था [३६]। इस प्रकार लक्ष्मण ने राज्य विस्तार कर कई परगने हस्तगत किये थे।

लक्ष्मणसी का उत्तराधिकारी वैरसी हुआ। व्यासजी ने इसका राज्यरोहण संवत् १४९६ दिया है किन्तु यह गलत है। वि० सं० १४९३ के इसके शासनकाल के शिलालेख मिल चुके हैं [३७]। अतएव इसके राज्यरोहण की तिथि वि. सं० १४८६ से १४९३ के मध्य होना चाहिए। सम्भवनाथ का जैन मन्दिर और लक्ष्मीनारायण वैष्णव मंदिर इसके शासन काल में पूर्ण हुए थे। इसकी मृत्यु वि. सं० १५०५ वैशाख सुदि १३ सोमवार को हुई थी। [३८] एक अन्य लेख में यह तिथि चैत्र सुदि १३ दी है। इसके उत्तराधिकारी चाचिगदेव का वि सं० १५०५ का शिलालेख संभवनाथ मन्दिर की प्रसिद्ध तपपट्टिका पर लग रहा है। [३९] इस प्रकार वैरसी का शासनकाल २० वर्ष लगभग तक रहा प्रतीत होता है। संभवनाथ मंदिर में २ शिलालेख-वि० सं० १४९७ के लगे रहे हैं। [४०] इन लेखों में जैसलमेर के राजाओं की वंशावली के बाद खरतर विधिपक्ष की पट्टावली दी हुई है। इसके बाद चोपड़ा-वंशी श्रेष्ठियों की वंशावली दी हुई है। इस परिवार के हेमराज आदि ने वि. सं० १४९४ में मंदिर की रचना प्रारम्भ की थी और वि. सं० १४९७ में उसकी प्रतिष्ठा हुई थी[४१]। इस प्रतिष्ठा के समय ३०० प्रति-

(३६) जरनल बंगाल ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी वर्ष १९१५ पृ.९३
(३७) जैन लेख संग्रह भाग ३ ले० सं० २११४
(३८) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५९ ले. सं. पृ० ९३ ३७ और ३८
(३९) जैनलेख संग्रह भाग ३ ले० सं० २१४४।
(४०) उपरोक्त लेख सं० २१३९।
(४१) "ततः संवत् १४९७ वर्षे कंकुमपत्रिकाभि; सर्वदेशवास्तव्य परा सहस्र श्रावकानामभ्य प्रतिष्ठा महोत्सव; सा० शिवाद्यैः

माओं की एक साथ प्रतिष्ठा हुई थी। महारावल वेरीसिंह स्वयं भी इस कार्य में सम्मिलित हुआ था। प्रशस्ति की रचना सोमकुवर नामक आचार्य ने की थी। भानुप्रभ गणि ने पत्थर पर इसे लिखा और शिवदेव सिलावट ने उसे खोदा। इस राजा के शासन काल में प्रतिलिपि की गई श्री कल्पसूत्रसंदेहविषौषधिवृत्ति मिली है। इसके शासनकाल की विशेष उल्लेखनीय घटना जैसलमेर में ज्ञान भंडार की स्थापना है। इसने मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार राव जोधा को भंडोर का राज्य दिलाने में सहायता की थी।

वैंरीसिंह का उत्तराधिकारी चाचिगदेव हुआ। इसके समय का सबसे पहला लेख वि. सं० १५०५ संभवनाथ मंदिर की तप पट्टिका पर है। यह लेख बहुत लम्बा है। इसके ठीक ऊपर" रत्नमूर्तिगणि वा० जिनसेनगणि। पं० हर्ष भद्रगणि। मेरु सुन्दर गणि। जयाकर गणि जीवदेव (गणि)" उत्कीर्ण है। यह पीले पत्थर पर खुदा हुआ है। इसके शिरोभाग के दोनों अंश कुछ टूटे हुए हैं। इसकी लम्बाई २ फीट १० इंच और चौडाई १ फुट १२ इंच है। इसमें वांये तरफ २४ तीर्थंकरों के च्यवन जन्म दीक्षा और ज्ञान चार कल्याणक तिथियां कार्तिक वुदि से आश्विन सुदि तक दी हुई है। दाहिनी तरफ के भाग में तपके कोठे बने हुये हैं। नीचे ही नीचे १४ पंक्तियों का लेख खुदा हुआ है। इसमें खरतरगच्छ के उद्योतन सूरि से जिनभद्र सूरि तक के आचार्यों के नाम दिये हैं। पंक्ति सं० २ में शंखवाल गोत्र के श्रेष्ठि पाता द्वारा तप पट्टिका बनाने का उल्लेख है।[42] आबू में भी ऐसी तप पट्टिका बनी हुई है। वि. सं० १५०९ में चन्द्रप्रभ स्वामी का मन्दिरवीदा भणशाली ने बनवाया था।

जैसलमेर दुर्ग में वि०स० १५१२ का लेख लग रहा है इसमें अमर कोट के शासकों को हराने का उल्लेख है लेकिन इस लेख

कारितः, तत्र च महति श्री जिनभद्रसुरिभिः श्री संभवनाथ प्रमुखबिंवानि ३३२ प्रतिष्ठानि"

(४२) जैन लेख संग्रह भाग ३ ले, सं० २१४४

की तिथि गलत है। यह घटना चाचिगदेव के उत्तराधिकारी के शासन काल में घटित हुई थी। वि. सं० १५१८ के चार लेख पार्श्वनाथ मंदिर के रंग मंडप में लग रहे हैं।[43] उसमें नन्दीश्वर पट्ट वनाने का उल्लेख है, उसके अतिरिक्त और कुछ मूर्तियों के लेख भी इसी संवत् के वहां लग रहे हैं।[44] संभवनाथ मंदिर में भी विसं० १५१८ का ही लेख उपलब्ध है जिसमें चोपडा गोत्र के श्रेष्ठि द्वारा शत्रुञ्जय और गिरिनार पट्ट स्थापित करने का उल्लेख है।[45] इस चाचिगदेव की मृत्यु किसी शत्रु के साथ युद्ध करते हुई थी। टॉड ने मुलतान के जंघा राजा के साथ युद्ध करते हुये मरना लिखा है। किन्तु यह गलत है। वास्तव में इसकी मृत्यु सोढों के साथ युद्ध करते हुये हुई थी। यह घटना विसं० १५२४ के पूर्व हो गई थी।

उसका उत्तराधिकारी महारावल देवकर्ण हुआ। इसने राज्य गद्दी पर वैठते ही सोढों से अपने पिता की मृत्यु का वदला लिया। मारवाड़ और उत्तरी राजस्थान में इस समय बडा परिवर्तन हो रहा था। राठौड शक्ति एकत्रित कर रहे थे और वीकानेर राज्य की स्थापना भी इसी समय हुई थी। रावल केहर के वंशज कलिकर्ण ने वीकानेर पर आक्रमण किया। जैसलमेर के इतिहास के अनुसार गढ़ के किवाड़ और तराजू लूट में लाये। कहा जाता है कि इसे बलोचों के विद्रोह दवाने में अधिक शक्ति लगानी पड़ी। शिव तहसील के भाग के लिए जोधपुर वालों से भी संघर्ष हुआ था। पोकरण और फलोधी जोधपुर वालों ने ले लिये। इसका शासनकाल सांस्कृतिक दृष्टि से वड़ा महत्वपूर्ण है। इस समय कई ग्रंथ लेखन और महत्वपूर्ण निर्माण कार्य हुये। जैसलमेर भंडार में उपलब्ध निम्नांकित कुछ ग्रंथ उल्लेखनीय हैं।[46]
(१) कलापक व्याकरण वृत्ति। इस ग्रंथ की प्रतिलिपि विसं० १५२६ माघ सुदी सप्तमी को पूर्ण कीगई। प्रशस्ति में खरतरगच्छ के जिनदत्त

(४३) उपरोक्त ले. सं० २११६ से २११६
(४४) जैन सत्यप्रकाश वर्ष ८ अंक ४ पृ. १०६
(४५) जैन लेख संग्रह भाग ३ लेसं० २१४०
(४६) जैसलमेर नाड़पत्रीय भंडार सूची पृ० २०६

जिनचंद्र जिनेश्वर जिनधर्म और जिनचन्द्र नामक साधुओं का उल्लेख है। इसे देवभद्र नामक एक साधु ने पूर्ण किया था।

(२) त्रिशष्टि शलाका पुरुषचरित्र महाकाव्य (दशमपर्व)। इसमें ११३ पत्र हैं और इसकी प्रतिलिपि भी वि.सं. १५३६ में उक्त देवभद्र ने पूर्ण की थी।

(३) कपूर मंजरी नाटिका। वि० सं० १५३८ माघ शुक्ला १५ को उक्त देवभद्र ने इसकी प्रतिलिपि की थी। इसकी एक अन्य और प्रति है जिर की भी उक्त आचार्य द्वारा जो विसं. १५३८ श्रावण सुदि ७ को प्रतिलिपि की गई।

वि. सं. १५३६ में हुआ निर्माण कार्य उल्लेखनीय है।[47] उक्त संवत में ऋषभदेव का मंदिर शान्तिनाथ का मंदिर और अष्टापद देव मंदिर वने थे। असंख्य मूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई थी। मूर्तिलेख अधिकांशतः गणधर चोपड़ा परिवार के हैं। देवकर्ण के पुत्र जैत्रकर्ण जैत्रसिंह या जयतसिंह की सबसे पहली ज्ञाततिथि भगवती सूत्र ग्रंथ की विसं. १५५८ की प्रशस्ति[48] है। अतएव इसके पिता देवकर्ण की मृत्यु उक्त संवत के पूर्व अवश्य हो गई थी। इस जैत्रकर्ण के शासनकाल के शिलालेख भट्टिक संवत ८८२ (१५६२ वि.) के मिले[49] हैं एक लेख में राणी अनारदेवी की मृत्यु का उल्लेख है जो देवकर्ण की महारानी और राणा भोमसिंह की पुत्री थी। दूसरा लेख घडसीसर तालाब जैसलमेर में लग रहा है।

बीकानेर के इतिहास राठौड़ में राव लूणकर्ण का जैसलमेरपर आक्रमण करना उल्लेखित[50] है। बीकानेर वाले इसमें अपनी विजय और भट्टिवंश प्रशस्ति में जैसलमेर वालों की विजय होना बीकानेर के किवाड़ लाना

---

(४७) जैन लेख संग्रह भाग ३ ले० सं २१२०–२१, २१५३–५४, २३५८ २३६६, २३६६, २४०२–४

(४८) जैसलमेर ताड़पत्रीय भंडार सूची पृ. १३

(४९) इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली १६५६ पृ. २३२ ले. सं. ४१ और ४२।

(५०) ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास पृ ११५–११६

वर्णित किया गया है। [51] इसकी मृत्यु विसं. १५८५ में हुई थी।

जैत्रसिंह के पश्चात् लूणकर्ण शासक हुआ था। व्यासजी ने जैसलमेर के इतिहास में इसके पूर्व इसके ज्येष्ठ भ्राता कर्मसी के शासक होने का उल्लेख किया है किन्तु यह गलत प्रतीत होता है। लूणकर्ण का युवराज के रूप में विसं. १५८१,१५८३ और १५८५ के लेखों में स्पष्टत; उल्लेख किया हुआ है। [52] यह एक महत्वपूर्ण शासक था। इसने जोधपुर और बीकानेर के संघर्ष का लाभ उठाकर फलोदी पोकरण का भाग छीन लिया था जिसे मालदेव ने वापस हस्तगत कर लिया। इस समय भारत में बड़े परिवर्तन हो रहे थे। खानवा युद्ध के बाद मेवाड़ की शक्ति कमजोर होती जारही थी। गुजरात के सुल्तान के आक्रमण से वहां की स्थिति और विषम होगई। हुमायूं शेरशाह से हार भागकर मालदेव की सहायता का प्रयास कर रहा था। वह फलोदी होकर जैसलमेर राज्य की सीमा के पास स्थित देरावर गांव में पहुंचा था और वहां से जोगीतीर्थ तक गया था किन्तु कोई निश्चित निर्णय नहीं लिया जासका और उसे वहां से वापस अमरकोट लौट जाना पड़ा। जैसलमेर के शासक ने स्पष्ट रूप से कोई सहयोग नहीं दिया।

इस समय राठोड़ मालदेव शक्ति एकत्रित कर रहा था। इसका एक विवाह जैसलमेर की राजकुमारी उमादे के साथ भी हुआ था। यह राजकुमारी जीवन भर तक मालदेव से रुठी रही। शेरशाह के आक्रमण के समय परस्पर कुछ बात चली थी, किन्तु ईसरदास कवि द्वारा उसे प्रोत्साहित करने पर बात रुकी ही रही [53]

---

(५१) श्रीबीकानगराधिपतिर्बलवान् श्री लूणकर्ण; प्रभुः
सेहे यस्य पराक्रमं न महतो विद्रावितः संगरात् ॥
उद्वास्यास्य पुरं कपाटयुगलं चानीय तत् पत्तनात।
संस्थाप्याशु निजेपुरे यदुपतिः प्रीतोभवद् विक्रमी ॥४८॥ भट्टिवंश महाकाव्य

(५२) जैन लेख संग्रह भाग ३ ले. सं. २१५४, ५५

(५३) ईसरदास ने निम्नांकित दोहा कहा था अतएवं उमादे गर्वित होकर कोसाना मुकाम पर ही रहर गई—

तीसरी शाखा

वि.सं. १६०७ में कंधार का अमीर अलीखां राजच्युत होकर जैसलमेर पहुँचा। रावल ने उसे राज्याश्रय दिया। इसके मनमें धोखा था। इसने एक दिन महारावल से कहलाया कि उसकी वेगमें महारानियों से मिलना चाहती हैं। उसने डोलियों में स्त्रियों के स्थान पर स्त्रीभेष धारी सशस्त्र सैनिक भेजे। अन्तःपुर के प्रथम द्वार पर ही भेद खुल-गया और घमाशान युद्ध में ४०० सैनिक और कई भाई वेटे काम आये यह घटना वैशाख सुदि १४ सं. १६०७ को सम्पन्न हुई।

लूणकर्ण का उत्तराधिकारी मालदेव था। जोधपुर के राठौड मालदेव से इसका संघर्ष चलता रहा था। एक बार पोकरण के मामले में संघर्ष हुआ था। दूसरी बार वाडमेर के रावत भीभ के मामले में राठौड मालदेव ने जैसलमेर पर आक्रमण किया था और रावल से पेशकसी लेकर वापस लोटा। मालदेव की मृत्यु वि०सं० १६१९ में हुई थी। उसके शासन काल में साहित्यिक रचनायें हुई थी।

जैसलमेर मध्यकाल में सांस्कृतिक दृष्टि से वड़ा महत्वपूर्ण रहा है यहां के ताडपत्रीय ग्रंथ भंडार जगद्विख्यात हैं। यहां ग्रंथ भंडार की स्थापना जिनभद्र सूरि ने कराई थी। समय सुन्दरकृत अष्ट-लक्षी प्रशस्ति के अनुसार जिनभद्र द्वारा जैसलमेर जालोर देवगिरी नागौर पाटण आदि स्थानो में विशाल भांडागार स्थापित[५४] किये थे। यहां गुजरात से वड़ी मात्रा में ग्रंथ लाकरके सुरक्षित किये गये थे। कई ग्रंथों की प्रशस्तियों में "श्रीखरतरगच्छे श्री जिनदत्त-सूरि संताने श्री जिनराजसूरिशिष्यश्रीजिनभद्रसुरिवरोपदेशाल्लिखितेयं पुस्तिका

मान रखे तो पीव तज पीव रखे तज मान।
दोय गयंदन वंध ही एकण खंभे ठाण ॥

(५४) श्रीमज्जेसलमेरूदुर्गनगरे जावालपुर्यां तथा,
श्रीमद् देवगिरौ तथा अहिपुरे श्रीपत्तने पत्तने।
भाण्डागारम वीभरद् वरतरैर्नानारविधैः पुस्तकैः
सः श्री मज्जिन भद्रसुरि सु गुरु र्भाग्याद् गुतोऽभूद भुवि ॥
जैनसत्यप्रकाश वर्ष १६ अंक १ पृ. १८

मिलता है। इससे भी इसकी पुष्टि होती है। यहां मुख्य भंडार किले पर स्थित बडा भंडार है। इसमें ताडपत्रीय ग्रंथ वहुत वड़ी संख्या में हैं। दूसरा भंडार तपागच्छ उपाश्रय में है। कुछ ग्रंथ थीरुशाह भंडार और यतिजीके संग्रह में भी हैं। इनके अतिरिक्त शहर में आचार्यगच्छीय भंडार वृहत् खरतरगच्छीय भंडार, लूंकागच्छीय भंडार आदि भी हैं। इन ग्रंथों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के लिये श्री वूलर और हर्मन जेकोवी यहां सन् १८७४ में गये थे। इनके वाद भंडारकर ने कुछ वर्णन प्रस्तुत किया था। ग्रंथों का विस्तृत वर्णन प्रथम वार श्री दलाल ने प्रस्तुत किया था। किन्तु ग्रंथ के प्रकाशन के पूर्व उनकी मृत्यु होगई। इस कार्य को लालचंद भगवानदास गांधी ने पूरा किया था। इनका कहना है कि दलाल ने लम्बी २ प्रशस्तियों को छोड़ दिया था। अब जयन्तविजयजी ने एक विस्तृत सूची तैयार करली है जो लगभग छपकर तैयार भी हो गई है।

दुर्ग और शहर में असंख्य शिलालेख और कई उल्लेखनीय मंदिर हैं। दुर्ग में मुख्य रूप से ८ जैन मंदिर और लक्ष्मीनारायण और महादेव के प्रसिद्ध मंदिर हैं। जैन मंदिरों में पार्श्वनाथ का मंदिर मुख्य है। कला की दृष्टि से ये मंदिर वडे उल्लेखनीय हैं। शहर में कई हवेलियां स्थापत्य कला की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

पूर्वी राजस्थान के के गुहिलवंशी शासक | १८

पूर्वी राजस्थान में नगर चाटसू आदि के आसपास दीर्घ काल तक (७वीं से ११ वीं शताब्दी तक) गुहिल वंशी शासकों का अधिकार रहा था। ये शासक भर्तृपट्ट वंशी गुहिल थे। इनके विस्तृत इतिहास जानने के लिये वि० सं० ७४१ का नगर[1] का शिलालेख, १० वीं शताब्दी का चाटसू के गुहिल वंशी शासक वालादित्य[2] का शिलालेख धौड़ का वि सं० ८८७ का शिलालेख आदि साधन[2A] प्रमुख हैं।

नगर गांव उणियारा के पास स्थित है। इसका प्राचीन नाम कर्कोट नगर था। इस नगर का विस्तृत सर्वेक्षण कार्लायल महोदय ने किया था और यहां बड़ी संख्या में मालवगण के सिक्के एकत्रित किये थे। इस से पता चलता है कि यह नगर उस समय भी श्रीसम्पन्न रहा होगा। यद्यपि इन सिक्कों के काल निर्धारण के सम्बध में मत भेद है किन्तु यह निश्चित है कि यह नगर दीर्घ काल तक मालवों से सम्बन्धित रहा था। मालवों के दीर्घ काल के इस क्षेत्र पर अधिकार करने के कारण इस नगर को यहां से प्राप्तविसं. १०४३ के एक शिलालेख[3] में मालव नगर ही कहा गया है। मालवों ने यहां से बढ़ कर वर्तमान मालवा प्रदेश पर अधिकार किया[4] था। गुप्त शासकों से इनका संघर्ष हुआ था। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख में इसका

(१) भारत कौमुदी पृ १७३-७६
(२) एपि ग्राफि आ इंडिका volXX पृ १०-१५
(२A) उपरोक्त vol XX पृ १२२-१२५
(३) भारत कौमुदी पृ २७१-७२
(४) वरदा वर्ष १० अंक २ में प्रकशित मेरा लेख "मालवगण

स्पष्टतः संकेत है।[5] गुहिलवंशी शासक इस क्षेत्र में छठी शताब्दी में आ गये प्रतीत होते हैं।

प्रारम्भिक गुहिलवंशी शासक

गुहिलवंश के संस्थापक गुहदत्त[6] की तिथि ओझा जी ने सामोली के वि सं० ७०३ के शिलालेख के आधार पर वि० सं० ६२३ (५६६ ई०) मानी है। यह तिथि प्राप्त सामाग्री के आधार पर ठीक[7] नहीं है। ओझा जी को उक्त इतिहास लिखते समय नगर गांव का शिलालेख मिला नहीं था। हाल ही में कई लेख वागड़ क्षेत्र से ७ वीं शताब्दी से ८ वीं शताब्दी तक के प्राप्त हुये हैं। गुहदत्त की तिथि पर मैंने अन्यत्र विस्तार से लिखा है। गुहिलवंश की ३ शाखाओं के राज्य ७ वीं शताब्दी में मिलते हैं (१) मेवाड़ के गुहिल (२) वागड़ के गुहिल और (३) नगर चाटसू आदि के गुहिल। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इन तीनों शाखाओं को अलग हुये कई पीढियां व्यतीत अवश्य हो चुकी थी, क्योंकि तीनों की वंशावलियां भिन्न २ हैं। नगर और मेवाड़ शाखाओं के तथा कथित मूल पुरुषों का काल निर्धारण ६ ठीं शताब्दी और वागड़ शाखा का ७ वीं शताब्दी माना जाता है अतएव प्रतीत होता है कि ये शाखायें ६ ठी शताब्दी के पूर्व या प्रारम्भ में ही अलग हो चुकी होंगी।

नगर गांव के शिलालेख में वर्णित शासक

नगर गांव का लेख चन्द्रधर गुलेरी[8] ने सम्पादित किया था। मूल लेख एक कुएं में मिला था। इस में कुल २४ पंक्तियां हैं और भर्तृपट्ट वंशी गुहिल शासकों का उल्लेख है।

---

(५) फ्लीट गुप्ता इन्स्क्रिप्शन्स पृ ८५

(६) "जयति श्रीगुहदत्तप्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य" चाटसु का लेख

(७) "वरदा" के वासुदेव शरण अग्रवाल स्मृतिग्रंथ में प्रकाशित मेरा लेख "वागड़ में गुहिल राज्य की स्थापना"

(८) भारत कौमुदी पृ २७०-७६

उक्त भर्तृपट्ट को ओझा जी ने मेवाड़ का शासक[9] भर्तृपट्ट माना है। लेकिन यह उनकी मान्यता विसं० ७४१ के शिलालेख के मिल जाने से स्वतः खंडित हो गई है। नगर और चाटसू के शासक इसी शाखा के थे। इंगोदा (मध्य प्रदेश) से विसं० ११९० के शिलालेख में और बागड़ के कुछ लेखों में "भर्तृपट्टाभिधांन गुहिलवंशी" शासकों का उल्लेख मिलता[10] है। अतएव पता चलता है कि ये शासक दीर्घकाल तक इसी नाम से पुकारे जाते थे।

भर्तृपट्ट का काल निर्धारण विसं० ६४० या ५८३ ई० किया जा सकता है। औसतन प्रत्येक शासक का काल २५ वर्ष मानकर विसं० ७४१ में से ४ शासकों के १०० वर्ष कम करने पर यह तिथि आ जाती है। यद्यपि नगर गांव के उक्त लेख में वंशावली ईशान भट्ट से ही दी है और भर्तृपट्ट का नाम नहीं दिया है किन्तु चाटसू के लेख में इसका स्पष्टतः उल्लेख किया गया है कि ईशान भट्ट भर्तृपट्ट का पुत्र था। सी॰ वी॰ वैद्य ने भर्तृपट्ट की[11] तिथि ६८० ई० मानी है। इनकी मान्यता है कि चाटसू के लेख में हर्षराज को प्रतिहार राजा भोज का समकालीन बतलाया है जो ८४ ई० के आस पास हुआ था। इसलिये हर्षराज के ८ वें पूर्वज भर्तृपट्ट के लिये १६० वर्ष कम करके यह तिथि मानी है। स्पष्ट है कि उस समय नगर गांव का शिलालेख मिला नहीं था। इसलिये अब यह तिथि मान्य नहीं हो सकती है। प्राप्त सामग्री के आधार पर यह तिथि ६४० वि० या ५८३ ई० ही होना चाहिये।

ईशान भट्ट उपेन्द्र भट्ट और गुहिल का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है। नगर गांव के लेख में केवल "श्रीमानीशानभट्टः क्षिति-

---

(९) उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७/श्री सी. वी. वैद्य ने इसका खंडन किया है [हिस्ट्री आफ मिडिवल हिन्दू इंडिया vol II पृ ३४५]

(१०) इंडियन एंटीक्वेरी vol IV पृ ५५-५६। इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XXXV सं० १ पृ ९–१२

(११) हिस्ट्री आफ मिडिवल हिन्दू इंडिया vol II पृ ३४५

पालतिलको बभूव भूपाल:" शब्द ही अंकित[12] है। उपेन्द्र भट्ट का भी परम्परागत वर्णन मात्र मिलता है। इसका उत्तराधिकारी गुहिल हुआ था। इसके कई विशेषण प्रयुक्त[13] हुये हैं यथा "महताम ग्रेसरो भूत्प्रभु' " "सर्व्वोर्वीक्त राजमण्डलगुरु"। इसका उत्तराधिकारी धिनिक हुआ जिसने विसं० ७४१में नगर गांव में एक वापी बनाई।

धौड़ का शिलालेख

कर्नल टॉड को धौड़ से एक शिलालेख मिला था। इसमें गुहिल वंशी धिनिक का उल्लेख है। यह शिलालेख अब उदयपुर संग्रहालय में है। डी. आर भंडारकर ने इसे गुप्त संवत् ४०७ पढ़ा है। यह उनकी मान्यता है कि धौड़ के लेख में वर्णित धनिक चाटसू वाले लेख का धनिक ही है। इसके विपरीत ओझाजी की मान्यता है[16] कि यह संवत २०७ का है जो हर्ष संवत है एवं धौड़ के लेख में प्रयुक्त धवलप्प नामक शासक संभवत: मौर्य वंशी शासक है जिसका उल्लेख कोटा के शिलालेख[17] में हो रहा है। श्री० डी० सी० सरकार ने इसे विसं० ७०१ पढ़ा है। उनकी मान्यता है कि धवलप्प कोटा के कन्सवा के लेख में वर्णित धवल मौर्य का पूर्वज रहा होगा। अब प्रश्न यह है कि नगर गांव के लेख में वर्णित धनिक और धौड़ के लेख में वर्णित धनिक दोनों एक ही व्यक्ति हैं अथवा भिन्न भिन्न। डी॰सी० सरकार ओझा हल्दार दशरथ शर्मा[18] आदि ने

(१२) लेख की पंक्ति २–३

(१३) लेख की पंक्ति सं. ४

(१४) –"परम भट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीधवलप्पदेवप्रवर्द्ध-मान राज्ये। गुहिल पुत्रानां श्रीधनिकस्योपभुज्यमानायां धवर्गतायां––"

(१५) एपिग्राफिआ इंडिका vol XII पृ.११

(१६) उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७ का फुटनोट

(१७) गुहिलोत्स आफ किष्किन्धा पृ ५२–५४

(१८) राजस्थान थ्रू दी ऐजेज भाग १ पृ २१२। उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७

विभिन्न २ मतों से इसे अलग अलग माना है । इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। नगर गांव के धनिक का लेख विसं० ७४१ का मिला है । अगर धौड़ वाला धनिक और यह एक ही व्यक्ति हो तो इसका शासनकाल वहुत लम्वा रहा होगा। भण्डारकर के पाठानुसार तो विसं० ७८३ तक यह जीवित रहा होगा और डी०सी० सरकार के संवत के पाठ के अनुसार यह विसं० ७०१ से ७४१ तक जीवित रहा होगा। इस सम्बन्ध से निश्चित रूपसे कुछ भी कहा नहीं जा सकता[19] है। इस सम्वन्ध में मुझे यह अधिक ठीक लगता है कि उक्त ये दोनों ही भिन्न २ शासक रहे होंगे। इनकी शाखायें भी भिन्न २ होगी।

श्री रोशनलाल सामर ने अपने लेख[20] "गुहिलोतस आफ चाटसू" में एक विचित्र मान्यता दी है कि धौड़ जहाज-पुर के पास है। जहाजपुर की स्थापना इनके अनुसार हूणों ने की थी अतएवधनिक भी हूण था किन्तु इस मान्यता का कोई आधार प्रतीत नहीं होता है।

नासूण के लेख वाला धनिक

अजमेर के पास स्थित नासूण[12] गांव से वि०सं० ८८७ का एक शिलालेख मिला है। इसमें धनिक और उसके पुत्र ईशान भट्ट का उल्लेख है। ओझा जी ने इसे[22] और धौड़ वाले लेख में वर्णित धनिक

---

(१९) धनिक का चतुर्थ वंशज हर्षराज प्रतिहार राजाभोज I का समकालीन था जिसके शिलालेख विसं० ९०० से ९३८ तक मिले हैं। इसी प्रकार शंकरगण नागभट्ट II (वि०सं०८७२) का सामन्त था। अगर ओझाजी की तिथि के अनुसार इसे हर्ष संवत् २०७ लेते हैं तो यह संवत् ८७० के आसपास जाता है जो निसंदेह गलत है।

(२०) जनरल आफ दी राजस्थान इन्स्टिट्यूट आफ हिस्टोरिकल रिसर्च vol III सं० ३ पृ ३२

(२१) इण्डियन एन्टिक्वेरी vol LIX पृ २१

(२२) उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ११७

को एक ही व्यक्ति । है।[23] लेख में इसके वंश का वर्णन नहीं किया गया है केवल इतना ही वर्णित है "मण्डलाधिपश्रीमदीशान भटेन श्रीधनिक सुनुना"। इसके अतिरिक्त दोनों के शासन काल में भी अन्तर है। अतएव यह भिन्न व्यक्ति रहा होगा। केवल नामों की समानता से उन्हें एक ही वंश का नहीं मान सकते हैं।

चाटसू का शिलालेख -

चाटसू का शिलालेख कार्लायल[24] ने ढूंडा था। उनका कहना था कि कई वर्षों पूर्व यहां के तालाब से इसे निकाला गयाथा जिसे यहां के रुघनाथ जी के मंदिर में लगवा दिया था।

यह काले पत्थर पर खुदा हुआ है। प्रारम्भ में सरस्वती और भगवान मुरारी की वन्दना की गई है। ६ ठे श्लोक में गुहिल वंश की प्रशंसा की गई है एवं इसमें उत्पन्न भर्तृपट्ट नामक शासक का उल्लेख है जिसे राम के समान ब्रह्मक्षत्री[25] बतलाया है। इसके बाद ईशान भट्ट उपेन्द्र भट्ट गुहिल और धनिक का उल्लेख है जिनका विस्तृत वर्णन उपरोक्त नगर के लेख में है। धवल का पुत्र आऊक हुआ और आऊक का कृष्णराज। कृष्णराज के बाद शंकरगण शासक हुआ जिसके लिये लिखा मिलता है कि इसने अपने स्वामी के लिये गौड़ देश के शासक को हराकर उसे उसके समक्ष प्रस्तुत किया। गौड़ देश का शासक निसंदेह धर्मपाल था। इसे नाग भट्ट II ने हराया[26] था। मंडोर के प्रतिहारवंशी शासक बाहुक के विसं० ८६४ के शिलालेख में कक्क के लिये भी मुंगेर में गौडों को हराने का उल्लेख[27] है। अवनिवर्मा के ऊना के विसं० ६५६ के लेख में उसके पूर्वज

---

(२३) फुटनोट २१ उपरोक्त

(२४) आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया vol VI पृ ११६

(२५) "ब्रह्मक्षत्र" के सम्बन्ध में डी. सी. सरकार की मान्यता "गुहिलोतस आफ किष्किन्धा पृ ६-८ एवं हिस्ट्री आफ मेवाड़ राय चौधरी कृत दृष्टव्य है।

(२६) एपिग्राफिया इण्डिया vol XIII पृ ८७ फुटनोट

(२७) बाउक के शिलालेख श्लोक २४

वाहुके धवल धर्मपाल और कर्नाटक सेनाओं को हराने वाला वर्णित किया गया[28] है। अतएव प्रतीत होता है कि नाग-भट्ट के साथ उक्त युद्ध में शंकरगण के अतिरिक्त अन्य कई शासक और भी थे। संभवत: उसने बड़ी वीरता दिखाई थी जिसके फलस्वरूप उसका विवाह नाग भट्ट की पुत्री यज्जा से हुआ था। चाटसू के लेख में इस यज्जा को शिव की भक्त और "महामहीभृत" की पुत्री वर्णित[29] की गई है जो नाग भट्ट ही रहा होगा। इसके हर्षराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो प्रतिहार राजा भोज का समकालीन था। प्रस्तुत लेख में वर्णित किया है कि उसने उत्तरी भारत के कई शासकों से युद्ध किया था एवं उक्त भोज को श्री वंशी घोड़े लाकर के दिये थे जो सिंधु के रेगिस्तान को कुशलता पूर्वक पार कर-सकते थे। डा० दशरथ शर्मा की मान्यता है कि यह संदर्भ भोज के सिन्धु प्रदेश के आक्रमण का द्योतक[30] है। संभवत: चाटसू का यह शासक उक्त आक्रमण में प्रतिहार शासक के साथ युद्ध में सम्मलित था। इसकी महाराणी का नाम सिल्लो था। इसका पुत्र गुहिल II हुआ। चाटसू के लेख में इसे बहुत बलशाली वर्णित किया[31] है। इसको गौड़ देश को जीतने वाला लिखा है। इसने संभवत: नारायण पाल नामक शासक को या तो भोज I के समय या उसके उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल की सेनाओं के साथ रहकर हराया होगा। इसका विवाह परमार राजा वल्लभराज की पुत्री रज्जा से हुआथा। इसका पुत्र भट्ट हुआ। यह भी प्रतिहारों के आधीन था और दक्षिण के कई राजा से युद्ध किये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि महिपाल प्रतिहार के समय इसने उसकी सेनाओं के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट शासक इन्द्र या उसके उत्तराधिकारी अमोघवर्ष II या गोविन्द चतुर्थ को हराया

---

(२८) एपिग्राफिआ इण्डिआ vol IX पृ १

(२९) चाटसू का लेख श्लोक सं० १७

(३0) राजस्थान थ्रू दी एजेज भाग १ एवं इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XXXIV पृ १४६

(३१) चाटसू का लेख श्लोक २०

होगी[32] इसकी राणी का नाम पुष्पा था जो त्रिभुवन नामक शासक की पुत्री थी। इसके बालादित्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसकी उक्त शिलालेख के श्लो० २९ से ३२ में बड़ी प्रशंसा की गई है। इसका विवाह शिवराज चौहान की पुत्री रट्टबा से हुआ था। इसकी पत्नि की मधुर स्मृति में इसने चाटसू में भगवान मुरारि का एक सुन्दर मन्दिर बनवाया बालादित्य के ३ पुत्र वल्लभराज शिवराज और देवराज थे।

इस प्रशस्ति को भानु नामक एक कवि ने जो छीत्तू का पुत्र था और कारनिक जाति का था बनाया था और इसे सूत्रधार भाइला ने पत्थर पर खोदा था।

नगर के अन्य लेख

इस लेख के बाद गुहिल वंशियों का इस क्षेत्र से कोई उल्लेख नहीं मिलता है। नगर गांव से विसं० १०४३ का शिलालेख यहां के भण्ड किला ताल से[33] मिला था। इसमें उक्त नगर की समृद्धि का सुन्दर वर्णन है। इसमें वर्णित है कि यहां कई मन्दिर हैं और कई धनी व्यक्ति रहते हैं। उस समय के शासक का नाम "लोकनृप" दिया है। यह उपाधि रही प्रतीत होती है। इस लेख में धर्कट वंशी वैश्य द्वारा विष्णु के मन्दिर बनाने का उल्लेख है। जिसके पौत्र नारायण ने कई शिखरों वाला मन्दिर बनवाया। इसके वंशज नुनन्द ने भी एक मंदिर बनवाया जिसमें विष्णु शिव गरुड़ आदि की प्रतिमायें थी।

आगरे के आसपास गुहिल[34] नामक शासक के २००० से अधिक सिक्कें मिले हैं। नटवर से भी एक सिक्का "गुहिलपति"- का

(३२) जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री XXXVIII भाग पृ ६०६ पर डा० दशरथ शर्मा का लेख। अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाईम्स पृ ६३—६५

(३३) भारत कौमुदी पृ २७,

(३४) कनिंघम आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया भाग IV पृ ६५। ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ ६६

मिला है। ये सिक्के पूर्वी राजस्थान के गुहिलवंशी शासकों के रहे होगें।

इस प्रकार लगभग ४०० वर्षो तक इनका इस क्षेत्र पर अधिकार रहा। इनको प्रारम्भ में मौर्यों और बादमें बयाना और मत्स्य के यादवों से संघर्ष करना पड़ा था। इसके बाद प्रतिहारों की अधीनता में कई सफलता पूर्वक युद्ध करने से इस राजवंश की बड़ी ख्याति हो गई। इसका अन्त सम्भवतः चौहानों ने किया था।

यहां से ये लोग मालवा की तरफ चले गये थे। जहां विसं. ११९० का इंगोदा का शिलालेख मिल चुका है। वहां से ये वागड़ की तरफ गये थे जिसका विस्तृत वर्णन ऊपर "वागड़ में गुहिल राज्य" नामक लेख में किया जा चुका है।

[शोध पत्रिका में प्रकाशित]

मालव गण | १६

प्राचीन भारत में गण राज्यों को मुख्य रूप से २ भागों में विभक्त किया जाता था। एक राज्यशब्दोपजीवी और दूसरे आयुध जीवी। इनमें मालवगण आयुध जीवी थे इनके शासक राजा को उपाधि धारण नहीं करते थे।

मूलनिवासस्थान—मालवों का मूल निवास स्थान पंजाब में था। कर्णपर्व में इनका उल्लेख पंजाब में किया है। महाभारत में कहीं २ इन्हें माध्यमिकेयों के साथ भी वर्णित किया है[1] अतएव प्रतीत होता है कि उक्त अंश बाद का जोड़ा हुआ क्षेपक रहा होगा। युनानी इतिहासकारों ने इनको पंजाब में ही शिविगण के पास बतलाया है। इनमें मल्लोइ मल्लइ या मल्ली वर्णित किया है जिन्हें "आविसड्राई" के साथ वर्णित किया हैं। इन दोनों जातियों को मालव और क्षुद्रक माना है। इन जातियों ने महाभारत के युद्ध में कौरवों के पक्ष में लडाई की थी। राजसूय यज्ञ के समय दोनों जातियां साथ २ युधिष्ठिर को कर देती थी महाभारत में भी दोनों जातियों को अर्जुन के आक्रमण से बड़ा नुकसान पहुंचा था। एवं भीष्मपितामह की जीवन रक्षा की थी। (IA) कीचक की माता भी मालव जाति की थी।

सिकन्दर का आक्रमण

हिडे स्पेसस (झेलम नदी का वह भाग जो चिनाब मिलने के बाद

१. महाभारत कर्ण पर्व २।५० द्रोणपर्व १०/१७ किन्तु सभापर्व ३२/७ में मालवों को माध्यमिकेयों शिवियों के साथ वर्णित किया है।

१A—एपिग्राफिया इंडिका भाग २७ पृ० २५८

बनता है) के तट पर पहुँचने परसिकन्दर को सूचना दी गई मालव और क्षुद्रक सम्मलित होकर लड़ने को तैयार हो गये हैं। कार्टियस लिखता है कि दोनों संयुक्त सेना का सेनापति एक क्षुद्रक सरदार था लेकिन मालवों ने उसे स्वीकार नहीं किया अतः युद्ध नहीं किया।अरियन लिखता है कि क्षुद्रक और मालव दोनों ही संयुक्त रूप से लड़ने को तैयार तो हो गये थे लेकिन आक्रमण कारी ने इतनी जल्दी से आक्रमण कर दिया कि दोनों सम्मलित नहीं हो सके। मालवों की सिकन्दर की सेना के साथ युद्ध में हार हो गई। फिर भी वीर जाति ने आक्रान्ता की सेना का दृढ़ता पूर्वक मुकावला किया था किन्तु इनके नगर एक के वाद एक आक्रान्ता के हाथ पड़गये। लोग नगर छोड़कर चलेगये और "हाई ड्रे ओटस" (रावी) के किनारे आकर एकत्रित हो दूसरे मोर्चे को तैयार करने लगे। सिकन्दर ने अपने सेनापति पैथन और डिमेटियस को भेजा। मालवों ने एक समीप के अपने नगर में शरण ली। इस पर भी सिकन्दर ने आक्रमण किया। यद्यपि मालवों की हार होगई किन्तु युद्ध में सिकन्दर स्वयं घायल हो गया एवं क्रोवित होकर वदला लेने की घोषणा की मालवों की स्त्रियों और वच्चों तक को मोत के घाट उतार दिया। डीओडोरस और कर्टियस ने यह नगर क्षुद्रकों का लिखा है किन्तु अरियन एवं प्लूटार्क ने स्पष्टतः लिखा है कि यह नगर मालवों का था।[2]

युद्ध की समाप्ति पर १०० सरदार संधि के लिये गये जिनका भी सिकन्दर ने वड़ा सम्मान किया। इनके वैठने के लिये सोने की चोकियां रखी आदि २। इससे पता चलता है कि विदेशी आक्रान्ता भी इनका सम्मान करता था।

क्षुद्रकों और मालवों का सम्मिलित होना।

मालव और क्षुद्रक राज्यों ने मिलकर एक सम्मिलित संघ स्थापित

---

२. मेक क्रिडल— इनवेजन आफइंडिया पृ० २३६ फु० नो० १/
जरनल यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी VII भाग २ पृ० २८/
इंडियन एंटिक्वेचरी भाग १ पृ० २३

किया था। पाणिनि के सूत्र खण्डिकादिभ्यश्च (४।२।४५।) की वार्तिका में कात्यायन ने मालवों और क्षुद्रकों के द्वंद्व का उल्लेख किया है। इसके लिए एक नियम भी बना दिया था, जिसे आगे चलकर पतञ्जलि ने स्पष्ट किया कि "क्षुद्रक-मालव खंडिकादिषु पठ्यते"। इस प्रकार पाणिनि के समय मालवों और क्षुद्रकों का यह द्वंद्व प्रचलित नहीं हुआ था किन्तु कात्यायन के समय हो चुका[3] था। युनानी लेखक कर्टियस ने इनकी सम्मिलित सेना की संख्या एक लाख बतलाई है। वेबर ने मालवों और क्षुद्रकों की संयुक्त सेना का उल्लेख करने के कारण अपशाली का समय सिकन्दर के सम सामयिक माना है। इस सम्बन्ध में वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं कि क्षुद्रक और मालव सेना दीर्घ काल से चली आरही थी। वेबर की इस मान्यता में कोई शक्ति नहीं है कि यह संगठन केवल सिकन्दर से लड़ने को ही बनाया था। इस सेना का नाम आधुनिक भाषा में "क्षुद्रक मालवी सेना" रखा जा सकता है। बहुत कुछ संभव है कि इस सेना के विशेष प्रकार के व्याकरण के सूत्र की रचना संभवतः पाणिनी ने ही कर ली थी (गणसूत्र क्षुद्रक मालवात् सेना संज्ञायाम्) उक्त दोनों वैयाकरणों ने भी मालवों की सेना की ओर संकेत किया है। सभापर्व के ५२ वें अंश में मालवों और क्षुद्रकों को साथ साथ वर्णित किया है, जबकि ३२ वें अंश में मालवों का ही विवरण है और क्षद्रकों का नहीं। इस से स्पष्ट है कि उस काल तक मालव क्षुद्रक संघ में सम्मिलित हो चुके होंगे। पतंजलि ने क्षुद्रकों की एक विजय का उल्लेख किया है, जो उन्होंने अकेले ही प्राप्त की

३- खण्डिकादिभ्यश्च।४।२।४५
अञ् सिद्धिरनु दात्ता देः कोऽर्थः क्षुद्रकमालवात्'
अनुदात्रादेरित्यवाञ् सिद्धिः किमर्थं क्षुद्रक मालव शब्दः खण्डिकादिषु पठयते" वीर भूमि चितौड़ पृ. ६

जरनल यु. पी. हिस्टोरिकल सोसायटी VII अंक २ पृ. पृ२ २६ का – फुटनोट १८।ए इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली दिसम्बर १९५१ सं० ४ पृ २८०

थी। एकाकिभिः क्षुद्रकैजितम् (महाभाष्य ५।३।३२)। इस प्रकार पतंजलि के पश्चात् क्षुद्रक पूर्ण रूप से मालव संघ में विलीन हो गये थे।

भारत के वृहद् इतिहास में पं० भगवद्दत्त ने मालवों एवं क्षुद्रकों को मेगस्थनीज के कथन को आधार मानते हुए असुरवंशी बतलाया हैं किन्तु यह बात सही नहीं है। नांदशा के अभिलेख में इन्हें "इक्ष्वाकु प्रथित-राजवंश" [4] कहा है, जो कभी भी दानववंशी नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त वैयाकारणों ने इसे और भी स्पष्ट कर दिया हैं। व्याकरण में नियम है कि जो मालव संघ का सदस्य ब्राह्मण अथवा क्षात्रिय नहीं था, वह मालव्यः (एकवचन) कहलाता था, जबकि क्षत्रिय और ब्राह्मण को मालवः कहा जाता था। दोनों का वहुवचन मालवाः ही होता था (काशिका ५/३/११४)। इस प्रकार मालवों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का सम्मान किया जाता था।

मालवगण का प्रस्थान और क्षत्रपों के साथ संघर्ष

मौर्यकाल में किन्ही कारणों से विवश होकर इन्हे अपना घर छोडना पड़ा था।। जनरल कनिंघम का विश्वास हैं कि मालव जाति राजस्थान में मरू या मारवाड़ के मार्ग से आई होगी और मेरू जय एवं मगो जय वाले सिक्के इनके अरावली प्रदेश की विजय के सूचक होगें, [5]। नगरी के शिवि जनपद के सिक्कों के साथ २ मालवों के सिक्के भी मिलें हैं। जनरल कनिंघम ने इनका काल निर्धारण २५० से २०० ई० पू० किया है, [6] इसके पश्चात् स्मिथ एवं जायसवाल के अनुसार ई० पू० १५० से १०० के मध्य में ये लोग कर्कोट नगर (जयपुर) में वस चुके [7] थे। प्रसिद्ध यवन आक्रमण कारी दिमित्त का

---

४ एपीग्राफि आ इण्डिका भाग २७ पृ०२६२।

५. कनिघम–आर्कियोलोजिकल सर्वे आफइंडिया, भाग ६.पृ० १८१
श्री जायसवाल इन सिक्कों को राजाओं के संक्षिप्त नाम वाले मानते हैं [हिन्दू राजतंत्र, पृ० ३६७]

६–कनिघम–आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया, भाग ६, पृ० २०१

७–स्मिथ–केटलाग आफ इंडियन कोइन्स इन इन्डियन म्युजियम कलकत्ता, पृ० १६१ एव जायसवाल, हिन्दु राजतंत्र, पृ० २४६

आक्रमण भी इसी समय हुआ था। पतंजलि ने माध्यमिका पर यवन आक्रमण काउल्लेख किया है। [अरूणद्यवनो माध्यमिकाम्]। दिमित के आक्रमण के फलस्वरूप ही ये माध्यमिका छोड़कर कर्कोट की ओर वढ़े हों तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु नान्दसा [तहसील गंगापुर, जिला भीलवाड़ा] के वि० सं० २८२ के लेख में वहां मालव गण राज्य का उल्लेख है। यह गांव नगरी से २५ मील उत्तर पश्चिम में है, अतएव स्पष्ट है कि मालव लोगों ने ककोट नगर में रहते हुए माध्यमिका क्षेत्र को पूर्ण रूप से छोड़ा नहीं था।

पश्चिमी भारत एवं मथुरा में उस समय शकक्षत्रप शासन कर रहे थे। महाक्षत्रप नहपान के दामाद उषावदत्त के नासिक के लेख में उत्कीर्ण है कि उसने भट्टारक की आज्ञा प्राप्त कर वर्षाऋतु में मालवों से घिरे हुए उत्तमभद्र क्षत्रियों को मुक्ति दिलाई। मालव लोग उसकी आवाज सुनते ही भाग [8] गये........

"भट्टारिकाज्ञातिया च गतोस्मि वर्षारितु मालयेहिरूधं उत्तमभद्रं मोचयितुं ते च मालया प्रनादेनेव अपयाता उत्तमभद्रकानां च क्षत्रियानां सर्वे परिग्रहाकृता"--

उषावदत्त की विजय के वाद कुछ काल तक मालवों के राज्य पर शकों का अधिकार हो गया था। स्वयं नहपान का एक सिक्का कर्कोट से मिला था। उत्तम भद्र क्षत्रिय, जिनसे मालवों की लड़ाई हुई थी, कौन थे ? इनके वारे में कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ है। किन्तु ये लोग

८--जरनल वम्वई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग ५ पृ० ४६ पर स्टीवेन्सन द्वारा सम्पादित। इसका संशोधित पाठ श्री वर्गेस द्वारा केव टेम्पल्स आफ वेस्टर्न इंडिया पृ० ९९--१०० पर प्रकाशित कराया गया है। इन्होंने मालय को मलय पर्वत वासी वतलाया है। इसे श्री रूडोल्फ हार्नले ने इपि ग्राफिआ इंडिया के ८ वें भाग से पृ० २७ पर पुनः प्रकाशित कराके यह वर्णित किया है कि "मालाये" व "हिरुद्धम्" दो अलग २ शब्द नहीं होकर एक ही है और दोनों के वीच कोई शब्द छूटा हुआ नहीं है। लेख

निस्संदेह राजस्थान में कहीं निवास कर रहे थे। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार ये भद्रानीक थे। मालव लोग उस समय उज्जैन से पुष्कर के मध्य कहीं रह रहे थे क्योंकि उपरोक्त लेख के अनुसार उषावदत्त मालवों को विजय कर पुष्कर गया था और स्नानएवं दान दिया था।

गोतमीपुत्र शातकर्णी की मां वालाश्री का गोतमीपुत्र के राज्य के १९ वें वर्ष का एक लेख नासिक में प्राप्त हुआ है। उसमें गोतमीपुत्र शातकर्णी को क्षहरात कुल को समूल नष्ट करने वाला कहा गया है।[9]

"खखरात वंश निखसेस करस सातवाहन कुलयस पतिठापन करस"

इस प्रकार क्षत्रप राज्य विनष्ट हो जाने पर मालवों को भी राज्य पुनः संस्थापन का अवसर पाप्त हुआ था।

मालवों के नगरी, नान्दशा और बडवा के लिखालेख प्राप्त हुए हैं। वे इनकी विजय के सूचक हैं। मेरे ग्राम गंगापुर से ३ मील दूर नान्दशा के तालाव के मध्य वि० सं० २८२ का जो स्तम्भ लेख है,[10] उसमें लिखा है कि मालव वंश में उत्पन्न मनु की तरह गुणों से युक्त जयनर्तन प्रभागवर्धन के पौत्र जयशोम के पुत्र सोगियों के नेता, पोरप श्री सोम द्वारा अपने वाप-दादों की धुरी का समुद्धार करके षष्ठिरात्र यज्ञ

प्राकृत मिश्रित संस्कृत हैं। मालव के लिये मालय भी आ सकता है जैसे कि "चम्पाणांम णयरीहो त्था" यहां नगरी के लिये णयरी आया है।

९. जरनल वम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ५. पृ० ४१-४२ में स्टीवेन्शन द्वारा सम्पादित और संशोधित रुप श्री वर्गेस द्वारा केव टेम्पल्स आफ वेस्टर्न इंडिया के पृ० १०८-१०९ में दिया है।

१०. महता स्वशक्तिगुरुणपोरुषेणप्रथमचन्द्रदर्शनमिव मालवगणविपय-मवतारयित्वेक षष्टिरात्रमतिसत्रमपरिमितधम्मंमात्र समृद्धत्य-पितृपैतामहिं (हीं) धुरमावृत्य सुपिवलं द्यावां पृथिव्योंर तर मनुत्तमेन यशसा स्वकर्मसंपदया विपुलां समुपगतावृद्धिमात्म सिद्धि वितत्थ मायामिव सत्र मूमौ सर्व कामौघ धारां वसोर्द्धारामिव ब्राह्मणाग्नि-वेश्वानरेषु-हुत्वा ब्राह्मेन्द्र प्रजापति महर्षि विष्णु स्थानेषु——'- [इपी० इंडिका का भाग २७ पृ० २६२]

किया। इस लेख से प्रकट होता है कि मालवों ने कोई बड़ी विजय प्राप्त की थीं। संभवतः इन्होंने खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था। लेख में स्पष्ट रूप से प्रथमचन्द्र के समान मालव राज्य का उल्लेख किया है। इस विजय की स्मृतिस्वरूप एक विष्णु यज्ञ भी किया जिसे इस लेख में आलंकारिक भाषा में वर्णित किया है कि पोरप सोम ने जिसका यज्ञ द्यावा व पृथ्वी के अन्तराल में छा गया था और जिसने यज्ञ भूमि में अपने कर्म की सम्पदा के कारण प्राप्त ऋद्धियों को अपनी सिद्धियों के समान सब कामनाओं के समूह की धारा को माया की तरह विस्तार कर वसु [धन अथवा घी] की धारा से ब्राह्मणों अग्नि वैश्वानर आदि के लिये हवन किया और मालवगण के उक्त प्रदेश में षष्ठिरात्र यज्ञ किया। नान्दशा के महा तड़ाग में, वहां के वृक्ष यज्ञ यूप और चैत्य उस सोम द्वारा दी गई एक लाख गायों के सींगों रगड़ से संकुल हो जाने से जो पुष्कर को भी पीछे रखता था, एक यज्ञयूप खड़ा किया गया। यह लेख मालव जाति का प्राचीनतम लेख है। यज्ञों की परम्परा बराबर बनीं रही थी। बरनाला का यज्ञ स्तूप और कोटा के यज्ञ स्तूप भी इसी समय के हैं। लेकिन कला की दृष्टि से नान्दसा के स्तूप अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन यज्ञ स्तूपों पर शुंग कालीन विशेष प्रकार का पोलिश भी हो रहा है।

मालवों का अवन्ति प्रदेश में निवास कब हुआ था, यह बतलाना कठिन है। रुद्रदामा के गिरनार के लेख में इस भू भाग को "पूर्वापक-रावंती" कहा[१४] है। कालिदास के काव्य में सर्वत्र अवन्ती और

---

१४. स्व वीर्यार्जितानामनुरक्तसर्वप्रकृतीनां पूर्व्वापराकरावन्त्यनूपनी वृदानर्त्त सुराष्ट्रश्व भ्रूमरु कच्छसिन्धुसौवीर कुकुरापरान्तनिषादा दीनां समग्राणां..............

[रुद्रदामा का गिरनार का लेख]

दा॰र्ण शब्द[15] दिये गये हैं। ये धीरे २ राजस्थान से बढ़ते गये और पहले उत्तरी मालवा में बसे; जहां से गंगाधार का वि० सं० ४८० और मन्दसोर से ४६१ का लेख मिला हैं। समुद्रगुप्त के शासनकाल के समय यह जाति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुई थी क्योंकि प्रयाग के उसके लेख में इनसे कर लेने का[16] उल्लेख है। समुद्रगुप्त के पश्चात् इनको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से लोहा लेना पड़ा और इसके पश्चात् कलचुरियों से संघर्ष लेना पड़ा था। इस प्रकार साम्राज्यवादियों से संघर्ष की जो शक्ति उनमें पंजाब में विद्यमान थी वह यहां आते २ क्षीण पड़ने लग गई और इन्हें अब अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखना कठिन हो गया। बाण के ग्रंथों में मालवा शब्द का प्रयोग है। अतएव ५ से ७ वीं शताब्दी के मध्य ये लोग सम्पूर्ण मालवे में फैल गये थे और इनके चिरकाल तक इस प्रदेश में निवास करने के कारण ही इस प्रदेश का नाम मालवा पड़ गया प्रतीत होता है।

मालव गणराज्य के सिक्के २ प्रकार के मिले हैं [१] मालवानां जय विरुद वाले, [२] इस प्रकार के सिक्के जिन पर कुछ अस्पष्ट[17] नाम हैं, उदाहरणार्थ मरज [महाराज] जम पय, मगज, जम मपोजय या मगोजय। [वरदा में प्रकाशित]

१५, रघुवंश ६/३४ मेघदूत पूर्वमेघ श्लोक २३ में दशार्ण का वर्णन है

सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥२३

श्लोक ३० में अवन्ती प्रदेश का वर्णन हैं "प्राप्यावन्तीनुदयन कथाकोविदग्रामवृद्धान्" है। श्री रेजडेविड ने बौद्ध कालीन भारत के पृ० २८ पर लिखा है कि अवन्ती को मालवा ८ वीं शताब्दी से कहा जाने लगा था।

१६. ....मालवार्जुनायनयौधेयमाद्रकाभीरप्रार्जुनसनकानिक काकखरपरिकादिभिश्च सर्व्वकरदानाज्ञाकरण... ...... [फ्लीट-गुप्ता इन्स० लेख सं० १ पंक्ति २२]

१७. काशीप्रसाद जायसवाल हिन्दू राजतंत्र पृ० ३६७

विक्रमी संवत | २०

परम्परा से यह विश्वास किया जाता है कि इस संवत् का प्रचलन विक्रमादित्य नामक एक राजा ने किया था । इसने शकों को हराकर उक्त विजय की स्मृति में नये संवत् को चलाया । इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है । विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाओं को मुख्य रूप से ३ भागों में विभक्त कर [1] सकते हैं (१) वैतालपंचविंशति में वर्णित विक्रम को कुछ लोग विक्रमी संवत् चलाने वाला मानते हैं; (२) कुछ विद्वान् हाल की गाथा सप्तशति में वर्णित विक्रम राजा को इस संवत् का चलाने वाला मानते हैं और (३) कालकाचार्य कथा में गर्दभिल्ल का उल्लेख हैं । मेरुतुंग ने इसके पुत्र विक्रमादित्य का उल्लेख किया है जिसने शकों से उज्जैन को मुक्त कराया था और जिसे विक्रमी संवत् का चलाने वाला भी माना गया है । उपर्युक्त ३ कथाओं में परम्परा से यही विश्वास किया जाता रहा है कि विक्रमादित्य, जो उज्जैन का राजा था विक्रमी संवत् को चलाने वाला हैं । लेकिन विक्रमी संवत के प्रारम्भ के संवतों में विक्रम शब्द के स्थान पर "कृत" शब्द ही लिखा हुआ है, [2]अतएव उपर्युक्त धारणा सही नहीं हो सकती । इसके अतिरिक्त मालव लोग विक्रमी संवत के प्रचलन के समय निश्चित रूप से टोंक, भीलवाड़ा और बूंदी जिले के उत्तरी भाग में ही रहते थे और इनका उज्जैन से कोई सम्बन्ध नहीं था । अतएव इसे उज्जैन के राजा विक्रम द्वारा चलायें जाने की कल्पना निराधार है । मेरुतुंगाचार्य का वर्णन अर्वाचीन है और परम्परा

१. दी एज आफ इम्पीरियल युनिटी पृ० १५५

२. संवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्खं ।
चलणेण विक्कमाइच्चचरिअमणु सिक्खिअं तिस्सा ॥
(गाथा ४६४ वेबर का संस्करण)

से चली आ रही कथाओं को आधार मान कर ही इन्होंने ऐसा लिखा प्रतीत होता है. विक्रम संवत् की सबसे पहली तिथि धोलपुर के चण्ड महासेन [3] के लेखकी ८९८ की है । इसके पहले के सब लेख या तो "कृत" संवत में है वा मालव संवत् में ।

"कृत" शब्द को डा० फ्लीट ने गत से सम्बधिन्त माना है। श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इस मत का खंडन करते हुये लिखा है कि गंगधार के लेख में कृतेषु और यातेषु दानों शब्द होने से उक्त अनुमान ठीक नहीं बैठता है। मन्दसौर के लेख में "कृत संज्ञिते" लिखा है। इससे कृत वर्ष के होने का उल्लेख मिलता है। उनका कहना है कि वैदिक-काल में ४ वर्ष का एक युगमान भी था। इस युगमान के वर्षों के नाम वैदिक-काल के जुए के पासों की तरह कृत, त्रेता द्वापर और कलि थे। उनकी रीति के विषय में यह अनुमान होता है कि जिस वर्ष में ४ का भाग देने से कुछ न बचे उस वर्ष के कृत, ३ बचे तो त्रेता, २ बचे तो द्वापर और १ बचे तो कली [4] संज्ञा होती है। जैनों के भगवती सूत्र में भी इसी प्रकार के युगमान का उल्लेख है। इसमें कय जुम्म (कृत) त्र्योज (त्रेता) दावर जुम्म (द्वापर) और कलि-युग का इसी प्रकार [5] लल्लेख है।

---

३. धिनिक गांव से दानपत्र वि.सं.७९४ कार्तिक वदि अमावस्याका मिला है किन्तु उस दिन सूर्य ग्रहण आदित्यवार ज्येष्ठा नक्षत्र आदि न होने से इसे श्री फ्लीट और कीलहार्न ने जाली ठहराया है (इंडियन एन्टिक्वेरी भाग १२ पृ० १५५)

४. भारतीय प्राचीन लिपि माला पृ० १६६ फुटनोट ८

५. कायिणं भंते जुम्मा पण्णत्ता ? गोयम चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता। तं जहा। कयजुम्म तेओगे दावरजुम्मे, कलिनुगे। से केणत्थेण भंते ? एवं उच्चयि जाव कलिनुगे गोयम। जेणं रासी चयुक्केणं अवहारेणं अवहरिमाणे चयुकेणं अवहारेणं अवहरिमाणे तिपज्ज-वसिये से तं तेओजे। जेणं रासी चयुक्केणं अवहारेणं अवहरिमाणे दुपज्जवसिये से तं दावर जुम्मे। जेणं रासी चयुक्केणं अवहारेणं अवहरिमाणे एकपज्जवसिये से तं कलिनुगे। १३७१-७२-भगवतीसुत्र गवामयन पृ० ७२ भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १६७ के फुटनोट से उद्धृत।

दूसरा मत "कृत" के सम्बन्ध में यह है कि यह किसी का नाम है। यह नेता था, जिसने मालवों को शकों से मुक्ति दिलाई। श्री मजुमदार का कहना है कि कृत शब्द महाभारत, भागवत, हरिवंश पुराण और वायु पुराण में भी व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप से प्रयुक्त हो रहा है। अतएव संभवतः यह मालवों का कोई नेता हो सकता है।[6]

जहां तक ओझाजी के मत का प्रश्न है, कृत संवत् की तिथियों का इस सिद्धान्त से मेल नहीं होता है। नांदशा का लेख वि. सं. २८२ का है। इसमें स्पष्टतः "कृत" संवत् प्रयुक्त है। इसमें ४ का भाग देने पर २ शेष रहते हैं। इसी प्रकार वरनाला यूप की तिथि ३३५ कोटा के वडवा के यूपों की तिथि २९५ भी आती है। अतएव ओझाजी का सिद्धान्त इस पर लागू नहीं किया जा सकता है। जहां तक "कृत" शब्द के किसी नेता के रूप में प्रयुक्त करने का प्रश्न है, इस पर निश्चित रूप से विचार किया जा सकता है। सम सामयिक भारत में कनिष्क, हुविष्क आदि के लेखों में भी इसी प्रकार के संवत् मिले हैं। उदाहरणार्थ मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति के लेख पर "महाराजस्य राजातिराजस्य-देवपुत्र षाहि कणिकाय सं० ७ हे० १ दि० १०-५" है। इसी प्रकार "महाराजस्य देवपुत्रस्य हुविष्कस्य सं० ३९ हे. ३ दि० ११" है। लेकिन कृत संवत् की तिथियों पर यह लागू नहीं हो सकता है क्योंकि यह कहीं भी व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में इस संवत् की कुछ तिथियों को अध्ययनार्थ प्रस्तुत कर रहा हूं।

(१) नान्दशा के वि० सं० २८२ "कृतयोर्द्वयोर्वर्षशतयोर्द्व्यशीतयोः चैत्यपूर्णमास्याम्"

(२) वडवा की तिथि २९५–"कृते हि २००+९०+५ फाल्गुन शुक्ला पंचमी दी"[7]

---

६. दी एज आफ इम्पिरियल युनिटी पृ० १६४ फुटनोट १।

७. ईपि ग्राफिआ इन्डिका भाग २३ पृ० ४३ एवं डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग १ का परिशिष्ट।

(३) बरनाल के यूप की तिथि २८४ और ३३५
"कृतेहि—३०० + ३० + ५ जरा [ज्येष्ठ] शुद्धस्य पञ्चदशी"

(४) भरतपुर के विजयगढ़ ४२८–[8]
"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वष्टाविंशेषु ४०० + २० + ८ फाल्गुण (न) बहुलस्य पञ्चदश्श्यामेतस्यां पूर्व्वायां"

(५) मन्दसौर के वि० सं० ४६१ के नरवर्मा के लेख में "श्रीम्मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समाशत चतुष्टये ॥ प्रावृक्का [ट्का] ले शुभे प्राप्ते[9]

(६) गंगधार का वि० सं० ४८० का लेख में "यातेषु चतुर्षु क्रि (कृ) तेषु शतेषु सौम्येष्टाशीतसोत्तरपदेष्विह वत्सरेषु। शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्त्तिकस्य मासस्य सर्व्वजनचित्तसुखावहस्य"[10]

(७) नगरी के वि० सं० ४८१ के लेख में "कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्व्वायां [४००] ८०१ कार्तिक शुक्लपञ्चम्याम्—"[11]

(८) कुमारगुप्त के मन्दसौर के लेख में "मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेब्दानत्रि (मृ) तौ सेव्यघनस्तने सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेहि त्रयोदशे[12]

(९) यशोधर्मा के मन्दसौर के लेख की तिथि में "पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु। मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेषु"[13]

(१०) कोटा के कन्सवा के शिव मंदिर के ७९५ के लेख में "संवत्सर शतैर्यातैः सपंचनवत्यग्गलैः। सत्यभिम्मालवेशानां"[14]

---

८. फ्लीट गुप्ता इन्स० पृ० २५३।

९. इपिग्राफिआ इन्डिका जिल्द १२ पृ० ३२०।

१०. फ्लीट गुप्ता इन्स० पृ० ७४।

११. गौरीशंकर हीराचंद ओझा—भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १६६। वरदा वर्ष ५ अंक १

१२. फ्लीट—गुप्ता इन्स० पृ० ८३।

१३. फ्लीट... ....do.........पृ० १५४।

१४. इंडियन एन्टिक्वेरी जि० १९ पृ० ५९।

(११) चण्डमहासेन का वि० सं० ८९८ के लेख में "वसु नव [अ] ष्टौ वर्षा गतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य" है।[15]

उपर्युक्त तिथियों के अध्ययन से पता चलता है कि यह किसी व्यक्ति का नाम नहीं है किन्तु यह मालव गण की स्थिति का सूचक है। मन्दसौर के लेखों में स्पष्ट रूप से "मालवानां गणस्थित्या याते" "मालवगण स्थितिवशात् कालज्ञानाय" और "श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृत संज्ञिते" उल्लेखित है। श्री डी. आर. भण्डारकर का कहना है कि कीलहोर्न ने इस पद का अर्थ मालव काल गणना से लिया है जो गलत है। यहां 'गण' का अर्थ स्पष्ट रूप से जाति के लिये है। "मालवानां गण स्थित्या" और मालवगणाम्नाते" दोनों में परम्परा से मालव जाति द्वारा गण राज्य की स्थापना का उल्लेख मान सकते हैं। "कृत संज्ञिते" का अर्थ स्पष्ट नहीं हैं। किन्तु निसंदेह सत्य है कि यह राजा का नाम नहीं है। शक और गुप्तों द्वारा संवत चलाया गया है। किन्तु उनकी तिथियां 'शकेषु वत्सेषु' या 'गुप्तेषु वत्सरेषु' प्रयुक्त नहीं हुई है। जब कि इस संवत की तिथियां 'कृतेषु वार्षिकेषु' वा वत्सरेषु" प्रयुक्त हुई है। इसलिये कृत किसी राजा का नाम नहीं है। यहां कृत का अर्थ "बनाया" लिया जा सकता है जिसका अर्थ 'आम्नाते' में जुड़ जाता है। इनसे यह पुष्टि होती है कि इस संवत् का सम्बन्ध मालवगण की स्थिति का सूचक मात्र है। यह संघ कब बना और क्यों बना ? इसका उत्तर स्पष्ट है। मालव और क्षुद्रक दो गणराज्य बहुत ही समीप रहते थे, और जब कभी बाहरी आक्रान्ता आते थे तब दोनों एक हो जाते थे। इसकी पुष्टि यूनानियों के वर्णनों मे होती हैं। कात्यायन ने क्षत्रिय द्वंद्व में 'मालव और क्षुद्रकों' का उल्लेख किया है, जिसे पतंजलि ने भी[10] स्पष्ट किया था। यह संघ संभवतः पतंजलि के समय

१५. .... do .... पृ० ३५

१५. A आर्कियो लोजिकल सर्वे रिपोर्ट सन् १९१३ पृ० ५८ ५९।

१६. खंडिकादि भ्यश्च सूत्र की अपशालि द्वारा की गई व्याख्या में मालव एवं क्षुद्रकों की संयुक्त सेना का उल्लेख किया है। कात्यायन एवं पाणिनि ने भी ऐसा किया है। इनकी व्याख्याओं के कुछ अंश इस प्रकार है :—

सम्पन्न तो हो गया लेकिन दोनों पूर्ण रूप से एक नहीं हो गये थे क्योंकि उन्होंने एक स्थल पर "एकाकिभिः क्षुद्रकैर्जितम्" भी लिखा है। यह संघ ५८ B C. को सम्पन्न हुआ था और उसी दिन इस संघ की स्थिति को चिरस्थायी बनाने के लिये एक नये संवत को प्रचलित किया गया। "मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृत संज्ञिते" से इसकी पुष्टि होती है।

इन स्पष्ट बातों को भुला कर हम किस प्रकार राजा विक्रम की कल्पना करते हैं। विक्रमादित्य के सम्बन्ध में कई प्रकार के वृतान्त मिलते हैं। एक कथा में जैनाचार्य सिद्धसेन और विक्रमादित्य में संवाद प्रस्तुत किया जाता है। इसमें सिद्धसेन से विक्रमादित्य पूछता है कि मेरे समान दूसरा राजा कब होगा ? तब वह उत्तर देता है"

पुन्ने वास सहस्से सयम्मि वरिसाणि नव नवई अहि ए।
होही कुमार नरिन्दो तुह विक्कमराय सरिच्छो।
अर्थात् विक्रम संवत ११९९ में कुमार पाल होगा।

एक अन्य कथा में उसको हूण वंशी वर्णित किया है। पुरातन प्रबन्ध के विक्रम प्रबन्ध में वह वर्णन इस प्रकार है—

हूण वंशे समुत्पन्नो विक्रमादित्य भूपतिः। गन्धर्वसेनतनया पृथिवीमनुणां व्यधात्।

खंडिकादिभ्यश्च ॥४।२।२५
"अञ् सिद्धिरनुदात्ता देः कोऽर्थ क्षुद्रक मालवात्"
"अनुदात्तादेरित्ये वाञ् सिद्धः किमर्थं क्षुद्रकमालव शब्दः खंडिकादिषु पठ्यते गोत्राश्रयो वुञ् प्राप्ता स्तद्वाधनाथम् (अनुदात्तादेरञ्) गोत्राद्वाञ् न च तद्‌गोत्रं ।४।२।३९ गोत्रा वुञ् भवतीत्युच्यते न क्षुद्रकमालव शब्दो गोत्रम्। न गोत्र समुदायो गोत्र ग्रहणेन गृह्यते। तद्यथा—जनपद समुदायो जनपद ग्रहणेन न गृह्यते। काशी कौसलीय इति वुञ् न भवति। तदन्त विधिना प्राप्नोति।
"सेनायां नियमार्थं वा"
अथवा नियामार्थोऽयमारम्भः। क्षुद्रकमालवशब्दात्सेनायामेव। अन्यमा भूत क्षौद्रकमालवकमन्यदिति"

कथासरित्सागर में विक्रम भूपति का सविस्तार वर्णन है एवं इसी आधार पर डा० राज बली पांडे ने अपने ग्रंथ 'विक्रमादित्य' में वर्णन प्रस्तुत किया है ।

उनके वर्णन में दो कल्पनायें हैं (१) गिर्दभिलों का मालव गोत्री माननों और दूसरा मालवों की ५८ B. C. में अवन्तिविजय । जैन कथाओं में राजा विक्रम के पूर्व एवं गिर्द भिल्ल के पश्चात् शकों का राज्य होना वर्णित है "तेरस गद्द भिलस्स चतारि सगस्ए तओ विक्क-राइच्यो' (विविधतीर्थ कल्प पृ० ३९) इसके अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा में नहपान चष्टन आदि का वर्णन है इनमें गिर्दभिलों का उल्लेख नहीं है । यति वृषभ द्वारा प्रणीत तिलोयपण्णति में (९७ एवं ९८) भी वर्णित है । किन्तु इसमें विक्रमादित्य का उल्लेख नहीं हैं ।

इस प्रकार इन कथाओं में सामञ्जस्य बिठाना कठिन है । मालवों की ५८ B.C. में उज्जैन विजय भी ठीक नहीं बैठती है । यह घटना कई शताब्दियों के पश्चात् सम्पन्न हुई है ।

इस संवत् का प्रचलन निश्चित रूप से अवन्ति विजव का सूचक नहीं है । मालवों का यह गणराज्य राजस्थान में ही बना था । इस बात को श्री मजूमदार ने भी माना है । अगर मालवों का गणराज्य राजस्थान में ही बना था तब दीर्घकाल से प्रचलित यह वार्ता कि विक्रमी संवत को प्रचलित करने वाला कोई राजा विक्रम था स्वतः गलत साबित हो जाती है । यह संवत किसी विजय की स्मृति में न होकर केवल संघ के संस्थापन का सूचक मात्र है क्योंकि विजय की स्मृति में होता तो कहीं न कहीं इसका उल्लेख अवश्य होता, जैसाकि नान्दशा के लेख में "महता स्वशक्ति गुरुगरुणा पोरुपेण प्रथम चंद्र दर्शन-मिव मालवगणविषयमवतारयित्वा" है । इसमें मालवगण के साथ विषय शब्द भी है, जो उनके राज्य का सूचक है । अतएव निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि क्षुद्रक और मालव दो अलग २ गणों ने इकट्ठे होकर एक गणराज्य संगठित किया जिसका नाम "मालव" रखा गया और जिस दिन यह गणराज्य बना उस दिन से काल की गणना के लिए एक संवत् भी चलाया, गया जो आज विक्रमी संवत् के नाम से प्रसिद्ध है । [वरदा में प्रकाशित]

परमार राजा नरवर्मा का चित्तौड़ पर अधिकार | २१

परमार राजा नरवर्मा का चित्तौड़ पर अधिकार रहने का उल्लेख चित्तौड़ की शक सं० १०२८ (११६३ वि.) की एक अप्रकाशित प्रशस्ति में है जो जिनवल्लभसूरि से सम्बन्धित है। यह लेख मूल रूप से चित्तौड़ में उत्कीर्ण किया हुआ था, किन्तु अब वहां उपलब्ध नहीं है। इसकी एक प्रतिलिपि भारतीय संस्कृति मंदिर, अहमदाबाद में उपलब्ध है। श्री नाहटाजी ने इसकी प्रतिलिपि मुझे भेजी है। इसमें ७८ श्लोक हैं इसलिए इस प्रशस्ति का नाम "अष्ट सप्ततिका" भी रखा गया है। शुरू के ५ श्ललोकों में ऋषभ, वीर, पार्श्व और सरस्वती की वन्दना की गई है। श्लोक ६ से १४ में भोज का वर्णन है। उदयादित्य का वर्णन श्लोक सं० १५ से २० में दिया हुआ है। इसके लिये "आदि वराह" शब्द प्रयुक्त हुआ है। श्लोक सं० २१ से २८ तक नरवर्मा का वर्णन है। इसके पश्चात् खरतरगच्छ के आचार्यों का वर्णन आदि है। जिनवल्लभ का चित्तौड़ रहना और विधि चैत्यों के निर्माण का वर्णन मिलता है। मंदिर के लिये नरवर्मा ने २ पारुत्थ मुद्रा दान में देने की व्यवस्था की थी।

परमार राजा भोज के चित्तौड़ पर अधिकार रहने की पुष्टि में कई संदर्भ उपलब्ध हैं[1] मुंज के समय से ही मेवाड़ का कुछ भाग परमारों

१. ओझा=उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १३२। विविध तीर्थ कल्प में अर्बुद कल्प, और विमल वसति के एक लेख में वर्णित है कि आबू के राजा धंधुक भाग कर चित्तौड़ में भोज के पास गया था जहां से विमलशाह समझाकर वापस लाया था। चीरवा के लेख में "भोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे' शब्द उल्लेखित

के अधिकारों में चला गया था। किन्तु भोज के उत्तराधिकारियों के पास चित्तौड़ रहा था अथवा नहीं, इसके लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं था। इसके लिये 'खरतरगच्छ पट्टावली' और चित्तौड़ के इस अप्रकाशित लेख में महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध है की जिन वल्लभ सूरि अपने समय के बड़े प्रसिद्ध विद्वान थे। इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। 'खरतर-गच्छ पट्टावली' में वर्णित है कि एक बार नरवर्मा की सभा में किसी दक्षिणी पंडित ने समस्या "कण्ठे कुठार कमठे ठकार" भेजी। इसकी पूर्ति उसके दरबार के किसी पंडित द्वारा जब नहीं हुई तब इसे चित्तौड़ में जिनवल्लभसूरि के पास भेजी। जिनवल्लभसूरि ने तत्काल पूर्ति करके भिजवा दी थी। जब ये घूमते-घूमते एक बार धारा नगरी गये तो

है जो समिद्धेश्वर के चितौड़ के मंदिर के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार इसी मन्दिर के वि० सं० १३५८ के एक अन्य लेख में "भोजस्वामीदेवजगती" प्रयुक्त है। इस सब सामग्री को देखकर ओझाजी ने यह मान्यता दी थी कि यह मंदिर परमार भोज द्वारा निर्मित था (ओझा निबंध-संग्रह, भाग २, पृ० १८७ से १९२ एवं उनका निबंध 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवन नारायण' इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है।)

१. (i) "श्री जिनवल्लभगणिरपि कतिचिद्दिनैर्विहृतो धारायाम्। केनाप्युक्तं राजः पुरो-'देव ! सोऽपि श्वेतपटो समस्यापूरक आगतोऽस्ति।"-राज्ञातुष्टेनोक्तम्-"भो जिनवल्लभगणे। पारुत्थ लक्षत्रयं ग्रामत्रयं वा गृहाणं।" भणितं गणिभिः "भोः महाराज ! व्रत व्रतिनोऽर्थादि संग्रहं न कुर्मः चित्रकूटे देवगृह द्वयं श्रावकैः कारितमस्ति तत्र पूजार्थं स्वमण्डपिकादानात् पारुत्थ द्वयं प्रतिदिनं दापय"। ततो राजा तुष्टः-'अहो निर्लोभता एतस्य महात्मनः श्री जिनवल्लभगणेरिति चिन्तितवान्। चित्रकूटमण्ड-पिकातस्तत् शाश्वतदानं भविष्यतीति कृतम्"

(युग प्रधान गुर्वावली, पृ० १३)

(ii) अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका, पृ० २६।

(iii) वीर भूमि चित्तौड़, पृ २६।

राजा ने बड़ा सम्मान किया और ३ लाख रुपये और ३ ग्राम दान में देने को कहा, तब सूरिजी ने लेने से इन्कार करके केवल इतना ही कहा कि चित्तौड़ में नव-निर्मित विधि चैत्य के लिये कुछ "शाश्वत दान" की व्यवस्था कर दी जावे। तब राजा ने चितौड़ की मण्डपिका से उक्त दान की घोषणा[२] की। इस वर्णन की पुष्टि अब तक अन्य वर्णनों से नहीं होती थी। नरवर्मा द्वारा चित्तौड़ के जैन मन्दिरों के लिये कोई राशि "शाश्वत दान" के रूप में दी थी उसका उसकी प्रशस्तियों में कहीं उल्लेख नहीं है, किन्तु चित्तौड़ की इस प्रशस्ति से इसकी पुष्टि होती है। श्लोक सं० ७१ में वर्णित है[२] कि राजा नरवर्मा ने सूर्य संक्राति के अवसर पर जिनाचार्य के लिये २ पारुत्थ मुद्रा दान में दी। उसके पूर्व श्लोकों में विधि चैत्य की प्रतिष्ठा का वर्णन है। अतएव खरतरगच्छ पट्टावली के वर्णन से पुष्टि हो जाती है। इस प्रकार जब नरवर्मा चितौड़ की मण्डिपका मे दान की घोषणा करता है तो निश्चित रूप से यह भूभाग उसके अधिकार में था। संभवतः परमारों के अधिकार में चित्तौड़ वि० सं० ११९० तक रहा और इनसे ही चालुक्य सिद्धराज ने यह भूभाग अधिकृत किया प्रतीत होता है।

---

२. प्रतिरवि संक्राति ददौ पारुत्थ द्वितयमिह जिनाचार्य ।
श्री चित्रकूट पिंठा मार्गा (?) दात्रा नृवर्म नृपः ॥७३॥

इस प्रशस्ति के सम्वन्ध में जिनदत्तसूरि ने चर्चरी में भी उल्लेख किया है जो समसामयिक कृति होने से महत्त्वपूर्ण है।

(शोध पत्रिका में प्रकाशित)

देवड़ाओं की उत्पति | २२

देवड़ाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अब तक कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नही हो सकी है। सिरोही राज्य की ख्यातों के अनुसार नाड़ोल शाखा के चौहान राजा मानसिंह के एक पुत्र देवराज हुआ जिससे यह शाखा चली और इसीलिये ये देवड़ा कहलाये।[1] वंश भास्कर में चौहानों की निर्वाण शाखा से इनकी उत्पत्ति मानी गई है।[2] नैणसी ने एक अलग मत प्रस्तुत किया है। इनका कहना है कि नाडोल के राजा आसराज का किसी देवी से प्रेम हो गया था और उसकी संतान देवड़ा कहलाई।[3] आधुनिक विद्वानों में भी मतैक्यता नहीं है। ओझा जी ने सिरोही राज्य की ख्यातों के वर्णन की सत्यता में संदेह प्रकट किया है। लाला सीताराम ने भी सिरोही राज्य के इतिहास में नैणसी के वर्णन से संगति बिठाते हुये उक्त ख्यातों के वर्णन को ठीक नहीं माना है। चौहान कुल कल्पद्रुम में देवड़ा शाखा को नाडोल की शाखा मानी है और लिखा है[4] कि यह शाखा कई बार निकली है। सिरोही वालों के पूर्वज उक्त मानसिंह के वंशज ही हैं।

---

१. लाला सीताराम–हिस्ट्री आफ सिरोही राज पृ १५९–६० सिरोही स्टेट गजेटियर–पृ २६८

२. इण कुल ही देवट अभिमानी। मही भुवंग हुओ रणमानी॥
कुल जिणरो देवड़ा कहावैं। दान समर अनुपम दरसावैं॥
(हिस्ट्री आफ सिरोही राज्य के पृ. १५९ के फुटनोट से उद्धृत)

३. नैणसी की ख्यात हिन्दी अनुवाद भाग १ पृ १२०–१२३

४. चौहान कुल कल्प द्रुम पृ. १९२

स्मरण रहे कि यह मानसिंह समरसिंह सोनगरा का द्वितीय पुत्र था। इसके वंशज राव लुम्भा ने आबू अधिकृत किया था।

क्या राव लुम्भा देवड़ा जाति का था ?

प्रश्न यह है कि क्या राव लुम्भा देवड़ा जाति का था ? उसके और उसके उत्तराधिकारियों के कई शिलालेख मिले हैं। इन सब लेखों में उसे चौहान ही लिखा गया है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण लेख वशिष्ठाश्रम का लेख है। ठीक इसी लेख के नीचे महाराणा कुम्भा का वि० सं० १५०६ का शिलालेख उत्कीर्ण है।[५] उक्त राव लुम्भा के उत्तराधिकारियों के लेख का मूल पाठ इस प्रकार है :—

"स्वस्ति श्री नृप विक्रम कालातीत संवत् १३६४ वर्षे वैशाख शुदि १० गुरावद्येह श्री चन्द्रावत्यां **चाहुमान वंशोद्धरण धोरय** राज श्री तेजसिंह सुत राज कान्हड़देव राष्ट्रं प्रशासति सति पाढि श्री महादेवेन इदं श्री वशिष्ठस्य धर्म्मायतन कारागितमित्यर्थः। तथा च **चाहुमान ज्ञातीय राज** श्री तेजसिंहेन स्वहस्तेन ग्राम त्रयं दत्तं भांवद्रु १ द्वितीयं ज्यातुलि ग्रामं २ तृतीय तेजलपुरमिति ३ तथा च **देवड़ा श्री** निहुणाकेन स्व हस्तेन सीहलुण ग्रामं दत्तं तथा राज श्री कान्हड़देवेन स्वहस्तेन वीरवाड़ा ग्रामं दत्तं तथा राज **श्री चाहुमाण जातीय** राज श्री सामंतसिंहेन लाङ्कुलि छापुली किरणथलु ग्रामं त्रयं दत्तं। शुभं भवतु ॥"

इस लेख में ३ राजाओं के अलग २ दान देने के लेख हैं। इस लेख से बहुत ही स्पष्ट है कि राव लुम्भा के वँशज अपने आपको चौहान ही लिखते थे। उस समय देवडा शाखा भी अलग से विद्यमान थी। उपरोक्त लेख में वर्णित निहुणा इसी शाखा का था। यह निःसंदेह विमल वसति के वि०सं० १३७८ के लेख में वर्णित राव लुम्भा के द्वितीय पुत्र तिहुणाक से भिन्न था।[६] केवल नामों की कुछ समानता से एक ही जाति का नहीं मान सकते हैं। आबू से प्राप्त लेखों में ऐसे नाम कई लेखों में

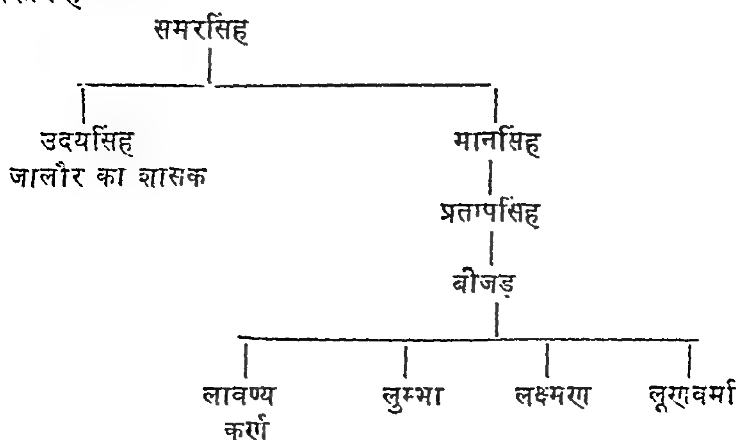
---

५. वीर विनोद पृ. १२१३

६. श्रीमल्लुंभकनामा समन्वितस्तेजसिंहतिहुणाभ्याम्।
अर्बुदगिरीशराज्यं न्यायनिधिः पालयामास ॥

मिलते हैं जो भिन्न २ जाति के थे। देवड़ा निहुणा जिसने उक्त दान दिया था कोई उच्चाधिकारी या जागीरदार था।

लुम्भा के शिलालेखों में उसके पूर्वजों का विस्तार से उल्लेख है। अचलेश्वर मन्दिर के वि०सं० १३७७ और विमलवासति के वि० सं० १३७८ के शिलालेखों में जो वंशावली दी गई है उसका विवरण इस प्रकार है :—



ख्यातों में लिखा हैं कि मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह का एक नाम देवराज भी था। ख्यातकारों का अगर यह वर्णन सही हो तो जिस पुरुष से वंश चला उसका नाम तो कम से कम शिलालेखों में आना ही चाहिए। प्रतापसिंह के लिए जो शिलालेखों में वृतान्त दिया गया है वह परम्परागत वर्णन मात्र है। अचलेश्वर के लेखों में "ततो भवद्वंश विवर्द्धनो नु प्रतापनामो नयनाभिरामः। सदा स्वकीर्त्या किल चाहुमानः पूज्यः प्रतापानल तापि वारिः॥ विमल वसति के वि०सं० १३७८ के लेख में "प्रतापमल्लस्तदनु प्रतापी वभूव भूपाल सदस्सु मान्यः" लिखा हैं। अतएव इससे देवड़ाओं की उत्पत्ति मानना आधारहीन है।

इसके अतिरिक्त प्रताप सिंह को देवराज मानकर इससे उत्पत्ति मानने में देवड़ाओं की उत्पति वि सं. १३०० के बाद आती है जो सही नहीं है। अचलेश्वर मन्दिर के बाहर वि. सं. १२२५ और १२२६ के शिलालेख लगे हुए हैं। इनमें देवड़ा जाति के वीरोंका उल्लेख है।[७] इसी

७. हिस्ट्री आफ सिरोही राज्य पृ. १५९–६०

प्रकार सिरोही जिले के सीवेरा ग्राम के जैन मन्दिर में वि. सं. १२८६ का एक शिलालेख है। इसमें देवड़ा विजयसिंह आदि का उल्लेख हैं और भी लेख इस क्षेत्र से मिलते हैं।[8] एक लेख दंताणी ग्राम में वि. सं. १३४५ वैसाख सुदी ८ का लेख जैन मन्दिर में लगा हुआ है इसमें "प्रमाश्न (रा) न्विय राज दे राज–देवाड़ा ठ० सात रा प्रताप श्री हेमदेव" वर्णित है यहां "राजदेवाड़ा" शब्द देवड़ों के लिए प्रयुक्त प्रतीत न होकर परमार जाति के किसी पुरुष का नाम है। कान्हड़दे प्रवन्ध के अनुसार देवड़ा जाति के कान्धल अजीत आदि वि. सं. १३७८ के अल्लाउद्दीन के साथ हुए जालौर के युद्ध में सम्मिलित थे। इनका उक्त वंश वृक्ष में कोई नाम नहीं है इससे यह प्रतीत होता है कि यह जाति काफी प्राचीन है।

अतएव बहुत ही स्पष्ट है कि सिरोही राज्य के खातों के अनुसार देवड़ाओं की उत्पति मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह से नहीं हुई थी। मानसिंह के बहुत पहले ही देवड़ा जाति विद्यमान थी। एसा प्रतीत होता है कि ख्यातकारों के सामने देवड़ाओं का पुराना इतिहास उपलब्ध नहीं था तो उन्होंने आबू के परमारों से राज्य हस्तगत करने वाले राव लुम्भा को ही देवड़ा जाति का मान लिया। उसके उत्तराधिकारी तेजसिंह कन्हड़देव सामन्तसिंह आदि का नाम ख्यातों में नहीं है।

प्राप्त शिलालेखों के आधार पर में इस निश्चय पर पहुंचा हूं कि रावलुम्भा देवड़ा जाति का नहीं था। यह चौहान जाति का था। देवड़ा शाखा चौहानों से अवश्य निकली है किन्तु उसकी किस शाखा से ? यह ज्ञात नहीं हो सका है।

देवड़ा शब्द की व्युत्पति

देवड़ा शब्द देवराज के स्थान पर "देवड़" शब्द से वना प्रतीत हुआ हैं। आबू और इसके समीपवर्ती स्थानों से प्राप्त शिलालेखों में यह नाम वहुत ही मिलता है।[9] उदाहरणार्थ मूंगथला के जैन मन्दिर में

---

८. जैन सत्य प्रकाश वर्ष १४ अंक ३–४ पृ. ६६

६. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह ले० सं.४७

वि. सं. १२१६ के एक लेख में वीसल और देवड़ा नामक दो व्यक्तियों का उल्लेख है, (वीसलदेवड़ाभ्यां) इसी प्रकार का उल्लेख कथा कोष प्रकरण में है। यह ग्रंथ वि. सं. ११०८ में जालोर में लिखागया था। इसमें भी देवड़ा नामक एक श्रेष्ठि से सम्बन्धित कथानक दिया हुआ है जो रोहिड़ा का रहने वाला था,[10] (रोहिड़यं नाम नयरं, तत्थ देवड़ो नाम कुल पुत्तगो परिवसइ) इससे पता चलता है कि यह नाम बहुत ही अधिक प्रचलित था। आश्चर्य नहीं है कि देवड़ा जाति की व्युत्पत्ति देवड़ नामक पुरुष से ही हुई हो। वंश भास्कर में देवट नामक पुरुष से इनकी उत्पत्ति मानी गई है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

देवड़ाओं का सिरोही प्रदेश पर अधिकार

सामन्तसिंह के बाद रावलुम्भा के उत्तराधिकारियों का क्या हुआ? इस सम्बन्ध में अभी शोध की आवश्यकता है। इतना अवश्य सत्य है कि वि. सं. १४४२ तक ये लोग इस क्षेत्र में अवश्य शासक के रूप में विद्यमान थे। सामन्तसिंह के बाद में कान्हड़देव का पुत्र वीसलदेव उत्तराधिकारी रहा प्रतीत होता है। मूंगथला ग्राम में निर्मित एक जैन मन्दिर में वि. सं. १४४२ के एक शिला-लेख में इसका शासक के रूप में उल्लेख किया गया है। इस शिला-लेख की ओर विद्वानों का ध्यान अभी गया नहीं है। इसके मिलने से सामन्तसिंह के उत्तराधिकारी के रूप में रणमल आदि को मानने की धारणा स्वतः गलत साबित सिद्ध हो जाती है। लेख का मूल पाठ इस प्रकार है :—

१. सं. १४४२ वर्षे जेठ सुदि
२. ६ सोमे श्री महावीर..........
३. राज श्री कान्हड़ देव सु
४. तु राज श्री वीसल देव [विन स]
५ वाड़ी आघाट दात्तव्या (दत्ता)
६. ग्राम प्रष्टि (प्रष्टि) प्रदेशे ते वा (ना)

---

१०. कथाकोष प्रकरण पृ.

७. पदे शासनं प्रद
८. त्तः (त्तम्) ।। वहुभिर्वसुधा
९. भुक्ता राजभिः सग
१०. रादिभिः.........

सिरोही राज्य की स्थापना राव शिव भाण ने की थी । इसके पूर्वजों के नाम सल्का, रणमल आदि मिलते हैं। सल्हा के पुत्र सायर का एक अप्रकाशित शिलालेख वि. सं १८७७ पोसीनाजी के मंदिर में लग रहा है। इनके वंश का विस्तृत उल्लेख उक्त शिलालेख में नहीं है। साल्ह के लिए लिखा मिलता है कि यह वहुत ही प्रतिभा सम्पन्न शासक था।[11] सिरोही राज्य के ख्यातों में वर्णित सल्का और पोसनाजी के लेखवाला सल्हा अगर एक ही व्यक्ति हो तो इसके पुत्र रणमल और था जिसका पुत्र शिवभाण हुआ जिसने सिरोही क्षेत्र अधिकृत किया। पिपल की में वि. सं. १४५१ का शिलालेख राव शोभा का मिला है। यह कौन था ? इस सम्बन्ध में शोध किये जाने की आवश्यकता है।

आबू के देवड़ा

आबू के देवड़ा सिरोही के देवड़ों से भिन्न रहे प्रतीत होते हैं। इनका उक्त सल्का शिवभाण आदि से क्या सम्बन्ध था ? कुछ नहीं कहा जा सकता है। पितलहर मन्दिर आबू के वि. सं. १५२५ के शिलालेख में कई शासकों के नाम हैं, यथा वीसा, कुंभा, और चूण्डा और डूंगरसिंह। चूंडा के वि. सं. १४९७ के शिलालेख मिले हैं।[12] महाराणा कुम्भा ने इससे ही आबू लिया था। सरदारगढ़ की एक अप्रकाशित ख्यात में वि. सं. १५०२ में लेना वर्णित किया है। कुंभा की मृत्यु के वाद उसके उत्तराधिकारी उदयसिंह से देवड़ा डूंगरसिंह

---

११. अस्ति स्वस्तिपदं सदाप्यरिभयातीतं प्रतीतं सदा ।
पोसीनाख्यापुरं पुराणमनुणश्रीणां विलासाश्रयः.
तत्रामात्रनयश्रिया प्रकटित श्रीरामराज्यस्थितिः ।
श्रीमान् साल्ह महिपतिः पदम् भूदौदार्यधैर्यश्रियः ।।२।।

१२. महाराणा कुंभा पृ. ८०

ने आबू वापस ले लिया। इसके उत्तराधिकारी का क्या हुआ ? कुछ जानकारी नहीं है अचलगढ़ के जैन मन्दिर की वि. स. १५६६ के लेख में वहां के शासक का नाम सिरोही के शासक का दिया हुआ है। अतएव पता चलता है कि इसके पूर्व ही सिरोही के देवड़ों ने इसे हस्तगत कर लिया था।

इस प्रकार इन सब तथ्यों से पता चलता है कि देवड़ाओं की उत्पति देवराज नामक सोनगरा शासक जिसका मूल नाम प्रताप-सिंह था, नहीं हुई थी। सिरोही क्षेत्र में अधिकार जमाने के समय इनकी कई शाखायें उस समय विद्यमान थी। वि० सं० १३४४ के पाट नारायण के लेख में देवड़ा शोभित के पुत्र मेला का उल्लेख है।

[अन्वेषणा में प्रकाशित]

....

[illegible] सं० १५४६ की प्रशस्ति लगी है, जिसमें जयचन्द्र को मारवाड़ के राठोड़ों का आदि पुरुष वर्णित किया है और इसके वंशज आसथान द्वारा राज्य स्थिर करने का उल्लेख है।[7] राजस्थान भारती में प्रकाशित फलोधी के मन्दिर से सम्बन्धित वि० सं० १५५५ की एक प्रशस्ति में भी जयचन्द्र को राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक माना है।[8]

श्री अगरचन्द जी नाहटा के संग्रह में एक वंशावली से सम्बन्धितपत्र संगृहीत हैं। डा० दशरथ शर्मा ने इसे इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली के भाग १२ अङ्क १ (मार्च १९३६) में प्रकाशित किया हैं। यह वंशावली प्रारम्भ में राव सातल के समय लिपिबद्ध की गई थी। इसके बाद मालदेव तक दूसरे प्रतिलिपिकार ने इसे पूरी की थी। तत्पश्चात् बीकानेर के महाराजा रायसिंह के समय तक इसे अन्य प्रतिलिपिकारों ने पूरी की। इसमें भी वंशावली को जयचन्द्र से प्रारम्भ बतलाई गई है। इसमें जयचन्द्र के लिये 'पांगल' विशेषण दिया गया है। रम्भामन्जरी नाटिका और प्रबन्ध चिंतामणी आदि में भी जयचन्द्र के लिए यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है।[9]

याम। तत्र श्री विजयचन्द्रांगजो राष्ट्रकूटीय जैत्रचन्द्रो राज्यं करोति" (पुरातन प्रबन्ध संग्रह पृ० ८८)

७. ओकेशवंशप्रवरो विभाति सर्वेषु वंशेषु रमाप्रधानं।
तस्मिन् सुगोत्रं प्रवरं प्रशस्यते नाम्ना महत्थ जाहडाभिधानं।
क्षत्रियवंशः पूर्व्वं विदितः श्री राष्ट्रकूट इति नाम्ना
श्री जयचन्द्रो राजा जातश्चतुरंगबलयुक्तः।
तस्यान्वये प्रसिद्धः त्यागीभोगीसदाश्रियाकलितः।
आस्थामाश्चर्य्ययुतः संगतो राजा कुलधुर्यः॥
(प्रशस्ति संग्रह-शाह द्वारा सम्पादित पृ० ४६ एवं पृ० ५५)

८ राजस्थान भारती, वर्ष ६, अङ्क ४ में श्री विनयसागर का लेख—
अथ राष्ट्रकूटान्वय जैत्रचन्द्रो भूपुरन्दरः।
तत्संतानक्रमेणाथ कमध्वजमहीपतिः॥१६॥

९. 'अथ काशीनगर्यां जयचन्द्र इति नृपः प्राज्य साम्राज्यलक्ष्मीं पालयन् पंगुरिति विरुद बभार। यतो यमुनागंगायष्टि युगावलम्बनमन्तरेण

इस प्रकार समस्त सामग्री को, जो मारवाड़ के राजवंश से सम्बन्धित है, देखकर मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मारवाड़ के राजवंश का संस्थापक जयचन्द्र का वंशज ही था और राठोड़ और गहड़वाल के वंशों में भी साम्यता रही है और कन्नौज के गहड़वालों को ही राठौड़ भी लिखते थे, जैसा कि पुरातन प्रबन्ध संग्रह में उल्लेखित है। इसी कारण सूरत के दानपात्र में इन्हें राठौड़ लिखा है और बदायूं के लेख में कन्नौज के शासकों को राठौड़ लिखा है।

इस प्रकार राठौड़ और गहड़वालों के पारस्परिक सम्बन्धों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। [विश्वम्भरा में प्रकाशित]

चमू समूह व्याकुलिततया क्वापि गन्तुं न प्रभवति" (प्रबन्ध चिन्तामणी केवलराम शास्त्री द्वारा सम्पादित पृ० १८६)

फलोदी पार्श्वनाथ मन्दिर पर मोहम्मद गोरी का आक्रमण | २४

मेड़ता रोड पर पार्श्वनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है जो फलोदी पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है जिन प्रभ सूरि ने विविध तीर्थ कल्प में एक बहुत ही महत्वपूर्ण सूचना दी है कि शहाबुद्दीन गोरी ने इस मंदिर[1] में विराजमान मूलनायक प्रतिमा को भंग की। मंदिर को भग्न नहीं किया एवं अधिष्ठायक देव की इच्छा नहीं होने से दूसरी मूर्ति स्थापित नहीं की जा सकी। उनका कहना है कि खंडित प्रतिमा भी बहुत ही प्रभावशाली और चमत्कार पूर्ण थी।

सुल्तान मोहम्मद गोरी का वह आक्रमण कब हुआ था? इनमें कोई संवत दिया हुआ नहीं है किन्तु समसामयिक घटनाओं से पता चलता है कि घटना वि० सं० १२३५ में घटित हुई थी। मंदिर में वि० सं० १२२१ मिगसर सुदि ६ का एक शिलालेख लगा हुआ है जिसमें चित्रकूटीय शिला पट्ट लगाने का उल्लेख है।[2] इससे पता चलता है कि उस वर्ष के पूर्व संभवतः सुल्तान का आक्रमण नहीं हुआ था और निर्माण कार्य चल रहा था। तबकात–इ–नासीरी से पता चलता हैं कि वि० सं० १२३० के आस-पास मोहम्मद गोरी गजनी का अधिकारी बना था

---

१. कालंतरेण कलिकालमाहप्पेणं केलिप्पिआ वंतरा हवंति, अथिरचित्ता य त्ति पमाय पर व्वसेसु अहिट्ठायगेसु सुरताणसाहावदीणेण भग्गं मूल बिंबं :—
सुरताणेण दिन्नं फुरमाणं, जहा–ए अस्स देवभवणस्स केणावि भंगो न कायव्वो त्ति—" (विविध तीर्थ कल्प पृ० १०६)

२. प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २ पृ०

और भारत में पहला आक्रमण वि० सं० १२३२ में करके मुल्तान और उच्छा पर अधिकार[3] कर लिया था। इसके बाद वि० सं० १२३५ में उसने गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात जाते समय संभवतः वह मेड़ता रोड़ किराडू नाडोल होकर आबू गया। किराडू के सोमेश्वर मंदिर की प्रतिमा भी वि० सं० १२३५ के शिलालेख के अनुसार तुरुष्कों द्वारा खण्डित की गई थी।[4] वहां से नाडोल[5] गया। पृथ्वीराज विजय में वर्णित है कि सुल्तान ने नाडोल पहुंच कर पृथ्वीराज को कर देने को कहा। नाडोल से वह आबू गया और वहां कासरदा गांव में युद्ध[6] हुआ था। जहां सुल्तान की हार हुई थी। इस प्रकार प्रतीत होता है कि गुजरात आक्रमण के समय उसने मेड़ता रोड पर भी आक्रमण किया था। फारसी तवारीखों में रेगिस्तान के मार्ग से गुजरात जाने का वर्णन मिलता है।[7]

मेडता रोड का यह मंदिर प्राचीन प्रतीत होता है। श्री अगरचन्द नाहटा ने कुछ वर्षो पूर्व यहां के शिलालेख भी प्रकाशित कराये थे। इनमें प्राचीनतम ९ वीं शताब्दी का है। वि० सं० ११८१ में धर्म घोष सूरि ने इसके शिखर की प्रतिष्टा[8] की थी। मंदिर इससे भी प्राचीन

---

३. अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० ८०–८१ चालुक्याज आफ गुजरात पृ० १३५

४. किराडू के वि० सं० १२३५ के लेख की पंक्ति ९ और १० में इस वर्णन है।

मूर्तिरासीत् स्म तुरुष्कै [ष्कै] भंग्ना—

५. अरली चौहान डाइनेस्टीज पृ० ८० फुटनोट ४४ एवं पृ० १३८

६. सूंधा का लेख श्लोक ३४ से ३६। इसमें नाडोल के चौहानों ने भी गुजरात की सेना के साथ युद्ध में भाग लिया था।

७. ब्रिग्ज तारीख–इ–फरिश्ता भाग १ पृ० १७० है–तबकात इ अकबरी भाग १ पृ ३६।

८. एगारससएसु इक्कासीइसमहिएसु विक्कमाइवरिसेसु
अंइक्कतेसु रायगच्छमंडणसिरिसीलभद्दसूरिपट्टपइट्ठिएहिं
महावाइदिअंवरगुणचंद्रविजयपत्तपइपट्ठेहिं सिरि धर्मघोस

रहा था। खरतर गच्छ परम्परा के अनुसार श्री जिन पति सूरि ने इसका जीर्णोद्धार १२३४ वि० सं० में कराया[9] और श्री लक्ष्मट श्रावक ने १२ वीं शताब्दी में उत्तान पट्ट यहां स्थापित कराया था।[10] तपागच्छ परम्परा के अनुसार भी यहां १२०४ में प्रतिष्ठा समारोह हुआ था।

इनसे पता चलता है कि मंदिर प्राचीन था और उसकी मान्यता वहुत थी। इसलिए सुल्तान का ध्यान भी गुजरात के मार्ग में जाते समय इसकी ओर आकृष्ट हुआ और मूलनायक प्रतिमा को खण्डित करदी। यह घटना वि० सं० १२३५ में हुई। यद्यपि इतिहासकारों का ध्यान इस मन्दिर के आक्रमण की ओर नहीं गया है विविध तीर्थ कल्प में वर्णन होने से प्रमाणिक घटना मानी जा सकती है।

[वरदा में प्रकाशित]

सूरिहिं पासनाह चेई असिहरे चउविहसंघसमक्खं पइट्ठा किआ (विविधतार्थ कल्प पृ १०६)

९. "सं · १२३४ फलवार्धिकायां विधि चैत्ये पार्श्वनाथ, स्थापिता," जैन सत्य प्रकाश वर्ष ४ में नाहटाजी का लेख

१०. जैन लेख संग्रह भाग १ लेख सं० २२२

....